भारत के महान साधक

चतुर्थ खण्ड

द्वितीय प्रकाशन, दिसम्बर, १९८२ ई०

प्रमथनाथ भट्टाचार्य

नव भारत प्रकाशन, दरभंगा

भारत के
महान साधक

भारत के महान साधक

चतुर्थ खंड

प्रमथनाथ भट्टाचार्य

नव भारत प्रकाशन

द्वितीय प्रकाशन :

दिसम्बर, १९८२

अनुवादक :

श्री रामनन्दन मिश्र
प्रो० सुरेन्द्र झा 'सुमन'
प्रो० डा० रमाकान्त पाठक
प्रो० देवीदत्त पोद्दार
श्री जगदीश्वर प्रसाद सिंह

प्रकाशक :

निर्भय राघव मिश्र
नव भारत प्रकाशन
लहेरियासराय
दरभंगा (बिहार)

मुद्रक :

श्री भगवती प्रेस
पुरानी बाजार
मुजफ्फरपुर (बिहार)

प्रच्छद पट :

श्रीसुप्रकाश सेन

मूल्य:

बीस रुपये मात्र

जिनकी महती कृपा से

'भारत के महान साधक'

का प्रकाशन

संभव हो

सका

उन्हीं महापुरुष

श्री कालीपद गुहाराय के कर-कमलों में

प्रकाशक द्वारा समर्पित

प्रकाशकीय

चतुर्थ-खंड के द्वितीय संस्करण का प्रकाशन करते हुए हमें अपार हर्ष हो रहा है।

'भारत के महान साधक' के मूल लेखक स्व० प्रमथनाथ भट्टाचार्य लेखक, साधक तथा अन्वेषक तीनों एक साथ थे। इन्होंने लगातार १५ वर्षों का बहुमूल्य समय महापुरुषों की जीवनियों के संग्रह में लगाया।

स्वर्गीय श्री नृपेन्द्र कृष्ण चट्टोपाध्याय ने बंगला-संस्करण की भूमिका में लिखा था—

"जिस समय धारावाहिक रूप में 'हिमाद्रि' में ये सब लेख प्रकाशित हो रहे थे उस समय जीवनी-लेखक के रूप में स्वभावतः उनकी ओर मेरी उत्कण्ठा जाग उठी और यह उत्कण्ठा क्रमशः मुग्धता में परिणत हो गई। इस प्रकार की जीवनियाँ अबतक बंगला भाषा में मुझे पढ़ने को नहीं मिली थीं।'

"साधु-संत और महापुरुषों की जीवनी एवं साधना को लेकर बंगला भाषा में कुछ पुस्तकें अवश्य पायी जाती हैं, दो-एक जीवनी-संग्रह भी हैं, किन्तु वे बहुत मामूली ढंग के हैं; उनमें गाम्भीर्य का अभाव है और वे प्रामाणिक भी नहीं हैं। प्रायः ऐसा देखा जाता है कि साधु-महापुरुषों की जीवनियाँ उनके विशेष भक्त-प्रेमियों की ही लिखी हुई होती हैं और इस प्रकार के जीवनी-ग्रन्थों में जीवन के उपकरणों की अपेक्षा भक्त शिष्यों के भावोच्छ्वास ही प्रबल हो उठते हैं। यही कारण है कि धर्म-साधक और आत्मिक महापुरुषों के जीवन एवं साधना को लेकर, सच्चे अर्थ में साहित्यिक लेखक द्वारा लिखे गये एक प्रामाणिक ग्रन्थ का अभाव बहुत खटकता था। 'भारतेर साधक' ने सार्थक रूप में उस अभाव की पूर्त्ति की है।

"भारतीय साधना का प्रधान वैशिष्ट्य यह है कि प्रत्येक साधक ने अपने विशेष मार्ग से दिव्य सत्य का अनुसन्धान किया है। यही कारण है भारतीय साधना एवं भारतीय साधकों की साधना की धाराएँ बहुमुखी हैं। किसी ने शाक्त रूप में अपना परिचय दिया है, किसी ने वैष्णव-रूप में, किसी ने वेदान्ती-रूप में, किसी ने बाउल-रूप में और किसी ने सर्वत्यागी योगी के रूप में। प्रत्येक का लक्ष्य एक है, किन्तु साधना स्वतन्त्र। 'भारतेर साधक' के लेखक ने इस ऐतिहासिक तत्य पर दृष्टि रखकर विभिन्न मार्गों के अनुयायी विशेष-विशेष साधकों की जीवनियाँ इस पुस्तक में अन्तर्भूत की हैं और गंभीर एवं सूक्ष्म अन्तर्दृष्टि की सहायता से इन सब साधक महापुरुषों की विभिन्न साधनाओं के अन्तर्हित तत्व को अपूर्व सहृदयता के साथ प्रस्फुटित किया है। लेखक की इस रचना का प्रधान कृतित्व यह है कि तत्व पर प्रकाश डालते हुए उन्होंने जीवन की उपेक्षा नहीं की है। प्रत्येक साधक की जीवन कहानी को उन्होंने उपन्यास की तरह जीवंत कर दिया है और इन विस्मृतप्राय महापुरुषों के जीवन से सम्बन्धित घटनाओं का पता लगाने और संग्रह करने में उन्होंने बहुत कुछ गवेषणाएँ की हैं, कितने जीवित पुरुषों से सहायता लेकर बहुत से आख्यानों का संग्रह किया है और इसके लिए सारे पुराने कागज-पत्रों का बड़ी निष्ठा के साथ छानबीन की है। इसके सिवा इस प्रकार की जीवनी लिखने के लिए सबसे बढ़कर आवश्यक है लेखक की अपनी आत्मिक साधना। लोकदृष्टि के समक्ष में 'भारतेर साधक' के लेखक ने अपने को जिस आन्तरिकता के साथ प्रस्तुत किया है, उसका चिन्ह उनकी इस पुस्तक के प्रत्येक चरण में परिस्फुटित हो उठा है।"

बंगला भाषा में इस ग्रंथ का अपूर्व स्वागत हुआ है। यह पुस्तक इस काल की एक महान् कृति मानी जाने लगी है। बंगला भाषा में इस ग्रन्थ के लेखक श्री प्रमथनाथ भट्टाचार्य्य अपने उपनाम 'शंकरनाथ राय' के नाम से विख्यात हैं।

सारे देश के सब क्षेत्रों के महानुभावों से हमें हर तरह की सहायता मिली है। उनकी इस सहायता के बिना इसका यह द्वितीय प्रकाशन कभी संभव नहीं होता। उनका नाम गिनाकर—दो-चार पंक्तियों में उन्हें धन्यवाद देकर हम उनके ऋण से मुक्त नहीं हो सकते। इस अवसर पर उन महानुभावों के प्रति हम अपनी आंतरिक कृतज्ञता व्यक्त करते हैं।

हिन्दी के विज्ञ, सत्यान्वेषी एवं धर्मानुरागी पाठकों के समक्ष यह ग्रन्थ उपस्थित है। इसकी महत्ता और उपयोगिता के वे ही निर्णायक हैं।

लहेरियासराय
दिसम्बर ६,१९८२

निर्भय राघव मिश्र

विषय-सूची

१.	भक्त कबीर	१
२.	नगा बाबा	२६
३.	श्रीपाद माधवेन्द्रपुरी	८६
४.	भक्त लाला बाबू	११६
५.	गोस्वामी श्यामानन्द	१५१
६.	हरिहर बाबा	१६५
७.	महात्मा सुन्दरनाथ जी	१६५
८.	फरसी बाबा	२१५
९.	मौनी दिगम्बर जी	२३३
१०.	साई बाबा	२५३

कबीरदास

भक्त कबीर

जाड़े की रात लगभग बीत चुकी है। चारो ओर घने कुहासे की धुँधियाली छाई है। इसी समय आचार्य रामानन्द काशी के असीघाट पर गंगा-स्नान करने आये हैं। ब्राह्ममुहूर्त्त को थोड़ी-ही देर रह गई है; इसी बीच उन्हें आश्रम में लौटकर प्रात: कृत्य पूरा कर लेना है।

घाट-बाट में गजब का सन्नाटापन है, बिल्कुल नीरव निस्तब्धता। बीच-बीच में या तो भोर में विचरने वाले पक्षियों के डैनों की फड़फड़ाहट सुनाई पड़ जाती है या गंगा की धारा की कलकल ध्वनि।

अस्पष्ट धुँधियाली में घाट की सीढ़ी भी तो भली तरह दिखाई नहीं देती। पर इसमें रक्खा ही क्या है? यहाँ की सीढ़ियों पर चढ़ने उतरने का उन्हें अब अभ्यास हो ही गया है।

कमण्डलु और गेरुए झूल को घाट के ऊपर ही रखकर रामानन्द ने निचली सीढ़ी की तरफ पाँव बढ़ाया भर है। अचानक, किसी के अंग के स्पर्श ने उन्हें चौंका दिया। कौन है यहाँ?

च्-च्-च्-च्! क्या यह किसी मृतक का शरीर है? "राम-राम-राम" उनके मुँह से आप-ही-आप निकल पड़ा। नीचे की ओर झुककर बोले— "क्यों जी, इस ठिठुरती ठंढी रात में घाट की सीढ़ियों पर आकर सोया करते हो? उठो, खड़े तो हो। तुम आखिर हो कौन?

सोनेवाला, अस्तव्यस्तता में तुरत ही उठकर खड़ा हो गया। श्रद्धा से विनत मस्तक के पास अपने जुड़े हाथ ले जाकर उसने निवेदन किया—"प्रभो, मैं हूँ कबीर दास, आपका ही अनुगृहीत शिष्य !"

"सो कैसे ? यह क्या कह रहे हो ? तुम्हें तो मैंने कभी अपना शिष्य नहीं बनाया। फिर ऐसा भ्रम क्यों ?

"प्रभो, ऐसा न कहें। यह मेरा भ्रम नहीं है। इससे बड़े किसी अन्य सत्य का आविर्भाव मेरे जीवन में और क्योंकर होगा ? मेरा जन्म हुआ है निरक्षर अन्त्यज जुलाहे के घर में। अब तक यह शरीर और मन बन्धन की दशा में मृत-जैसा पड़ा था। मुक्त होने की कोई आशा ही नहीं थी। किन्तु आज आपकी कृपा पाकर जैसे नई जिन्दगी मिल गई। अपने पवित्र चरणों के स्पर्श से मेरी देह को कृतार्थ कर आप ने आज मुझे जिस नाम की दीक्षा दी है, वही तो मेरे उद्धार-पथ का पाथेय है। प्रभो, इस अधम को आप अपना आशीर्वाद और सहारा दें।"

इतना कहकर कबीर दास भक्ति भाव से उन्हें साष्टांग प्रणाम करने लगे और फिर गंगा के घाट पर से विदा हुए।

रामानन्द अपलक दृष्टि से उस तरुण को देखते रहे जो अपने को उन्हीं का शिष्य बता रहा है ! पता नहीं, उनके अन्तश्चक्षु के सामने इस नये शिष्य के किस भविष्यत् का चित्र उद्भासित हो रहा है !

रामानुज के संप्रदाय के अन्यतम श्रेष्ठ आचार्य ये ही रामानन्द स्वामी हैं। अपने संप्रदाय के अनेक विधि-निषेधों का आपने अतिक्रमण किया है और भक्ति साधना के अपेक्षाकृत अधिक उदार प्राङ्गण में आप आगे बढ़कर खड़े हुए हैं। भारत वर्ष के श्रेष्ठ आध्यात्म-केन्द्र—काशी में आकर अपने मत का आस्थापन इस समय आप कर रहे हैं। फिर तो विभिन्न जातियों और धर्मों के असंख्य मुमुक्षुओं का दल इनका आश्रय पाकर कृतार्थ होने लगा। यही कारण है कि एक ओर यदि शुद्धाचारी, रक्षणशील, माला-तिलकधारी रामायत वैष्णव उनके शिष्य हैं तो दूसरी ओर अन्तरंग प्रेम-

साधना के गायक मर्मी साधक भी उन्हीं के शिष्य हैं।

भक्ति की धारा प्रवाहित कर आचार्य रामानन्द ने आध्यात्मिक क्षेत्र में अनेक समर्थ साधकों को प्रवर्त्तित किया। इनमें अन्यतम थे कबीर, रैदास, धनादास और सेनादास जो क्रमशः जुलाहा, चमार, जाट और नाई जाति के सन्त थे। किन्तु इन सब में भी प्रधानतम थे कबीर दास, जिन्होंने रामानन्द के उदार प्राणमय साधना-पन्थ को उत्तर भारत के कोने-कोने में फैलाया। इस तथ्य की ओर संकेत करनेवाला एक दोहा हिन्दी क्षेत्र में सुप्रचलित है :

"भक्ति द्राविड़ ऊपजी, लायो रामानन्द।
परगट किया कबीर ने, सात दीप नौ खण्ड॥"

—तात्पर्य यह है कि भक्ति का जन्म दक्षिण भारत में हुआ; उसे उस सीमा से निकाल लाने का श्रेय है आचार्य रामानन्द को और उसे समूची पृथ्वी में फैलाने वाले हैं कबीर दास!

हाँ, कबीर के परवर्त्ती काल में, मध्ययुग का कोई भी ऐसा धार्मिक आन्दोलन न था जिसपर कबीर दास के साधना-पन्थ में प्राप्य शरणागति और प्रेममयता की छाप न रही हो।

वाराणसी के एक दरिद्र मुसलमान जुलाहे के घर में कबीर दास का जन्म हुआ था। उस निरक्षर, निराश्रित, संपत्ति-रहित जुलाहे के परिवार की जीविका चलती थी बुनकरी के सहारे। पिता नीरू और माँ नीमा, दोनों ही की इच्छा थी कि उनका पुत्र अपनी पुश्तैनी वृत्ति, कपड़ा बुनने की कला में दक्षता प्राप्त कर ले। जब तक ऐसा नहीं हो जाता तब तक उनके लिए निश्चिन्तता की साँस लेना संभव नहीं था।

इधर कबीर का हाल ऐसा था कि उन्हें सांसारिक कार्यों के प्रति गहरी उदासीनता थी; ऐसे किसी काम में उनकी आन्तरिक रुचि नहीं होती थी। कहीं से कोई फकीर या साधु आ जाते तो वे चट उनकी सेवा में लग जाते। उनके पीछे-पीछे घूमते-घूमते कैसे समय बीत जाता है इसका कबीर

को पता ही नहीं रहता। लड़के का मन जैसे घर में अंटता ही नहीं। ऐसे वैरागी को करघे के पास बिठाये रखना कोई सरल काम न था !

भरपूर चेष्टा करने और उसकी विफलता देख लेने के बाद, पुत्र के सम्बन्ध में माँ-बाप की वह आशा टूटने लगी। अशान्ति की दबी आग माँ के मन को जलाती रहती। यूँ तो यह घर ही धर्म परायण था धर्माचरण किंवा, पीर-फकीर की सेवा के लिए किसी को मनाही न थी। परन्तु संसार का दायित्व ग्रहण करना भी तो एक महान् कर्त्तव्य है। यदि जवान बेटे ने वह दायित्व छोड़ दिया, तो वृद्धों की क्या गति होगी ? आह, अब इस दरिद्रता के दु:ख से कभी त्राण नहीं मिल पायगा। नीमा इस तरह रह-रह कर सोंचती।

बचपन में ही कबीर दास के अन्तर में मुक्ति की अदम्य पिपासा और तीव्र वैराग्य का जन्म हो चुका था। पिता और माता की सरलता तथा स्वाभाविक भक्ति के उपकरणों से ही उनका मन भी गढ़ा गया था। फिर इसके अतिरिक्त एक अन्य प्रभाव भी था। वह यह कि इस परिवार ने जिस धर्म को छोड़कर इस्लाम-मत का अवलम्बन किया था, दीर्घकाल बीत जाने के बाद भी उसका संस्कार उसके अन्तर में विद्यमान रह गया था।

उत्तर भारत के जुलाहों की यह जमात किसी समय हिन्दू थी, अर्थात् नाथ-पन्थी योगी। महज दो-तीन पीढ़ी पहले इस ने मुसलमानी मजहब को कबूल कर लिया था। उस भूतकाल-व्यापी आधार और संस्कार का, योगी-जीवन के आदर्श और साधना का ऐतिह्य, तभी, क्षीण-धारा में उसके बीच आज भी विद्यमान है। कबीर दास की सहज भक्ति परायणता और और धर्म-जीवन का मूल, उनके इस प्राचीन वंश-वैशिष्ट्य में ही ढूँढ़ना होगा।

वाराणसी में बहुतेरे हिन्दू साधु-सन्त रहते; इस पवित्र तीर्थ-भूमि के अनेक पवित्र स्थानों पर दिव्य शक्तिधर महापुरुषों का आना-

जाना लगा ही रहता था। इन महात्माओं में से कुछ का ही किंचिद् सत्संग पाकर कबीर की मुक्ति-कामना तीव्रता के साथ जग पड़ी थी। उन्होंने निश्चय किया कि इन्हीं में से किन्हीं की दीक्षा प्राप्त कर वे उनके आश्रय में साधन-भजन करते समय बिता देंगे।

फिर भी एक दुराव की कठिनाई तो थी ही। आखिरकार वे मुसलमान हैं। उच्च जाति के कोई साधक-संन्यासी उन्हें दीक्षा देना स्वीकार नहीं करेंगे। पर आज उनके अन्तर में असह्य ज्वाला जल उठी है। अब उन्हें शीघ्र ही दीक्षा लेनी होगी।

आचार्य रामानन्द राम-मन्त्र के उपासक थे। मुक्ति की कामना रखने-वालों की मंडली उनके आश्रम में आये दिन भीड़ लगाये रहती। प्रेम-भक्ति के माधुर्य, साधन शक्ति के ऐश्वर्य, जैसे सभी का सारतत्त्व, उन्होंने प्राप्त कर लिया था! कबीरदास ने यह भी सुन रक्खा था कि अन्य आचार्यों की अपेक्षा वे बहुत अधिक उदार हैं। वे जितने ही समर्थ हैं, उतने ही कृपालु भी हैं। फिर भी कबीर दास को भय था कि कहीं उन्हें दुत्कार न दिया जाय। तब क्या उपाय रह जायगा? अन्त में उन्होंने तय किया कि अपने कार्य की सिद्धि के लिए एक मामूली-सी चालाकी ही क्यों न की जाय। सर्वज्ञ गुरु उनके अन्तर की निश्छल निष्ठा को तो, जान ही जायेंगे। निदान, छल के अपराध से उन्हें माफी भी अवश्य मिलेगी। सो, दीक्षा के लिए आतुर कबीर ने, उक्त विचित्र रीति का अवलम्बन कर, गंगा के तट पर, उस दिन, आखिर, दीक्षा प्राप्त ही कर ली।

कबीर दास राममन्त्र ग्रहण कर घर लौट आये। अन्य किसी काम में न उनका आकर्षण रहा और न उत्साह ही रहा। संपूर्ण तन-मन में भाव-गंगा के प्रबल प्रवाह का अब वे अनुभव करते और जैसे उसी प्रवाह में उन्होंने अपने-आप को खो दिया।

वृद्ध माता पिता को डर होने लगा; इस तरह तो सारा कारोबार

ही डूब जायगा। परिवार चलाने के दायित्व को इस तरह भूल जाने से कैसे काम चलेगा ?

करघे के पास बैठकर कबीरदास अपने काम में लग जाते हैं; पर हाथ की भरनी हाथ में ज्यों-की-त्यों पड़ी रहती है। ताने-वाने उलझ-बिखर जाते हैं। बुनना छोड़कर वे अनजाने ही गाने लगते हैं—

'दीनदयाल भरोसे तेरे।
सब परिवारु चढ़ायो बेड़े।'

—हे मेरे दीन दयाल, मेरा केवल तुम्हीं पर भरोसा है। मैंने अपने समूचे परिवार को तुम्हारी नैया पर बिठा दिया है, प्रभो !

शरणागति और आत्मसमर्पण के सहारे भक्त कबीरदास की साधना दिनानुदिन आगे बढ़ती चली जा रही है।

लेकिन इस प्रकार उदासीन रहकर, भावावेश में पड़े-पड़े, सांसारिक व्यवहार का निर्वाह किस प्रकार से हो सकेगा ? कबीर के माता-पिता को यह पागलपन चिन्तित कर देता है। नितान्त दरिद्रता और दुःख के बीच, अब नीरू और नीमा के दिन कट रहे हैं। बुढ़ापे के बीच उनका एक मात्र सहारा है, यही एक मात्र पुत्र—कबीरदास। अपढ़ होने के बावजूद बुद्धि और कौशल का उसमें अभाव नहीं है। पर किसी काम में अब उसका मन ही नहीं लगता। कबीर की माता नीमा की उन दिनों कैसी अवस्था थी, इसका मार्मिक चित्रण, स्वयं कबीर के ही इस पद में मिलता है।

मुसि मुसि रोवे कबीर की माय,
इस बारक कैसे जीवे रघुराय।
ताना बाना, सब तज्यो कबीर,
हरि का नाम लिख लियो शरीर।

हाय, कबीर की माँ चुपके-चुपके रोती है और गुहार करती है—हे रघुराय, अब जिन्दगी किस तरह चल पायगी, यह तो बता दो। कबीर

ने समूचे शरीर पर हरि का नाम लिख लिया है और ताने-बाने का काम उसने छोड़ दिया है !

शक्तिमान् आचार्य रामानन्द का स्पर्श और उनके द्वारा प्रदत्त राममन्त्र आज चैतन्य हो उठे हैं। संसार के लोग कबीर को पागल समझते हैं तो समझें, पर सत्य तो यह है कि कबीरदास के रूप में अब एक नये मनुष्य ने अपना रूपान्तर प्राप्त किया है। भगवत्-प्रेम की उच्छालित तरंग ने उनकी संपूर्ण चेतना को एकाकार कर दिया है। नाम रस में निरन्तर डुबकी लगाते रहने के कारण, कबीर दास के साधक-जीवन की जो दशा हो गई है उसका वर्णन वे इस प्रकार स्वयं करते हैं—

"नाम अमल उतरै ना, भाई,
और अमल छिन-छिन चढ़ि उतरै, नाम अमल दिन बढ़ै सवाई।
देखत चढ़ै, सुनत हिय लागै, सुरत किये तन देत घुमाई।
पियत पियासा भये मतवाला, पायो नाम मिटी दुचिताई।
जो जन नाम अमल रस चाखा, तरि गई गणिका, सदन कसाई।
कह कबीर गूँगा गुड़ खाया, बिन रसना का करे बड़ाई॥

भाइयों, नाम का नशा कभी नही टूटता। और नशे चढ़ते-उतरते हैं, पर यह नशा उतरना नहीं जानता, केवल चढ़ता चला जाता है। नाम की ओर निगाह डालने मात्र से मदहोशी चढ़ बैठती है; सुन लेने भर से हृदय में हूल मच जाती है; स्मरण आते-आते देह डगमगाने लगती हैं; प्याला छुआ नहीं, कि बेहोशी आ गई। जिसने 'नाम' को पा लिया है उसका चित्त दूसरी ओर, कभी नहीं जा सकता। नाम के इस नशे को जिसने भी चखा, उसी की बन गई। उसी से तो वेश्या और कसाई तक का उद्धार हो गया। गूंगा बेचारा गुड़ तो खा गया, पर अपनी वाणी के अभाव में उसका स्वाद कैसे बताये ? कबीर दास भी इतना ही बता सकते हैं।

महापुरुष रामानन्द का सहारा कबीरदास को मिल गया है। गुरु कृपा

के प्रकाश में अन्तर का रत्न-मन्दिर जगमगा उठा है। जन्म-जन्मान्तर के सात्त्विक संस्कारों का समूह उफन कर सामने आ गया है। कबीर हो गये हैं प्रेम के पगले, बिलकुल उदासीन—'मस्त'।

बाद में चलकर कबीर ने लिखा : 'राग लखै सो तरियाँ'—जिस भाग्यशाली को प्रेम का दर्शन होता है, मुक्ति उसे ही मिलती है। किन्तु कबीर के जीवन में इस सौभाग्य का अवतरण यों ही नहीं हुआ था; उन्हें इसके लिए लंबे अर्से तक प्रतीक्षा करनी पड़ी थी। सामाजिक प्रतिरोध, जीवन की समस्याओं की कठोरता और तीव्र कष्ट सहन के साथ साथ सर्वस्व-त्याग की तत्परता के बीच रहते हुए, उन्होंने इस सौभाग्य की प्रतीक्षा की, एक-एक घड़ी गिन-गिनकर बिताई थी।

नितान्त साधारण जुलाहा-परिवार के बेटे कबीर की स्थिति का अनुमान सहज ही किया जा सकता है। उनके प्रेम की पीड़ा से ओत-प्रोत जीवन के मर्म को समझ पाना उनके पास-पड़ोस के लोगों के लिए अथवा उनके माता-पिता के लिए संभव ही नहीं था। वे सभी केवल इसी ताक में लगे थे कि किस तरह कबीर के वैरागी चित्त को सांसारिक व्यापारों की ओर फिराया जा सके। निदान जोर-जबर्दस्ती करके उनकी शादी करा दी गई। किसे मालूम कि नई तरुणाई से कौंधती दुल्हन, संसार से रूठे फकीर को संसार में वापस लौटाने में समर्थ न होगी ?

लेकिन गुरु रामानन्द का स्पर्श भी तो अमोघ है। वह निष्फल क्यों कर हो ? उस स्पर्श ने कबीर के दैहिक जीवन की हर सतह में आग सुलगा दी है और माँ-बाप का स्नेह, पत्नी का प्रेम, संसार के मोह बन्धन—सभी उस आग के सामने तृणवत् हैं।

विवाह के बाद भी वे पहले की ही तरह उदासीन भावोन्मत्तता की दशा में दिन बिताने लगे और संसार में रहकर भी, वे गार्हस्थ्य जीवन को फिर कभी ग्रहण नहीं कर सके।

साधना की दिव्य अनुभूतियाँ होतीं; लोकोत्तर जीवन की स्वादुता,

सुगन्धि और रसकी वृष्टि में उनका साधक-जीवन पोर-पोर भींगता और रूपान्तरित जीवन की निर्लिप्तता लेकर वे घर-परिवार के परिवेश में रह लेते।

कबीर की पत्नी और उन दोनों के गार्हस्थ्य-जीवन के सम्बन्ध में विस्तृत जानकारी प्राप्त करने का आज कोई साधन नहीं रह गया है। केवल इतना मालूम है कि उनके पुत्र कमाल भी आगे चलकर महान् साधक हुए। पिता की साधना की निर्दिष्ट धारा का अनुसरण नहीं करने के बावजुद विशिष्ट रहस्यवादी साधक के रूप में उन्होंने सारे उत्तर भारत में प्रसिद्धि प्राप्त की।

कबीर की साधना है निगूढ़ प्रेम की साधना। प्रियतम से मिलने की आतुरता के अगाध समुद्र में वे तरंग की तरह अधीर हैं; इस विरह की तीव्र वेदना में वे सूख गये हैं। नाम-कीर्त्तन, दोहा-भजन के गान में दिन-पर-दिन, रात पर-रात बीतती जाती है। इस शास्त्र-ज्ञान से वंचित निरक्षर साधक की रचनाओं में आन्तरिक शान्त साधना का मधुर रस उफनाया करता है और प्रत्यक्ष अनुभूति की दीप्ति उसके भीतर से, नक्षत्र-राशि के प्रतिविम्ब की तरह झलमलाती रहती है।

केवल जनसाधारण के मन में नहीं, साधु-सन्तों के भी अन्तर में, कबीर के भाव और सुर से फूटती लौ, लौ लगा देती है। आश्चर्य-चकित होकर वे सोचते हैं, परम सत्य की ऐसी वाणी, शाश्वत जीवन के ये गूढ़ तत्त्व, इस तरह की सहज स्वच्छन्दता के साथ, जुलाहे के मुखसे क्योंकर निकल पाते हैं?

उनके अन्तर के खजाने में जन्म-जन्मान्तर के साधन-ऐश्वर्य संचित हैं। रामानन्द के ऐन्द्रजालिक स्पर्श ने उस खजाने के बन्द दरवाजे को खोज भर दिया है। भक्त कबीर को अपना ही खुला खजाना मिला है, किसी गैर का नहीं। अपूर्व उदारता के साथ दोनों हाथों वे बिल्कुल अपनी दौलत बाँट रहे हैं।

साधना और सिद्धि, विरह और मिलन का रस-वैचित्र्य उनके दोहों में

अनूठेपन के साथ प्रकट हुआ है। प्रेमोपासक के ये दोहे देश देशान्तर, दिग-दिगन्तर में प्राण तरंगों की हिलोर पैदा कर रहे हैं।

प्रेम के साधक—कबीर की संपूर्ण सत्ता, समग्र देह-मन-प्राण प्रिय से मिलन के लिए उन्मुख हैं। मगर, हाय उनका दर्शन तो मिलता ही नहीं—क्यों जी ? यही दुःख वे तो अपने पदों में गाते हैं—

"आँखिन में झाईं पड़ी, पन्थ निहारि-निहारि।
जीहड़िया छाले पड़े, नाम पुकारि-पुकारि॥
विरह कमण्डलु कर लिए वैरागी ये नैन।
दर-दर जाँचत फिरत हैं दरस-मधकरी दैन॥"

हाय, राह अगोरते-अगोरते आँखे चौंधिया गई हैं; पुकारते पुकारते जीभ में छाले पड़ गये हैं; वियोग का कमण्डलु हाथ में लेकर हर दरवाजे पर से आँखें अपने प्रियतम का दीदार माँगतो, फिर रही हैं; पर प्रियतम दिखाई नहीं देता !

प्रेम में पागल कबीर का विरही चित्त इस बार मरने की धमकी देकर, न दिखाई देनेवाले अपने प्रियतम से साफ-साफ कह देता है—

यह तन जारौं, मसि करौं, लिखौं राम का नाँव।
लेखनि करौ करंक की, लिखि-लिखि राम पठाँव॥
इस तन का दियरा करौं, बाती मेलूँ जीव।
लोहु सींचौं तेल ज्यों, कब मुख देखौं पीव॥
कै विहिरन कूँ मीच दे, कै आपा दिखराय।
आठ पहर को दाहना मों से सहा न जाय॥

अब इस देहको जलाकर भस्म की स्याही बनानी होगी और उस स्याही से राम का नाम लिखना होगा। पसली की हड्डी को कलम बनाकर उस से प्रियतम का नाम लिख-लिखकर हर ओर को भेजना है। यह देह दिया बन गई है, प्राण उसमें बाती बनकर जल रहे हैं और खून तेल की तरह सूखता जा रहा है। पता नहीं, इस अहर्निश जलने वाले दिये की रौशनी में प्रिय का

मुखड़ा कब दिखाई पड़ेगा। हाय, प्रियतम, अपना मुखड़ा नहीं दिखाना चाहते तो अपनी इस वियोगिनी को मौत क्यों नहीं दे देते ? आठ पहर की इस दारुण आग में तिल-तिल कर जलते रहना अब मुझसे सहा नहीं जाता।

दुःख के दाह और प्रेम के मन्थन के बाद साधक जीवन को प्रियतम के मिलन का पैगाम मिल गया है। हाँ, कबीर के द्वार पर अब परम प्रभु का संदेश आ गया है। इस प्रेममय अभिसार का मार्मिक वर्णन स्वयं कबीर दास की वाणी में सुनिये:—

'भीजै चुनरिया प्रेमरस-बूँदन
आरत साजि कै चली है सुहागिन अपने पी को ढूँढन।
काहे की तेरी बनी है चुनरिया काहे लागे चारों फूदन।
पाँच तत्त्व की बनी है चुनरिया नाम के लागे है फूदन।
चढ़िगे महल खुलि गई रे किबड़िया दास कबीर लागे
झूलन।"

चुनरी प्रेमरस की बूँदों से भींग गई है—प्रेमिका बेल—बूटोंवाली ओढ़नी ओढ़कर प्रियतम की खोज मे निकली है। उसके पाँव, लाल महावर से रंगे हैं। क्यों री तुम्हारी यह चुनरी क्या है और इसमें चारों तरफ कैसी बटन लगी हैं ? भई, यह चुनरी पंचतत्व की है और नाम की बटन इसमें लगी हैं। अरे, इसबार तो यह सचमुच प्रियतम की ऊँची अटारी पर च गई; प्रिय का दरवाजा खुल गया है और कबीर दास आनन्द के हिंडोले पर पेंग देकर झूल रहे हैं !

प्रिय का यह मिलन, यह परम प्राप्ति, उन्हें दीर्घ प्रतीक्षा के बाद मुबारक हुई है। अपने इस सौभाग्य की घोषणा वे स्वयं इस प्रकार कर गये हैं—

'कहै कबीर सुनो भाग हमारा,
पाया अचल सोहाग रे'

सच ही कबीर बड़े भाग्यशाली हैं, प्रेममय प्रभु के परम प्रेम पाकर वे

कृतकृत्य हो चुके हैं। इस मिलन सुख का संवाद, रंग-महल की गोपन कथा वे सभी भक्तों, समग्र अन्तरंग साधकों को अकपट भाव से जब तक कह नहीं देते, तब तक उन्हें चैन कहाँ? उसी अपरूप भाव की अपरूप व्यञ्जना उनकी वाणी बन गई है:—

जोग जुगत सो रंग महल में,
प्रिय पायो अन मोल रे।
कहे कबीर आनन्द भयो है,
बाजत अनहृत ढोल रे॥

हाँ, योग की युक्तियों के सहारे अपने प्रियतम को, रंगमहल के अनमोल धन को, कबीर दास ने पाया है। वे कहते हैं—आज बड़ा ही आनन्द है; सुनो, सुनो, अनाहत मृदंग गनगना रहा है।

रहस्य के साधक के जीवन में प्रिय-मिलन का मधुर रस और भी प्रगाढ़ हो उठा है। पर वह बताया जाय तो कैसे?—

'लिखा-लिखी की है नहीं, देखा-देखी बात।
दूल्हा-दूल्हिनी मिलि गये, फीकी पड़ी बारात॥'

यह तो लिखा-पढ़ी की बात ही नहीं है; प्रत्यक्ष अनुभव की चीज है। वर-कन्या के मिलन के बाद बारात को कौन पूछना है? महफिल बासी सन्नाटेपन के फीके में कुम्हला कर रह जाती है।

कबीर की यह प्रेम—साधना अन्तरतम के निविड़ मिलन मात्र में नहीं रुक जाती, एकीकरण और एकात्मकरण के बीच पूर्ण परिसमाप्ति तक चलती है—

'उलटि समान' आप में प्रगटै ज्योति अनन्त।
साहिब सेवक एक संग, खेलै सदा बसन्त॥

कबीर अपने-आप में पलट कर समा गये हैं। वहीं अनन्त प्रकाश प्रकट हुआ है। प्रभु और दास मिलकर एक हो गये हैं और अनन्त बसन्त का सम्पूर्ण वैभव सदा के लिए खिल खिलाहट में फट पड़ा है!

सिद्ध साधक कबीर दास की प्रसिद्धि, इस समय सम्पूर्ण उत्तर भारत के दिग-दिगन्त में व्याप्त हो चुकी है। वाराणसी जैसे विश्रुत धर्म केन्द्र में साधु संन्यासी और फकीरों की भीड़ लगी ही रहती है। उसके बीच में भी कबीर ने अपना विशिष्ट स्थान बना लिया है।

आचार्य रामानन्द के शिष्य होकर भी कबीर को रामानन्दी-संप्रदाय में स्थान नहीं मिला। किसी संप्रदाय की संकीर्ण सीमा में बँधकर रहने की वृत्ति उन्हें थी भी नहीं। गुरु के आशीर्वाद की पवित्रता से सिक्त होकर उन्होंने एक सहज-साध्य, जनप्रिय भक्तिमार्ग की अपूर्व साधना का प्रवर्त्तन किया। जटिल अनुष्ठान और बाह्याचार को छोड़कर, उन्होंने एक ऐसे उदार सार्वजनिक धर्ममत की स्थापना की जिसमें उस युग के शिक्षित और उच्चवर्ण के लोगों की तरह अशिक्षितों और अन्त्यजों के लिए प्रविष्ट होना सरल हो गया।

इसीलिए उस समय के साधारण जन समाज की नर मण्डली में उक्त कबीर की लोक प्रियता की जैसे कोई सीमा न थी। वे उनके बीच उदार आध्यात्मिकता के नेता और भक्ति-सिद्ध महापुरुष के रुप में प्रतिष्ठित हो गये।

इस प्रतिष्ठा और मर्यादा की प्राप्ति के बाद भी, गुरु रामानन्द द्वारा प्रदत्त शरणागति और भक्ति के आदर्श से, एकक्षण के लिए भी, कबीर दास च्युत नहीं हुए। अपने दोहों में इस विश्रुत सिद्ध पुरुष ने विनय और आत्म-सर्पण की पराकाष्ठा का निवेदन किया है—

> कविरा कुतिया रामकी, मुतिया मेरो नाउँ।
> गले रामकी जेवड़ी, जित खींचै तित जाउँ॥
> तू तू करै आइ हौं, दुर-दुर करै तो जाउँ।
> ज्यौं राखै तैसे रहौं, जो देबै सो खाउँ॥

कबीर तो राम की कुतिया हैं, उसका नाम है मोतिया। इस कुतिया के गले में राम ने जो चमोटी बाँध रक्खी है, उससे बढ़कर उसके लिए दूसरा भूषण क्या हो सकता है? वह असु-अतू कर बुलाते हैं, तो यह

कुतिया उनके निकट पहुँच जाती है और दुम हिलाने लगती है। जब वे दुत्कार कर भगा देते हैं, तो चुपचाप चूँ-चमड़ किये बिना, अलग हो जाती है। वे जैसे रखते हैं, उसी तरह रहती है और वे जो देते हैं, खाकर रह लेती है यह कुतिया !

राम-मन्त्र के द्वारा दीक्षित होने के साथ-साथ कबीरदास के अन्तर्जीवन का कपाट खुल जाता है; रामनाम के रस में डूबकर वे भावुक साधक के रूप में परिणत हो जाते हैं। उस दशा में, प्रेमोन्माद में मग्न साधक को, लोग ऐसा कहते सुनते हैं—

'को बीनै, प्रेम लाग्यौ री माई, को बीनै ?
राम-रसायन माते री माई, को बीनै ?'

'अरी माँ, कपड़ा अब कौन बुनेगा ? मैं तो प्रेम में पड़ गया, अब बुनेगा तो कौन ! राम नाम का रस पीकर मैं बेहोश हो गया हूँ, कपड़ा, भला कौन बुनेगा ?

राम नाम के मादक रस के नशे की इस बेहोशी ने ही, आखिर कबीर को सिद्ध साधक बना दिया और समग्र संसार उनके लिए उनके इष्ट की मूर्त्ति बन गया। केवल राम कहकर ही नहीं, हरि, गोविन्द, केशव, साहिब आदि अनेक नाम से वे अपने प्रियतम प्रभु को पुकारते हैं। इन नाना नामों में ही उनके अनाम अचिन्त्य अवर्णनीय प्रभु—पर-ब्रह्म-तत्त्व; उनके लिए प्रकट हो गये हैं। कबीर दास की राय में उनके प्रभु-राम वेद और कुरान की पहुँच से परे हैं, वे हैं सर्वातीत परम तत्त्व—

'वेद—कुरानौ गमि नहीं।'

कबीर, आखिर, किस तत्त्व के समर्थक हैं—सगुण तत्त्व के अथवा निर्गुण तत्व के ? उत्तर में वे जो कहते हैं, उसमें तो निर्गुण तत्व का ही गुण-गान है—

'दास कबीर गावे निरगुण हो, साधो कर ले बिचार।
नरम गरम सौदा करि ले हो, आगे हाट ना बाजार ॥'

फिर भी वास्तविकता यही है कि अपनी साधना में उन्होंने साकार और निराकार, रूप और अरूप का अपूर्व सामञ्जस्य उपस्थापित किया है। उनकी रचनाओं में यह अपूर्व तत्त्व चमत्कार के साथ प्रकट हुआ है। वे बताते हैं—

'रेख रूप नहिं जोति है, अधर धरो नहिं देह।
गगन मँडल के मध्य में, निवसै पुरुष विदेह॥
साईं मेरा एक तू, और न दूजा कोइ।
जो साहब दूजा कहैं, दूजा कुल का होइ॥
सरगुन की सेवा करौं, निर्गुन का करि ज्ञान।
निरगुण सरगुन के परे, तहाँ हमारा ध्यान।'

जिनका न रूप है और न आकार; जिन्होंने देह को धारण नहीं किया, वही विदेह पुरुष गगन-मण्डल के मध्य में विराज रहे हैं। हे प्रभो, केवल तुम्हीं हो, और कुछ या कोई नहीं है। कोई दोगला ही होगा जो ऐसा कहे कि तुम्हें छोड़कर और दूसरा कोई है। कबीर दास निर्गुण को जानकर सगुण की उपासना करते हैं। पर उनका ध्यान तो उन पर है जो इन दोनों के परे जाकर एक और अद्वैत हैं।

कबीर हैं रहस्यवादी प्रेम साधक, तभी साकार इष्ट का स्मरण करते हुए भी, वे नाम कीर्त्तन के द्वारा अपने निर्गुण तत्त्व का रस-पान करते हैं। अनन्त भाव से ओतप्रोत विग्रह ही उनके इष्ट हैं! जागरण हो या स्वप्न, भक्त साधक को तो 'मैं–तुम' के दुराव और 'प्रभु भक्त' की दुई से होकर चलने की आतुरता लगी ही रहती है। 'रस' और 'रसिक' का भाव वहाँ बना ही रहता है। इसीलिए अपने प्रभु के प्रति कबीर की प्रार्थना है—

'नयना अन्तर पी बसो, जोहि नयन झाँपेउँ।
ना मैं देखौं और को, ना तोहि देखन देउँ॥
मेरा मुझ में कुछ नहीं, जो कछु है सो तोर।
तेरा तुझ को सौंपते, का लागत है मोर॥'

आओ हे प्रभो, मेरी आँखों के भीतर आ जाओ। तुम्हें इन आँखों से देखकर, सदा के लिए इन्हीं आँखों में मूँद रक्खूँ ताकि न तो मैं किसी दूसरे को देखूँ और न तुम्हें ही वैसा करने दूँ। मेरे प्रियतम, अजी, मेरा है भी क्या? सब कुछ तो तुम्हारा ही है न? इसलिए सब कुछ तुम पर न्योछावर कर दूँ, तो भी मेरा क्या आता-जाता है? केवल तुम्हारी सम्पत्ति तुम्हें सौंप देने की—बात है। यही तो किये देता हूँ मैं।

प्रिय-मिलन और अनन्य निष्ठा, परम कवित्व की वाणी के ये विषय भक्तों के हृदय में चिरकाल से तरंगित और अनुरणित होते आये हैं। कबीर दास ने इस मिलन की माधुरी का वर्णन गद्‌गद होकर किया है। उनके स्वप्न का मिलन उतना ही मीठा और मादक है, जितना कि जागरण का मिलन। वे कहते हैं—

'सुपने में साईं मिल्या, सोवत लिया जगाय।
आँखि न खोलूँ डरपता, मत सुपना ह्वै जाय॥
साईं केरा बहुत गुण, लिखे जो हिरदे माहिं।
पिऊँ न पानी डरपता, मत सो धोयो जाहिं॥

कबीर तो सो रहे थे, सपने में आकर प्रियतम ने ही जगा दिया। पर आँखें वे खोलना नहीं चाहते। उन्हें डर लगा हुआ है कि जो आँखें बन्द किये रहने पर सच होकर दिखाई दे रहा है, वह आँखें खोल देने पर कहीं, निरा सपना न बन जाय। प्रियतम के असंख्य गुणों को कबीर दास ने अपने हृदय में लिख-लिख कर रक्खा है। तभी वे पानी पीते भी डरते हैं। हाय, पिया गया जल कहीं हृदय-पट पर लिखी गई, प्रियतम की उस गुणावली को धोकर मिटा न दे!

रहस्यवादी साधक के ऐसे कई पदों में प्रेम-कल्पना और भावावेग के कवित्वरस की अपूर्व माधुरी दिखाई पड़ती है।

कबीर दास अपनी साधना के क्षेत्र में दुर्बल भावुकता को प्रश्रय नहीं देते। उनकी यह प्रेम-साधना आत्म-त्याग की दीप्ति और निर्भीकता से से ओतप्रोत विरागी साधक की साधना है। अपने शिष्यों को वे 'सुरत'

और 'निरत' की कठोर साधना का संकेत दे गये हैं। किसी फालतूपन और दुर्बलता को वे कभी क्षमा नहीं कर सकते। चाहे वे शिष्य हों, या बाहर के कोई भक्त, किंवा अन्य प्रकार के साधक हों, मिथ्याचार और वेशभूषा के अनावश्यक आडम्बर को लेकर वे कबीर की कृपा अथवा स्नेह नहीं प्राप्त कर सकते। वैसी हालत में उन्हें कबीर दास के वचन-बाण बेध कर ही छोड़ेंगे।

भक्तों के लिए वीर-धर्म का आदर्श उपस्थापित करते हुए, अपने एक पद में वे फर्माते हैं—

'भाइयों, जो वीर साधक हैं वे संग्राम के मैदान से पीठ दिखाकर भाग नहीं सकते और जो भाग जाते हैं उन्हें कभी भी वीर नहीं कहा जा सकता। काम, क्रोध, लोभ, मोह से तो जूझना ही होगा। इस देहभूमि में प्रचण्ड युद्ध करना पड़ेगा। इसमें साधक की सहायता करेंगे शील, सत्य और सन्तोष। हाँ, नाम की तलवार खनक उठी है। हे वीर साधको, यदि एक वार युद्ध के क्षेत्र में आ चुके हो तो अपनी तमाम कापुरुषता को उतार कर फेंक दो।

यह आध्यात्मिक संग्राम, सचमुच बड़ा ही कठोर है। इसका वर्णन करते हुए कबीर साहब कहते हैं—

'साध को खेल विकट अति साधो जैसे सती चले लै आगी
सुर घमासान पलक छिन भर को राख भई पिय को लागी
साध करै संग्राम रैन दिन जब लौं देह रहै जागी'

'वीर, सती और साधक तीनों-के-तीनों संग्राम करते हैं। जैसे सती अपने को जलाने के लिए अपने हाथों आग ले चलती है, साधक, की साधना भी वैसी ही होती है। वीर घमासान युद्ध में क्षण भर जूझ कर चिर-विश्रान्ति की वीरगति प्राप्त कर लेते हैं और सती अपने पति की चिता की आग में जल-कर, उतनी ही देर में राख हो जाती है। पर साधक की साधना रात-दिन, जीवन भर चलती रहती है। वह तब तक जूझता रहता है जब तक उसकी देह बनी रहती है।'

कबीर दास इस प्रेम-साधना को निर्भय एकान्त निष्ठा के साथ अन्त तक चलाना चाहते हैं। वे कहते हैं—स्वामी के साथ मिलन होना अत्यन्त कठिन काम है। प्यासे पपीहे की भाँति पी'-पी पुकारते हुए जिन्दगी बीत जाती है। दिन-रात टिकी रहनेवाली प्यास की आग में जल-जलकर रहना पड़ता है; उस एक बूँद आसमानी पानी के लिए शेष जलराशि से मुख फिराकर दाह में घुँघुआती प्रतीक्षा करनी पड़ती है। जैसे मृग बहेलिये के बाण से घायल होकर भी, बहेलिये की बाँसुरी की आवाज के नशे में झूमता रहता है; जैसे सती पति की चिता की आग में तिल-तिल जलकर भी परलोक गामी पति का अनुगमन करने में आनन्द से मुसकाती है; हे साधो, सुनो, तुम्हें उसी तरह देह की आशा छोड़कर, निर्भय और प्रसन्न रहना है तथा प्रभु का गुण गाना है। ऐसा नहीं करने का अर्थ ही है जीवन का व्यर्थ हो जाना !

निरन्तर संग्राम, कठोर त्याग और दृढ़ विश्वास—इन्हीं के बीच से कबीरदास की प्रेम साधना की यह अभियात्रा चलती है। इस के मार्ग में पग-पग पर आती है दुःसह विपत्ति और वियोग की कठिन यन्त्रणा।

प्रेम-भक्ति की इस साधना के दुर्गम पथ का संबल क्या होगा ? उत्तर में कबीर दास बताते है :—'नाम-जप, भजन, और सेवा।' एकाग्र साधना के परिणाम स्वरूप इस पथ के पथिक को, गुरु की कृपा के सहारे, भक्तजीवन की शक्ति प्राप्त होती है। उसे सराबोर करती हुई ऊर्ध्वलोक की दिव्य करुणा, जलधारा की भाँति, बरस पड़ती है और उसकी शान्तिदायिनी शीतलता में उसके तप्त जीवन का प्रत्येक स्तर भींग कर आश्वस्त हो जाता है।

कबीरदास की भक्तिमयी उपासना में भाव-जीवन का अपूर्व संयम दिखाई देता है। निष्ठा, वैराग्य और त्याग-व्रत को लेकर चलनेवाली ज्ञानाश्रयी भक्ति की महिमा को वे स्वीकार करते हैं। फिर भी उनके वंश-संस्कार में—

वाराणसी के इस जुलाहा-परिवार की परम्परा में नाथपन्थ का प्रभाव, कुछ-न-कुछ बचकर चलता ही रह जाता है। नाथ-पन्थ की योग-साधना और काया साधन के तत्त्व, इसीलिए, कबीरदास की भक्ति को, अंश : प्रभावित किये हुए हैं। सूफी पीर तकी साहब के व्यक्तित्व की छाप भी उनपर प्रचुर मात्रा में पड़ी है और कबीरदास के साधन पथ में भक्ति, ज्ञान तथा कठोर साधना की अपूर्व संगमनी, इस प्रकार, प्रकट हुई है।

'साखी' और 'सबद' की रचना कर कबीर ने अपने मत के तत्त्व, प्रकट किये हैं। भाव और भाषा की सहज, निष्कपट, सरलता के कारण उत्तर भारत में, इनका मत, इनकी इन्हीं 'वानियों' के सहारे फैलता रहा। पर यह भी सच है कि कहीं-कहीं इनकी अटपटी बानी उलट वाँसी बनकर कठिन हो गई है।

कबीरदास अन्ततः थे, मरमी साधक और सिद्ध महापुरुष। समाज के जीवन में उन्होंने अपने अनुभव के सत्य और प्रज्ञा के आलोक संचारित किये। एक ही साथ वे सन्त और कवि थे। एक ओर सिद्ध साधक थे तो दूसरी ओर पतित अन्त्यजों के परम बन्धु और आध्यात्मिक नेता थे। समाज में उनका यह रूप सुपरिचित हो चला और भारतवर्ष के जन साधारण के बीच असाधारण आदर के सिंहासन पर वे आसीन हो गये।

केवल समकालीन मानव समाज के अन्तर में अंकित होकर उनकी वाणी समाप्त नहीं हो गई, वह तो हिन्दी भाषा के स्थायी साहित्य में कवित्व के रस, अनुभूति के माधुर्य तथा व्यक्तित्व की उज्ज्वलता से ओतप्रोत होकर सदा के लिए प्रतिष्ठित हो गई और कबीरदास के मत का विस्तार करने लग गई। सिद्ध साधक का दिव्य जीवन-रस इस सौभाग्यवती भाषा की हर परत में ढलकर उसे सरस कर रहा है। ऐसे मार्मिक और व्यक्तित्व-संपन्न साहित्यकार के आविर्भाव से हिन्दी जितनी समृद्ध हुई, उसका लेखा-जोखा सहसा किया नहीं जा सकता। आध्यात्मिक तत्व की व्यञ्जना और मर्मस्पर्शिता की

दृष्टि से, उपमा और रूपक की छटा को लेकर तथा श्लेष और व्यंग्य की चुटीली चुटकियों को देखते हुए, कबीर की रचनाएँ सचमुच समुज्ज्वल साहित्यिक कृति हैं।

कबीर के समय में भारतवर्ष मुसलमानी शासन के अधीन था। मुसलमानों की राजशक्ति दृढ़ आसन प्राप्त कर चुकी थी। हिन्दुओं और मुसलमानों दोनों ही के बीच इस समय वाह्याचार की प्रबलता थी। भेद-बुद्धि, मतवाद और अलगाव करनेवाली प्रवृत्तियाँ धीरे-धीरे प्रभाव जमा चुकी थीं। ऐसे ही समय में कबीर ने धर्म के सार्वभौम सार्वत्रिकतत्त्व को प्रतिष्ठा दी तथा भक्ति और आन्तरिक साधना का पथ प्रवर्तित किया।

वाह्याडम्बर और साम्प्रदायिक मतान्तर को लेकर बाल की खाल खींचने में निमग्न लोगों को कबीर ने कड़ी फटकार सुनाई। व्यंग्य और विद्रूप के कशाघात से इस प्रेमी फकीर ने ढोंगियों की पूरी तरह खबर ली। इनके वाग्वाण से पंडे और मुल्ले तिलमिला उठे तो साथ-ही-साथ जन साधारण को उदार भक्ति के आश्वासन की शान्ति मिली। क्या हिन्दू और क्या मुसलमान जनसाधारण मात्र को इनकी वाणी से धर्मगत ऐक्यबोध और सार्वजनिक आदर्श के प्रति उत्कण्ठा और तुष्टि की प्राप्ति हुई।

ब्राह्मणों के वाह्याडम्बर पर व्यंग्य करते हुए कबीरदास कहते हैं—

'माला फेरत जुग गया, गया न मनका फेर।
करका मनका छोड़ि के, मनका मेनका फेर॥'

माला के सहारे जप करते-करते अर्सा वीत गया पर मन की द्विधा नहीं मिटी। अब हाथ की यह माला रख दो और मन की द्विधा का प्रतिकार सोचो।

इसी तरह वे वेश-धारी संन्यासी के पाखण्ड की विडम्बना करते हुए कहते हैं—

'मन ना रंगायो, रँगायो जोगी कपड़ा

आसन मारि मन्दिर में बैठे,

ब्रह्म छाड़ि पूजन लगे पथरा।'

भगवत् प्रेम के रंग से मन को रँगना सम्भव नहीं हुआ, तो योगी ने गेरुए रंग में कपड़े रँग लिए हैं। यह तो गजब हो गया। वह मन्दिर में आसन मार कर बैठा है, पर पूजा पत्थर की कर रहा है, परमेश्वर की नहीं।

मुसलमान मुल्ले को लक्ष्य करके भी वे ऐसे ही तीक्ष्ण व्यंग्यबाण छोड़ते हैं—

'ना जाने साहिब कैसा है।

मुल्ला होकर बाँग जो देवै, क्या तेरा साहिब बहरा है।

कीड़ी के पग नेउर बाजै सो भी साहिब सुनता है।'

'तुम अपने प्रभु को बिल्कुल ही नहीं जानते। तुम्हें यह नहीं मालूम कि वह कैसा है। मुल्ला बनकर आजान दे रहे हो। यह चिल्ला क्यों रहे हो? क्या तुम्हारे प्रभु बहरे हो गये हैं? नहीं जी, यह तुम्हारी समझ का फेर है। भगवान् तो तुच्छ कीट के पाँव में बँधी पैंजनी की आवाज भी सुन लेते हैं। फिर वे तुम्हारी सहज पुकार क्यों नहीं सुन सकते जो चिल्ला-चिल्लाकर बाँग दे रहे हो?

संकीर्ण सांप्रदायिकता और सामाजिक विधि-निषेधों के विरुद्ध प्रहार-पर-प्रहार कर, कबीरदास ने सहजतर साधना का प्रेम-भक्ति मय आदर्श स्थापित किया। मन्दिर-मस्जिद; शस्त्राचार और रस्मी आडम्बर पर आधारित भेद-विभेद को मिटाकर वे निर्भीक, स्वच्छन्द भक्ति धर्म का द्वार सब के लिए समान भाव से उन्मुक्त कर देते हैं।

प्रचलित सामाजिक मर्यादा के विरुद्ध कबीर के विद्रोह-स्वर ने तत्कालीन समाज के अवगुणों को उत्तेजित कर दिया। बादशाह इब्राहीम लोदी के पास फरियाद की गई कि मुसलमान साधक कबीर ने एक ऐसे नये मत की स्थापना की है जिसमें धर्म के समस्त कर्मकाण्ड पक्ष के प्रति तिरस्कार का गहरा भाव है। वे जनसाधारण के बीच, सार्वजनिक रूप से धार्मिक अनुष्ठानों की खिल्ली

उड़ाते फिरते हैं। इतना ही नहीं वे हज, काबा, मस्जिद, मुल्ला—सभी को अमान्य ठहराते हैं।

बादशाह उस समय जौनपुर पहुँचे हुए थे। एकदिन उनकी अदालत में कबीर दास को हाजिर किया गया।

बादशाह ने पूछा—कबीरदास, तुम्हारे खिलाफ जो इलजाम लगाये गये हैं। मुसलमान जुलाहे के घर में पैदा होकर तुम्हारी यह हिमाकत कि तुम मजहबी कायदों को अदा नहीं करते ? तुमने सरियत को छोड़ दिया है ? हकीकत क्या है, साफ-साफ, खुलकर कहो।

कबीरदास ने उत्तर में कहा—हुजूर, मैं न तो हिन्दू हूँ और न मुसलमान ही हूँ। अमरधाम मेरा देश है, जहाँ जाति-कुल के आधार पर छोटे बड़े का विचार नहीं किया जाता। मैं तो केवल उस देश के संदेश देता फिर रहा हूँ।

अब एक वजीर से रहा नहीं गया। वे अपमान के स्वर में डाँटकर बोले—चुप रहो कबीर दास तुम्हारी गुस्ताखी का कोई हद्दो-हिसाब ही नहीं रह गया है। बादशाह के मुँहपर तुम्हें इस तरह बोलते डर नहीं होता ?

लेकिन कबीर दास को डर हो तो किसका और क्यों ? उन्होंने मन्द-मन्द मुसकाते हुए केवल इतना कहा—

'कबिरा काहे को डरै, सिर पर सिरजन हार।
हाथी चढि डरिये नहीं, कुतिया भूकैं हजार॥'

हाँ कबीर को डर कैसा ? उसकी खबर लेनेवाले हमेशा उसके सिरहाने में मौजूद रहते हैं। जो हाथी की पीठ पर बैठा है, वह कुतियों के भौंकने से क्यों डरेगा भला ?

बादशाह केवल बुद्धिमान ही नहीं थे, उदार भी थे। कबीर दास के सम्बन्ध में तथ्य का पता लगते देर न हुई। सभासदों को उत्तेजित होने से रोक कर उन्होंने कबीर दास को सम्मान के साथ बिदा कर दिया।

वे समझ गये कि सिद्ध पुरुष को राजबल के द्वारा नियन्त्रित करना असंग ही नहीं, असंभव भी है।

कट्टर हिन्दू और मुसलमान के बीच कबीर के मत को उचित समादर नहीं प्राप्त हो सका। किन्तु जन साधारण के मर्म में उनकी उदार भावधारा घर कर गई। समकालीन और परवर्ती मरमी साधकों तथा संस्कारी नेताओं के ऊपर उनके जीवन और वाणी का प्रभाव दीर्घकाल तक कायम रहा।

परवर्त्ती काल के मरमी सिद्ध साधक दादू, कबीर के ही सहपन्थी थे। इतना ही नहीं, ऐसा भी देखा जा सकता है कि कबीर की भक्ति और प्रेम की वाणी की सहज सरल धारा की पद्धति से तुलसी दास की प्रचार पद्धति पर प्रभाव पड़ा। कबीर की 'साखी' और 'सबद' सुनकर रैदास और मीराँबाई की आँखों से आँसू बह चलते थे।

काशी की परिक्रमा करते समय नानक का ध्यान कबीर के दोहे, भजन और संगीत की ओर आकृष्ट हुआ था। उनके धर्म उपदेशों पर, कबीर की छाया, जहाँ तहाँ दिखाई पड़ती है। पवित्र धर्म पुस्तक 'ग्रन्थ साहब' की पंक्तियों में इस तथ्य का अनुसन्धान मिल सकता है। हिन्दू और मुसलमानों के बीच समन्वय की जो विचार धारा कबीर ने प्रचारित की थी, नानक द्वारा प्रचारित तत्व में, उसकी स्पष्ट छाया है।

अयोध्या के जगजीवनदासजी, मालव के बाबालालजी, गाजीपुर के शिवनारायण जी मालवाड़ के चरणदासजी जैसे साधकों के सम्प्रदाय में कबीर के प्रभाव की गहरी छाप है। अपने समय के हिन्दुओं-मुसलमानों के बीच फैले हुए कुसंस्कारों और पाखण्डों को मिटाने में कबीरदास को बड़ी सफलता मिली थी।

काशी के कट्टर मुसलमानों और शाही हुक्कामों के लिए कबीरदास आँख की किरकिरी बन गये थे। उनके विरोध और आक्रोश से कबीरदास की भी जान पर बन आई थी। फिर दर्शनार्थियों और भक्तों की अपार भीड़, आए

दिन, लगी ही रहती। निदान, शान्ति और एकान्त के प्रेमी कबीर को काशी छोड़नी ही पड़ी।

काशी से चलकर वे गंगा के किनारे माणिकपुर में साधन-भजन के लिए ठहरे। यह स्थान अब फतहपुर जिले के अन्तर्गत है। यहाँ से चलकर वे प्रयाग होते झूँसी पहुँचे। इसी झूँसी में सूफी फकीर तकी साहब से उनकी भेंट हुई। तकी साहब से कबीरदास को प्रेम के अनेक अमूल्य तत्व प्राप्त हुए।

कबीर का साधक जीवन अब अपनी पूर्ण परिणति की ओर अग्रसर हो चुका था। उन्हें इसका भी अहसास होने लगा कि नश्वर मानवदेह का शीघ्र ही त्याग करना होगा।

उनके प्राण और मन निरन्तर इष्ट के ध्यान में लगे रहकर आत्मा के आनन्द-सागर में निमग्न रहते। एकान्त वास के लिए वे मगहर गये, जो इस समय उत्तर प्रदेश के गोरखपुर जिले में पड़ता है। काशी के भक्तों और अनुरागियों के दल उन्हें काशी में वापस लेजाने की खातिर प्रायः आते ही रहते। यदि यह सच हो कि कबीर दास देह का त्याग करना चाहते हैं तो काशी को छोड़कर मगहर में रहना कैसे उचित होगा? वे वारंवार उनसे काशी लौट चलने का अनुरोध करते।

कबीर अपने निश्चय पर अडिग थे। वे अपने शुभेच्छुओं को मुसकाकर इतना ही कहते—

'जस काशी, तस मगहर ऊसर, हृदय राम जो होई'

काशी और मगहर एक जैसे महत्व हीन हैं, तथ्य की बात है अपने हृदय में प्रियतम प्रभु के नाम—'राम' की प्रतिष्ठा। जिस हृदय में राम हैं, उसे काशी ही में क्यों मगहर में भी सद्गति प्राप्त हो सकती है।

धीरे-धीरे सैंकड़ों भक्त और अनुरागी काशी को छोड़कर कबीर के पास, मगहर चले आये। इधर काशी में उदासी की सूनी अँधियाली छा गई।

मगहर के एक भाग से होकर बहती थी शुद्ध निर्मल जल की एक पतली धारा—'अमी' नदी। इस नदी के किनारे. वन-प्रान्तर में एक पुरानी कुटिया थी। पहले इसमें एक साधु रहते थे। अब उसे छोड़कर वे कहीं चले गये हैं। वैरागी कबीर इस टूटी कुटिया में आसन लगा कर बैठ गये।

जीवन के चरम महत्त्व की घड़ी—प्रयाण वेला अब आ चली है। प्रेम-भक्ति के रस समुद्र का साधक अबतक अमृत पी रहा था, अब उसमें मग्न होकर एकाकार हो रहा है।

शिष्यों और भक्तों की मण्डली उन्हें चारों ओर से घेरकर भीड़ लगाये रहती। उनके सान्निध्य और उपदेशामृत के अवसर बीते जा रहे हैं। पर प्रेम-भक्त महापुरुष को अवसर कहाँ ?—

'चरखा चलै सुरत विरहिन का
काया-पुरी बनी अति सुन्दर महल बना चेतन का।'
सुरत-भाँवरी होत गगन में पीढ़ा ज्ञान-रतन का।
सूत महीन विरहिनी कातै, माँझ प्रेम-भगतन का
कहै कबीर सुनो भाई साधो माला गुँथी निस-दिन का
पिया मोर ऐहैं, पग रखिहैं, भेंट नीर नैनन का।

विरह-सन्तप्त कबीर दास के हृदय में एक दिन. बहुप्रतीक्षित परम प्रभु का आगमन, अन्ततः घटित होता है। मिलन के आनन्द से सिद्ध साधक बिभोर हो उठते हैं, उनके कण-कण से वह आनन्द विच्छुरित होने लगता है। उनकी यह दिव्य मधुर अनुभूति आनन्द के अमृत सागर में स्नान, बहुत स्वच्छ, अत्यन्त ही सहज है। कबीर इसको सहज समाधि के नाम से पुकारते हैं :—

आँख न मूँदूँ कान न रूँधूँ, काया कष्ट न धारूँ।
खुले नैन में हँसि हँसि देखूँ, सुन्दर रूप निहारूँ॥
कहूँ सो नाम, सुनूँ सो सुमिरन, जो कुछ करूँ सो पूजा।
गृह-उद्यान एक सम देखूँ, भाव मिटाऊँ दूजा॥

जहँ-जहँ जाऊँ सोई परिकरमा जो कुछ करूँ सो सेवा ।
जब सोऊँ तब करूँ दण्डवत पुजूँ और न देवा ।।

यही है सहज समाधि ! इसी दिव्य सुरति से होकर परम प्राप्ति का लग्न एक दिन लग आता है। कबीरदास ब्रह्म-सागर में ऊभ-चूभ हो रहे हैं। "हंसा पायो मानसरोवर।"

अमी नदी के किनारे पर खड़ी उस टूटी कुटिया को घेरकर भक्त-मण्डली आज उमड़ती जा रही है। भक्त-भगवान् की मिलन-कथा का आनन्द-सन्देश सुनने के लिए आग्रह से सभी अधीर हैं। एक-एक शब्द के लिए सौ-सौ कान आतुर हैं।

किन्तु 'साखी' और 'सबादी' के रचयिता कबीर, जिन्होंने दीर्घ-काल तक अपने ज्ञान और प्रेम के उपासना-संगीत से भारतवर्ष के जन-साधारण को ओतप्रोत कर रक्खा था, अब मौन हो गये हैं। मौन की गंभीरता में प्रविष्ट होकर वे आत्म-समाहित हैं। भक्तों के अनुनय करने पर वे इतना ही बोल पाये—

'कबिरा जब हम गावते, तब तिन जाना नाहिं
अब तिन को दिल में लख्यौ, गावन कौ कछु नाहिं।'

साधकों, भक्तों का हठ बढ़ता ही जाता है। वे प्रार्थना करते हैं—जीवन भर जिस आनन्द का रस-सन्देश आप देते रहे हैं, शेष काल में उसे पूर्ण करते जायँ, प्रभो !

प्राण-प्रभु के स्वरूप का वर्णन क्या संभव है ? प्रयाण-यात्री थोड़ी देर के लिए ठहर कर सोचते हैं। किन्तु प्रियतम के परम मिलन का आनन्द शब्दों के द्वारा कहे जाने योग्य तो नहीं है। कबीर दास कहते हैं—

'कहना था सो कह दिया, अब कछु कहा न जाय।
एक रहा दूजा गया, दरिया लहर समाय ।।
उनमुनि सों मन लागिया, गगनहिं पहुँचा जाय।
चाँद-बिहूना चाँदना, अलख निरंजन राय ।।

हाँ, जो कुछ कहा जा सकता था, कबीर दास कह चुके हैं। अब

तो तरंग अपने सागर में मिल रही है। कहा जाय तो भला क्या ? मन महाशून्य में पहुँचकर लुप्त हो चुका है। चन्द्र-रहित चाँदनी, अकारण प्रकाश से ओतप्रोत होकर वे अलख निरञ्जन से अलग रह नहीं गये हैं।

नश्वर जीवन का अन्तिम अध्याय अब लगा ही चाहता है। अन्तरंग भक्तों के क्रन्दन-कोलाहल के बीच समाधिस्थ महापुरुष ने अपनी जीवन-लीला की समाप्ति की। सहस्र-सहस्र नर-नारियों के गमनागमन से नदी-तीर का वह वन-कुटीर प्रान्त निनादित हो उठा। अविनाशी पुरुष के विनाशी शरीर का दर्शन कर शोकाकुल जन-मण्डली विलाप करने लगी।

कबीर दास के अन्तिम संस्कार को लेकर एक किम्वदन्ती प्रचलित हो गई है। उनके भक्तों में हिन्दुओं की भाँति मुसलमानों की संख्या भी बहुत अधिक थी। हिन्दुओं ने मृतशरीर का दाहसंस्कार करना चाहा तो मुसलमान भक्त कब्र खोद कर अपने महान् फकीर की देह को दफनाने के लिए हठ करने लगे ! दारुण समस्या उठ खड़ी हुई।

कहते हैं कि इसी बीच श्वेत वस्त्र से ढँकी मृत-देह से कमल की सुगन्ध निकलने लगी और उस पावन मधुर सुगन्ध से विस्मित होकर, जब किसी भक्त ने कफन की उजली चादर हटा दी तो मृतशरीर के स्थान पर कमल सद्यः प्रस्फुटित फूलों की राशि पड़ी मिली।

कहते हैं कि उनमें से थोड़े-से फूलों को हिन्दू-भक्त काशी उठा ले गये, जहाँ उनका वैदिक-विधि से संस्कार किया गया। कबीर-चौड़ा उसी अलौकिक घटना का स्मारक बनकर काशी की महिमा बढ़ा रहा है।

मुसलमानों ने बचे हुए फूलों को मगहर में ही दफना दिये। उस कब्र पर श्रद्धाञ्जलि अर्पित करने के लिए बड़ी संख्या में भक्तगण आज भी एकत्र होते हैं। क्या हिन्दू और क्या मुसलमान, दोनों ही मतों के भक्तों के लिए, काशी और मगहर के ये समाधि-स्थान, समान रूप से पवित्र हो पूज्य हो गये हैं।

□

नंगा बाबा

दारुमय ब्रह्मविग्रह श्री जगन्नाथ को ही केन्द्र करके महाधाम पुरी क्षेत्र की प्रतिष्ठा है। युग-युग से भारत के सभी अंचलों से तीर्थकामी मनुष्यों के दल यहाँ एकत्रित होते हैं। इनमें जिस तरह धर्म प्राण भक्त गृहस्थ रहते हैं, उसी प्रकार सर्वत्यागी साधु—संन्यासी एवं सिद्ध महात्माओं की भी कमी नहीं रहती। समुद्र में स्नान-तर्पण तथा श्रीविग्रह के दर्शन करके सभी अपने-अपने परिव्राजन पर अग्रसर होते हैं।

पुरी तीर्थ में असंख्य स्थानों पर मठ-मन्दिर, आश्रय एवं साधनपीठ स्थित हैं। इनमें गिर्नारी बन्ता स्थित नंगा बाबा महाराज का आश्रम बिलकुल आडंबर शून्य तथा अख्यात सा है; परन्तु यह असाधारण है, इसमें कोई सन्देह नहीं।

यह गिर्नारी बन्ता लोकनाथ-शिव के सन्निकट अवस्थित है। ताल, तमाल एवं नारियल से परिपूर्ण रास्तों से आप जनहीन जंगलाग्राम के रास्ते से चलें तो पास ही एक साधारण सा बालू का टीला आपको मिलेगा।

देखने में अत्यन्त साधारण होने पर भी स्थानीय, देहाती लोग आज भी इस टीले के प्राचीन माहात्म्य का स्मरण करके श्रद्धापूर्वक प्रणाम निवेदित करते हैं। पौराणिक युग के पुण्यमय इतिहास का यह टीला साक्षी

है। राजा इन्द्रद्युम्न ने जब दैवादेश पाकर नीलाचल नाथ का बालुका स्तूप से उद्धार किया था, उस समय खुदाई किये हुए बालुकारशि का कुछ अंश इस गिर्नारी वन्ता पर डाला गया था। इसी कारण यह टीला उनके लिए एक असामान्य, परम पवित्र वस्तु है।

इसी बालुकाराशि के ऊपर अवस्थित है एक साधारण सा आडंबरहीन आश्रम। इसी आश्रम के एक कक्ष में विराजमान हैं आत्मज्ञानी, महा-साधक नंगा बाबा। जटाजूट समन्वित महाकाय संन्यासी एकदम दिगंबर हैं। आजानुलंबित दोनों हाथों को जांघ पर स्थापित करके, व्याघ्रचर्म के ऊपर सुखासन में वे ध्यानास्थ हैं। आसन में बैठने पर भी उनकी ऊँचाई साधारण मनुष्य की ऊँचाई से बहुत कम नहीं है।

ये भीमकाय कठोरी संन्यासी अद्वैत वेदान्त सिद्धि के एक मूर्त विग्रह हैं। मायापाश बद्ध जीव के सम्मुख मानो वे एक जीवन्त शिव हैं!

बाबा एवं उनके दो-तीन सेवक भक्तों के अलावा आश्रम में स्थायी रूप से कोई निवास नहीं करता। दर्शन-कामी आगंतुकों की भी संख्या बहुत ही कम है। भीमदर्शन, स्वल्पभाषी एवं शुद्ध ज्ञानवादी, इन महापुरुष के सम्मुख कितने समय तक ठहरा जा सकता है? फिर भी अगर कोई किसी संकल्प को लेकर कमरे के भीतर बैठा रह जाता है, तो बाबा मृदु स्वर में कह उठते हैं, "हाँ-हाँ, दर्शन हो गया. अब चले जाओ। शहर में जाकर मन्दिर-वन्दिर देखो।"

इसके बाद भी अगर कोई बैठा ही रह जाता है तो उसके लिए महा-पुरुष की दूसरे तरह की व्यवस्था होती है। वे सेवक-सन्यासी ज्ञानानन्द स्वामी को गुरु गंभीर स्वर में पुकार कर कहते हैं, "ज्ञाना, ब्रह्मज्ञान की किताब ले आओ।"

आदेश शिरोधार्य करके ज्ञानानन्द वेदान्त अथवा पंचदशी का पाठ आरम्भ कर देते हैं। शुष्क तत्व विचार शुरु होते ही आवांछित दर्शनार्थी-गण बाबा के सामने से खिसक जाते हैं।

अनायास कभी-कभी इन शुष्क ज्ञान मार्गी तपस्वी का अपूर्व करुणा-

घन रूप मूर्त हो उठता है। उपयुक्त आधार एवं त्याग-वैराग्यवान मुमुक्षु के दर्शन मात्र से ही मानों बाबा कृपा वर्षण के हेतु उन्मुख हो उठते हैं।

पुरी धाम का श्मशान, समुद्र-तीर तथा गिर्बारी बन्ता के साधारण आश्रम, इन सभी स्थानों में कुल मिलाकर नंगा बाबा महाराज, इस क्षेत्र में लगभग पचास वर्षों तक निवास कर गये हैं। इस अवधि में बाबा के दर्शन का सौभाग्य जिन लोगों को मिल चुका है; वे सभी एक स्वर से यही कहते हैं—आधी शताब्दी की लम्बी अवधि में इन महापुरुष के चेहरे में उन्होंने कोई विशेष पार्थक्य या परिवर्तन नहीं देखा है।

स्थानीय साधुसमाज के विभिन्न पन्थी साधक गण—वेदान्ती, योगी, तांत्रिक, वैष्णव —चाहे किसी भी दल के भी वे क्यों न हों, नंगा बाबा के प्रति सभी की असाधारण श्रद्धा रहती।

पुरी में उच्चकोटि के साधु महात्माओं का आगमन, प्रति वर्ष कुछ कम नहीं होता इनके दल के दल नंगा बाबा के दर्शनार्थ व्यग्र रहते।

परन्तु स्थानीय अथवा अभ्यागत लोगों को बाबा का वास्तविक परिचय पूर्णतया ज्ञात नहीं था। वे स्वयं अत्यधिक आत्मगोपनशील थे। पूर्वाश्रम अथवा वर्तमान के किसी तथ्य का उद्घाटन करने के लिए वे कभी भी प्रस्तुत नहीं होते थे।

इसी कारण साधक तथा गृहस्थ भक्तों के मध्य सर्वदा नंगा बाबा के विषय में एक प्रश्न चिह्न बना रहता। ये महाशक्तिधर संन्यासी कौन हैं ? इनका पूर्वाश्रम कहाँ व्यतीत हुआ है ? इनके गुरु कौन हैं ? कौन सी साधन पद्धति का अनुसरण करके ये आप्तकाम हो गये हैं ? कौन-कौन से भाग्यवान साधकों पर इनको कृपा दृष्टि पड़ चुकी है ? बहुत लोगों के उत्सुक होने पर भी इस प्रश्न का जवाब मिलना संभव नहीं था।

दैव योग से उस बार एक ऐसा सुयोग उपस्थित हो गया जिससे बाबा से संबन्धित कुछ तथ्य प्रकाश में आ गये।

१९४९ साल का शरत्काल। पुरी धाम में उस समय एक वरिष्ट

ब्रह्मविद् महायोगी का आगमन हुआ। प्रसंगवश उस दिन उन्होंने नंगा बाबा के संबन्ध में, अन्तरंग भक्तों के बीच, कुछ तथ्य उद्घाटित कर डाले, "इन महात्मा के विषय में पूरी जानकारी तुम्हें किस तरह होगी? अद्वैत साधना के उच्चतम शिखर पर ये सर्वदा समासीन रहते हैं, मानो अध्यात्म सिद्धि के एक मैनाक पर्वत हों। एक विशाल पर्वत—परन्तु मैनाक के ही जैसे जल के नीचे छिपे हुए हैं—उनके माहात्म्य का बोध होना अत्यन्त कठिन है, तथा उनके स्वरूप को समझ पाना उससे भी अधिक दुष्कर।"

थोड़ी देर मौन रहने के बाद योगिराज ने फिर कहा, "एक बात को तुम लोग सर्वदा स्मरण रखना—नंगा बाबा का शरीर पंजाबी है, और यही हैं इतिहास ख्यात महावेदान्ती—तोता पुरी महाराज, जिन्होंने दक्षिणेश्वर में श्री रामकृष्ण को कृपा करके दीक्षा दी थी।"

अन्तरंग भक्तगण तो यह सुनकर हत्वाक् हो उठे। सभी अनायास यह प्रश्न कर बैठे "फिर इन महात्मा की अवस्था कितनी है? श्री रामकृष्ण के साथ तो तोतापुरी जी का साक्षात् १८६२ ई० में हुआ था। उस समय पुरी महाराज की आवस्था साठ के लगभग होगी। क्योंकि रामकृष्ण की जीवनी में उल्लेख है कि तोतापुरी जी ने लगभग चालीस वर्षों तक अद्वैत वेदान्त की कठोर साधना की थी। यदि नंगा बाबा ही तोतापुरी हैं, तो इस समय उनकी अवस्था निश्चित रूप से डेढ़ सौ वर्ष होगी।"

"इससे भी अधिक—इनकी अवस्था लगभग ढाई सौ वर्ष होगी।"

"वर्तमान युग में इतनी आयु की बात हम सोच भी नहीं सकते।"

"इसमें आश्चर्य की क्या बात है। इनके जैसे विराट् महापुरुष—योग और वेदान्त के पारंगत शक्तिधर महात्मा हिमालय के नीचे कम ही रहते हैं। इच्छा होने पर ये लोग शरीर की क्षय, क्षति तथा परिणति को स्तंभित करके चार-पाँच सौ वर्ष बचे रह सकते हैं, यह कोई असंभव बात तो नहीं है?"

एक सेवक ने प्रश्न किया, "प्रभु, आप ने जो कहा, वह चरम सत्य है, इसमें संदेह नहीं, परन्तु यह सोचने पर अजीब लगता है कि तोतापुरी महाराज जीवित हैं और रामकृष्ण मण्डली के साधकगण भी इन श्रद्धेय परम गुरु का पता नहीं जानते।"

"पुरी महाराज ने स्वयं अपनी इच्छा से अपने अतीत जीवन के सारे अध्यायों को जन स्मृति से विलुप्त कर रखा है। इसी कारण किसी के लिए यह साध्य नहीं है कि उनके सम्बन्ध में अनुसंधान के लिए अग्रसर हो सके अथवा उन्हें खोज कर निकाल सके।

इसके बाद योगिराज ने प्रसंग बदल दिया और भक्तगण को इतने से ही सन्तुष्ट होना पड़ा।

नंगा बाबा की अवस्था के विषय में एक और साक्ष्य तथा प्रमाण यहां उल्लेखनीय है। १९६० ई० में काशी के सन्निकट बनपुरवा स्थित ब्रह्मविद् साधक वीतराग बाबा के साथ लेखक की लम्बी अवधि तक बातचीत हुई थी। उसी समय वीतराग जी ने नंगा बाबा के सम्बन्ध में अपने प्रत्यक्ष ज्ञान की बात बतलाई थी। उन्होंने कहा था 'मैं जब सत्रह-अठारह वर्ष का नवीन साधक था, उस समय नंगा बाबा काफी अधिक उम्र के थे एवं काशी के उच्च श्रेणी के महात्मागण उनका खूब सम्मान करते थे। उन्हीं दिनों सुना था कि उनका शरीर पंजाबी है। काशी में रहते हुए वे शहर से दूर निवास करते तथा बीच-बीच में वहाँ से नौका के द्वारा मेरे गुरु के आश्रम में उनसे भेंट करने आते रहते। उस समय वे नग्न रहते। इन विराट्काय शक्तिमान महात्मा के आसपास हमलोग घूमते-फिरते तथा उत्सुकतापूर्वक निर्निमेष उनके सारे व्यवहारों की ओर दृष्टि रखते।"

वीतरात बाबा ने उपरोक्त बातें लेखक से १९६० ई० में कही थी। काशी के प्राचीन एवं प्रत्यक्षदर्शी लोगों से मैंने सुना है कि उस समय उनकी अवस्था १९० वर्ष की थी। ये १९० वर्ष के वृद्ध अपने युवावस्था के प्रारम्भिक दिनों में जिन पूर्ण वयस्क महात्मा नंगा बाबा के दर्शन करते थे,

वर्तमान काल में उनकी अवस्था ढाई सौ साल कह देना कोई विस्मयजनक बात नहीं है ।

नंगा बाबा के परिचय के सम्बन्ध में उस दिन योगिराज ने जिन बातों का उल्लेख किया था वे बड़ी ही विस्मयजनक थी । अन्तरंग गोष्ठी में इस प्रसंग को लेकर काफी दिनों तक दबी-दबी चर्चाएँ होती रहीं । श्रीक्षेत्र में कई उच्चकोटि के तपस्यारत महात्मा एवं नंगा बाबा के विशिष्ट भक्तों के कान में इन बातों के पहुँचने में अधिक विलम्ब नहीं हुआ ।

आश्रम-कक्ष का वेदान्त पाठ तथा व्याख्या उस दिन प्रायः शेष हो चुकी थी । स्नेह-पूर्ण दृष्टि से भक्तों की ओर देखते हुए बाबा ने कहा, "हमारा एक ठो बात तुम लोग हर वखत याद रखो । वेदान्त का विचार है, सबसे बढ़िया साधन । कलियुग के लिए यह साधन बहुत उपयोगी है । वेदांत है एक अच्छावाला सेतु । इसके ऊपर से एक चिउटी भी नदी पार हो सकती है ।"

एक भक्त उत्साह पूर्वक कह उठे, बाबा आधुनिक काल में वेदान्त के लिए सबसे अधिक कार्य स्वामी विवेकानन्द ने किया है ।"

"हाँ हाँ, वह वेदान्त के प्रचार में एक बड़े कर्मी थे ।"

विस्मित स्वर में इन भक्त ने कहा, "ऐसा क्यों बाबा, यह बात कहना क्या उचित है ? स्वामी जी ने शिकागो के धर्म सम्मेलन में जाकर विश्व के श्रेष्ठ ज्ञानी-गुणी लोगों के बीच वेदान्त की जय ध्वजा फहराई है, तथा पश्चिमी देशों में वेदान्त के बीज का रोपण कर गये हैं । यह क्या एक बिराट् कार्य नहीं है ?"

मृदु हंसी हँसते हुए बाबा ने कहा, "लेकिन इस कर्म के बीज से पेड़ के ठो हुआ, बताओ । आत्मज्ञान का लेक्चर देने की क्या जरुरत है ? और वह लेक्चर सुनने से भक्तों को आत्मज्ञान कैसे हो जायगा, यह भी मुझे समझाय दो ।"

"बाबा, आप जो भी कहें, स्वामी जी एक विराट् कीर्ति कर गये हैं ।

इसके अलावा उनके गुरु श्री रामकृष्ण ? वे भी तो एक विश्व विख्यात महासाधक हैं, जो कि अध्यात्म साधना के उच्चतम शिखर पर अधीष्ठित थे।"

"हाँ हाँ, वे देवी काली के श्रेष्ठ भक्त थे।"

कलकत्ते के एक विशिष्ठ भक्त पास ही बैठे थे। नंगा बाबा ही महावेदान्ती तोतापुरी जी हैं और उनके ही समीप श्री रामकृष्ण ने दीक्षा ली थी, यह बात वे सुन चुके हैं। उनके मन में कुतूहल का अन्त नहीं है। बात के प्रसंग का लाभ उठा कर उन्होंने सीधा प्रश्न करना प्रारंभ किया—

"अच्छा बाबा, आप कलकत्ता गये हैं ? दक्षिणेश्वर को क्या पह-चानते हैं ? कभी वहां आप ठहरे हैं ?"

बाबा ने उत्तर दिया, "सागर तीर्थ के रास्ते में कई दफा तो मैं कलकत्ता गया रहा। दक्षिणेश्वर में भी एक दफे ठहरा था।"

"बाबा, आपने क्या श्री रामकृष्ण को संन्यास दीक्षा दी थी ? कृपा कर के सारी बात खोल कर बताइये।"

"ऐसे तो और गृहस्थों को भी मैंने दीक्षा दी है। लेकिन संन्यास किसको दिया, बताओ।"

भक्त को फिर प्रश्न करने को उद्यत होते देखकर नंगाबाबा महाराज ने तिरस्कार के स्वर में कहा, "यह खबर मिलने से तुम्हारा क्या फायदा, बताओ। ब्रह्म-ज्ञान तुमको मिल जायगा ?"

बाबा का यह कठोर मनोभाव देखकर कौतूहली भक्तगण चुप हो गये। बातचीत का क्रम पुनः आत्मज्ञान से संबन्धित नाना प्रश्नों की ओर अग्रसर हुआ।

कलकत्ते में कई लोगों के मुख से नंगा बाबा के साधन-ऐश्वर्य की ख्याति सुनकर एक भक्त साधक उनके दर्शन करने आये हुए हैं। दर्शन के साथ-साथ बाबा से उनका एक स्नेह पूर्ण सम्पर्क हो उठा। आश्रम में ही रहकर नित्य दोनों समय वे बाबा के उपदेशामृत का पान करते हैं,

तथा वेदान्त के भाष्य का श्रवण करते हैं। समय काफी आनन्द से कट रहा है।

एक दिन इन्हीं भक्त ने कौतूहलवश बाबा से प्रश्न किया "बाबा, आपके संबन्ध में कई बातों की कानाफूसी होती रहती है। सचमुच बताइये, क्या आप ही ठाकुर श्री रामकृष्ण के वेदान्त साधना के गुरु तोतापुरी महाराज हैं?"

इस प्रश्न से बाबा के मुखमण्डल पर कोई भाव वैलक्षण्य दृष्टिगोचर नहीं हुआ। थोड़ी देर मौन रहने के बाद उन्होंने कहा, "हाँ रे, इतनी छोटी सी बात को सुनने के लिए तुम कलकत्ता में इतना कष्ट करके आया है। इस खबर के मिल जाने से तुम्हारा कोई फायदा होगा?"

आश्रम के विशिष्ट उड़िया भक्त भजू बाबू, वर्तमान स्वामी शंकरानन्द, बड़े ही उद्योगी एवं कर्मनिष्ठ व्यक्ति हैं। एक बार कुछ अन्य भक्तों के साथ सम्मिलित होकर उन्होंने स्थिर किया कि बाबा के पूर्वाश्रम से संबन्धित तथा पूर्णाङ्ग जीवनी का संकलन किया जाय। बाबा ने अपने दीर्घ जीवन के विगत अध्यायों को विस्मृति के सागर में निमज्जित कर रखा है। उसमें से महत्वपूर्ण बातें बाबा के श्रीमुख से ही जान लेने में विशेष सुविधा रहेगी। साहस करके उन लोगों ने यह प्रस्ताव बाबा के सामने रखा। बाबा के गुरु गंभीर कण्ठ से सुनाई पड़ा। "हाँ-हाँ हमको तुमलोग जीव समझो तो जीवनी लिखो कोई हर्ज नहीं।"

जो आत्मज्ञान के आलोकस्तंभ के रूप में सर्वदा दीप्तिमान हैं, शिवत्व में जो चिर प्रतिष्ठित हैं, उनको जीव के रूप के ज्ञात करना एवं उनके जीव-जीवन के तथ्य संकलन करना कोई युक्तिसंगत बात नहीं है—इसी बात की ओर उन्होंने संक्षेप में इंगित किया।

आत्म ज्ञानी महासाधक के श्रीमुख से उस दिन इस उक्ति को सुनकर भक्तगण की चेतना का उदय हुआ। उनको यह आभास हो गया कि ब्रह्मविद् महात्माओं के लौकिक जीवन का सही-सही आकलन करना तथा उसे लिपिबद्ध करना संभव नहीं है। मात्र निकटस्थ एवं प्रत्यक्षदर्शी

भक्तगणों की अभिज्ञता से उनके अलौकिक और करुणाघन रूप का एक रेखाचित्र अंकन कर लेना ही यथेष्ट है।

एक बार किसी भक्त ने हास-परिहास का सुयोग पाकर नंगा बाबा से जिज्ञासा की "बाबा, कितने लोग आपके सम्बन्ध में कितनी ही विश्वसनीय एवं अविश्वसनीय बातें कहते हैं। जो भी हो, मुझे आपकी ठीक अवस्था जानने का एक तीव्र कुतूहल हुआ है। कृपा कर यह तो बतायें—आपकी उम्र कितनी है ?

बाबा ने गंभीरता पूर्वक सिर हिलाकर उत्तर दिया, "आत्मज्ञानी साधक का जन्म-मरण क्या कुछ है ? हमारा तो जन्म ही नहीं हुआ। उमर कैसे बताऊँगा ?"

चालीस वर्षों से भी अधिक समय तक नंगा बाबा, गिर्नारी बन्ता के इस आश्रम में निवास कर गये हैं। इस अवधि में एकान्त प्रिय महात्मा ने कभी भी अपने आस-पास भीड़ इकठ्ठी नहीं होने दी। मात्र कुछेक साधक-संन्यासियों के साथ अध्ययन में सर्वदा निमग्न रहे हैं।

नंगा बाबा के एकनिष्ठ सेवक और आश्रम के प्राणस्वरूप थे स्वामी ज्ञानानंद। घर-संसार एवं आत्म-परिजन, सभी को छोड़कर उन्होंने बाबा की सेवा को ही साधना के अंग के रूप में धारण कर लिया था। वे कहा करते :

आश्रम में बीच-बीच में विभिन्न प्रकार के साधु-सन्तों के दल अतिथि रूप में उपस्थित हुआ करते। इनमें जिस तरह दर्शनार्थी संन्यासी दिखलाई पड़ते उसी तरह उदासी, कबीरपन्थी इत्यादि साधक भी दृष्टिगोचर होते। जैसे उत्तर भारत के साधु आकर एकत्रित होते उसी तरह आन्ध्र, तमिल तथा केरल के साधुगण का भी जमाव होता। विचित्र बात यह थी कि बाबा सभी के साथ उनकी मातृभाषा में ही वार्तालाप करते। इसी से ज्ञात हो जाता था कि अपने दीर्घ परिब्राजक जीवन में उन्होंने सारे भारत-वर्ष का भ्रमण किया है और इसी अवधि में कितनी भाषाओं पर पूर्ण रूप से अधिकार प्राप्त कर लिया है।

अतिथि-गण के आदर सत्कार में भी बाबा कोई कोर-कसर नहीं छोड़ते थे। वे स्वयं तो वेदान्तिक संन्यासी थे, परन्तु उच्च कोटि के अवेदान्तिक साधु-सन्तों के साथ मिलने में भी उनका अपूर्व उत्साह था।

नंगा बाबा के पूर्व जीवन के किसी भी शिष्य को स्वामी ज्ञानानन्द ने इस आश्रम में आते या ठहरते नहीं देखा था।

बाबा ने आवश्यकतानुसार थोड़े से साधकों को दीक्षा एवं संन्यास दिया था अवश्य, परन्तु एकबार साधन पथ पर प्रतिष्ठित कर देने के बाद किसी बाह्य सूत्र द्वारा उनके साथ किसी सम्बन्ध का निर्वाह नहीं करते। संभवतः शक्तिधर गुरु का मात्र एक स्पर्श तथा कृपा ही इन नवीन साधकों के लिए यथेष्ट था। अथवा माया-मोह-निर्मुक्त इन आत्मज्ञानी महा-सन्यासी अपने शिष्यों के सम्बन्ध में सर्वदा निर्लिप्त तथा निरासक्त रहते थे।

पचास वर्षों से भी अधिक काल तक नंगा बाबा महाराज पुरी क्षेत्र में निवास कर गये हैं। कुछेक प्रत्यक्षदर्शी प्रवीण साधकों ने लेखक को बताया है—इस दीर्घ अवधि में बाबा महाराज का वही रूप उन्हें बराबर दृष्टिगोचर हुआ है तथा इन विराट् पुरुष के शरीर पर वार्द्धक्य के कोई लक्षण नहीं दिखलाई पड़े।

पुरी तीर्थवास के प्रारंभिक दिनों में नंगा बाबा सागर तीर पर स्थित श्मशान के पास निवास करते थे। नग्न, महाकाय महापुरुष प्रायः अपनी मौज में ध्यानस्थ तथा समाहित रहते। इन दिनों दो-चार स्थानीय भक्तों ने उनकी सेवा सुश्रूषा का भार अपने ऊपर लिया था।

सारा दिन ध्यानस्थ रहने के बाद अपराह्न में बाबा एक सेर दूध तथा दो डाभ आहार के रूप में ग्रहण करते हैं। मधुसूदन ग्वाले की कुटिया श्मशान के पास ही है। नित्य संध्या होने पर एक पात्र में दूध लेकर वह भक्तिपूर्वक बाबा के समीप उपस्थित होता है। उसके साथ उसका बालक-पुत्र वंशीधर रहता है। बाबा के लिए वह रोज एक जोड़ा सुगन्धित पुष्पों की माला ले आता है, तथा यत्नपूर्वक वह उसे उनके गले में पहनाकर साष्टांग प्रणाम निवेदित करता है

बालक वंशीधर जन्मांध है। दरिद्र होने पर भी मधुसूदन ग्वाले ने पुत्र के नेत्रों की चिकित्सा में कोई कोर-असर नहीं रखी है। किन्तु सारी चेष्टाएँ व्यर्थ हो चुकी हैं। डाक्टरों ने अपनी अंतिम राय दे दी है—उसे नेत्रों की ज्योति पाने की कोई आशा नहीं है।

वंशीधर रोज नंगा बाबा के सम्मुख उपस्थित होता है तथा महापुरुष उसे नित्य आशीर्वाद देते हैं। परन्तु अधिकांश समय नेत्र निमीलित रहने के कारण बाबा की दृष्टि उसके दोनों चक्षुओं के ऊपर नहीं पड़ती। उसदिन, मधुसूदन ने पुत्र को सिखा दिया था कि बाबा को प्रणाम निवेदन करके वह अपने अन्धत्व की बात उनसे कहे, तथा आरोग्य लाभ के लिए प्रार्थना करे।

अपराह्न में पिता के निर्देशानुसार वंशीधर ने वैसा ही किया। उसने आर्त स्वर में रोते हुए कहा, "बाबा, मैं जन्मांध हूँ, तथा बहुत दुःखी हूँ। आप स्वयं भगवान हैं—आप एक बार अपनी आँखें खोल कर मेरी दुर्दशा देखें, तथा मेरे ऊपर कृपा करें। आपके अतिरिक्त मुझे और किसी का आसरा नहीं है।"

नंगा बाबा ने आँखें खोलकर देखा। मन के द्वार उस समय सौभाग्य से खुले हुए थे। क्रन्दनरत वंशीधर की अन्धी आँखों की ओर देखते ही वे करुणा से विगलित हो उठे। व्याकुल स्वर में महापुरुष कह उठे, "हाँ रे तुम आँख तो खोलो। देखो, अब तुम अन्धे नहीं हो ! तुम्हारी आँखों में पूरी दृष्टि आ गयी है।"

"हाँ बाबा, ऐसा ही है, ऐसा ही है !"—विस्मय तथा आनन्द से वंशीधर चीख उठा। उसके दोनों नेत्रों से आनन्दाश्रु झड़ते जा रहे हैं, और वह कह रहा है—"कितना सुन्दर ! कितना सुन्दर ! जो कुछ भी देख रहा हूँ सभी अपूर्व सुन्दर है।"

जन्मांध वंशीधर की यह उपलब्धि किसी नेत्रवान के लिए समझ पाना अत्यन्त कठिन है। चिर अन्धकार की यवनिका फट चुकी है तथा उसके नयनों में सूर्यलोक का कमल प्रस्फुटित हो उठा है। महाकाश का निःसीम

विस्तार नील दिगन्त का चन्दोवा और सागर ऊर्मियों का छन्दमय नृत्य उसके सम्मुख नवीन मायामय पृथिवी का सृजनकर रहे हैं।

वंशीधर परमानन्द में कभी हंस रहा है तो कभी रो रहा है। कभी-कभी वह नंगा बाबा के चरणों में गिरकर लोट रहा है।

इस आश्चर्यमय योग विभूति का प्रत्यक्ष करके मधुसूदन ग्वाला विस्मय से स्तब्ध होकर अवाक् हाथ जोड़े खड़ा है। मुख से एक भी शब्द नहीं निकल रहा है।

एक बड़ी माला वंशीधर के माथे के ऊपर रखकर बाबा ने मधुर हँसी बिखेरते हुए कहा, 'हाँ-हाँ, तुम अभी घर चले जाओ। कल और भी अच्छी माला लेकर आना।"

कई वर्ष बाद नंगा बाबा दक्षिण भारत के परिव्राजन हेतु बाहर निकल पड़े, और वापस आकर पुरी के समुद्र तट पर एक नये स्थान पर उन्होंने आसन ग्रहण किया। १९२० ई० में फ्लैग स्टाफ के पास कासिम बाजार के भवन के सामने बालू के ऊपर ही उन्होंने अपना आसन लगाया। भीषण गर्मी के दिनों में भी देखा जाता कि बाबा महाराज निर्विकार रूप से अपने विशाल शरीर को उत्तप्त बालू पर फैलाकर निश्चिंतता पूर्वक आराम से सोये हुए हैं। वर्षा के प्रचण्ड थपेड़ों तथा भीषण आंधी में भी उन्हें और कहीं भी आश्रय लेते हुए नहीं देखा जाता। नीचे बालुकामय तटवर्ती भूमि और ऊपर सीमा-हीन आकाश, इन्हीं दोनों के मध्य आत्मज्ञानी शिव कल्प महापुरुष अपनी दिव्य महिमा से, अपना अलौकिक दुर्बोध अस्तित्व लेकर विराजमान रहते।

सागर तट के प्रवेश द्वार के पास ही नंगा बाबा महाराज का आसन था। तीर्थदर्शन अथवा मात्र भ्रमण के लिए जो कोई भी पुरी आता उसका इसी रास्ते आना जाना होता। वे सभी विशालकाय, जटा-जूट समन्वित नंगे सन्यासी का प्रणाम निवेदित करके चले जाते।

प्रत्यक्षदर्शी, प्रवीण भक्त श्री कुमुदबन्धु सेन ने इस समय की

एक घटना का विवरण दिया है।[1] पुरी के पुलिस सुपररिटेन्डेन्ट ने इसी बीच मजिस्ट्रेट के पास, बाबा के विषय में रिपोर्ट प्रेषित कर दिया था। जन साधारण के समक्ष दिन में साधु नग्न अवस्था में बैठा रहता है, यह देखने में बीभत्स लगता है, साथ ही यह भद्रता के विपरीत है, और यह गैर कानूनी है। विशेषकर सागर-कूल परप र्यटक, साहेब-मेम लोग बीच-बीच में घूमने आते हैं तथा सभी दृश्यों का फोटो भी खींच देते हैं। इसलिए साधु को इस स्थान से हटा देना ही उचित है।

मजिस्ट्रेट अबतक नंगा बाबा के विषय में काफी कुछ सुन चुके हैं। कई दिन पहले उनकी स्त्री बाबा का दर्शन करने गई थी तथा भक्ति एवं श्रद्धा से परिपूर्ण होकर वहाँ से वापस आई। बन्धु-बान्धवों के समाज में भी बाबा के विषय में अनेक श्रद्धापूर्ण बातें सुनने को मिलतीं। अन्ततः एक दिन मजिस्ट्रेट स्वयं इस विषय में जानकारी करने के लिए गये। गौरकान्ति, विराट्काय महात्मा, सर्वत्यागी महादेव के जैसे बैठे हुए हैं। बैठने की भंगी ऐसी है जिससे शरीर के निम्न भाग की नग्नता ढक गयी है। दोनों उज्ज्वल नेत्रों की ओर दृष्टिपात करने से सिर अपने आप झुक जाता है। आसन के सामने जो भक्तगण बैठे हुए हैं, इस शक्तिधर महापुरुष के प्रति उनके श्रद्धा की सीमा नही है।

दर्शन मात्र से ही मजिस्ट्रेट साहेब मुग्ध हो गये, तथा उन्होंने बाबा के प्रति प्रणाम निवेदित किया।

स्नेहपूर्ण स्वर में बाबा ने कहा, "हमारी माई आपकी जनाना, तो यहाँ आयी थी। लड़के का इम्तहान था। वह अच्छी तरह पास करे—इसके लिए मुझसे बहुत आरजू की थी। लड़का अच्छी तरह पास हो गया न ?"

मजिस्ट्रेट ने हाथ जोड़ कर कहा, 'हाँ बाबा। आपकी शुभेच्छा से वह अच्छी तरह पास हो गया है। अब उसको बाहर भेज रहा हूँ—सिभिल

---

१. उज्जीवन, पौष १३६९ : पुरी धामे प्याँगटा बाबा—कुमुद बन्धु सेन

सर्विस की परीक्षा देने के लिए। वह जल्दी ही यहाँ आ जायगा। कुछेक दिन हम लोगों के साथ रहकर वह विलायत के लिए रवाना होगा।"

नंगा बाबा एकाएक मौन हो गये। उनके पुण्यमय सान्निध्य में कुछ देर और रुकने के बाद मजिस्ट्रेट साहब अपने बंगले में वापस आ गये।

दो एक दिन के अन्दर ही, उनका पुत्र पुरी पहुँच गया। माता-पिता के आनन्द की सीमा नहीं। इसी उपलक्ष में उस दिन मजिस्ट्रेट के बंगले पर गणमान्य लोगों के लिए भोज का आयोजन था।

दूसरे दिन पुत्र को साथ लेकर पतिपत्नी दोनों ही नंगा बाबा के पास उपस्थित हुए। पुत्र बीस वर्ष का स्वस्थ, सुन्दर युवक है। बाबा को प्रणाम करने के बाद आनन्द पूर्वक कहा, "बाबा, यह हमारा पुत्र है। मात्र कुछेक दिन ही हमलोगों के साथ है। उसके बाद जहाज से इंगलैन्ड के लिए रवाना हो जायगा। आप कृपा कर के इसके माथे पर हाथ रखकर आशीर्वाद दें।"

परन्तु नंगा बाबा निर्लिप्त तथा निरुत्तर हैं। लगता था, जैसे यह आवेदन उनको सुनाई ही नहीं पड़ता। मजिस्ट्रेट तथा उनकी स्त्री के आशीर्वाद के लिए बार बार कहने पर बाबा ने गुरू गम्भीर स्वर में कहा, "चार रोज बीत जाने देओ, इसके बाद आओ मेरे पास।"

नंगा बाबा ने क्यों ऐसी बात कही, यह समझ में नहीं आया। मजिस्ट्रेट तथा उनकी पत्नी ने यही सोच कर अपने मन को शांत कर लिया कि यह महापुरुष का मात्र खिलवाड़ सा ही है।

थोड़ी देर तक चुपचाप बाबा के सान्निध्य में बैठने के बाद, उनको प्रणाम करके सभी वापस चले गये।

तीसरे दिन ही रात्रि में मजिस्ट्रेट साहेब का यह पुत्र अकस्मात् एक असाध्य रोग से आक्रांत हो गया। स्थानीय डाक्टरों की प्राणपण चेष्टा के बावजूद उसकी अवस्था बिगड़ती ही गयी और दूसरे दिन ही उसका प्राणांत हो गया।

इस घटना की चर्चा बहुत जल्दी सारे पुरी में फैल गयी तथा बाबा का नाम जनसाधारण में काफी प्रचारित हो गया।

त्याग, तितीक्षा एवं वैराग्य के मूर्त विग्रह नंगा बाबा, सभी ओर से बिलकुल नंगे—नंगटा थे। गिर्नारी बन्ता के छोटे से आश्रम के स्थापित होने से पूर्व तक "रमता साधू--बहता नीर", वह सत्य उनके जीवन में पूर्ण रूप से चरितार्थ हो उठा था। आसन बिछाकर कुछ दिन किसी स्थान पर निवास करने के पश्चात सहसा एक दिन महापुरुष कहाँ अन्तर्ध्यान हो जाते हैं तथा किस नये जंगल, श्मशान अथवा सागर तट पर आविर्भूत हो जायेंगे, इसका किसी को ज्ञान नहीं होता।

पुरी सागर तट के आसन का त्याग करके उस बार कुछ दिनों के लिए वे साक्षी गोपाल के जन शून्य वन में उपस्थित हुए। साथ में कई त्याग-तितीक्षावान भक्त भी एकत्रित हो गये। बाबा ने उन लोगों से कहा वे सब तरफ से ही नंगे एवं संन्यासी मनुष्य हैं। किसी तरह के अभाव के लिए उनके शरीर अथवा मन में किसी प्रकार का विकार नहीं है। उनके साथी होकर भक्तगण, इतना कष्ट क्यों सहन करेंगे?

भक्त गण भी अपने संकल्प में अविचल रहे। उन लोगों ने कहा, बाबा आपके जैसा महापुरुष के साथ हमलोग रह सकेंगे, यही हम लोगों का परम लाभ तथा परम आनन्द है। यदि उपवास भी करना पड़े और दुःख-कष्ट भी सहना पड़े तो हमलोग उसे प्रसन्नता पूर्वक सहन कर लेंगे।

नंगा बाबा ने बता दिया कि किसी कुटिया में निवास करने की उनकी इच्छा नहीं है। जंगल के भीतर किसी वृक्ष के नीचे ही वे अपना आसन बिछायेंगे तथा दिन-रात उसी पर बैठे हुए ही व्यतीत करेंगे। साथियों को उन्होंने निर्देश दिया कि जंगल के आस-पास ही टहनियाँ और लतापत्र एकत्रित करके वे लोग अपने लिए एक पर्णकुटीर तैयार कर एवं वहीं साधन भजन करते रहें।

इस क्षेत्र के कुछ लोग नंगा बाबा से परिचित हैं तथा उनका माहात्म्य भी जानते हैं। इन्हीं लोगों के माध्यम से महापुरुष के जंगल में प्रवास की बात फैल गयी और दो-चार गृहस्थ भक्तगणों ने उनके सेवार्थ भेंट इत्यादि भी भेजना आरम्भ कर दिया।

एक दिन एक गाड़ी भर कर डाभ भेंट में आया। अपने एक विशेष कृपा प्राप्त ब्राह्मण भक्त को पुकार कर उन्होंने निर्देश दिया, "देखो ये सब डाभ तुम अपनी कुटिया में लेजाओ और तुम लोग सब खा लेव! अउर एक ठो काम तुमको करना होगा। मेरे दर्शनों के लिए जो आदमी आते हैं और दो-एक रुपया दे जाते हैं, जिसे मैं कभी हाथ से छूता नहीं— वह सभी अपने पास रखो और दर्शन के लिए जो आदमी आते हैं, उस रुपये से उन्हें खिला दो। तुम लोग भी उससे खाना-पीना करो। तुम लोगों के आराम के लिए ही वह रुपया आता है।

"आपके आदेश के अनुसार ही कार्य होगा, बाबा"—कहते हुए जब भक्त वहाँ से चले तो नंगा बाबा ने फिर उन्हें पुकार कर वापस बुलाया। उन्होंने कहा कि भेंट के रूप में प्राप्त इन रुपयों से उनका लेशमात्र भी सम्पर्क नहीं है, और इन रुपयों के लिए उनको कभी जवाबदेही नहीं देनी होगी।

साक्षीगोपाल का अरण्यवास अधिक दिनों तक नहीं चल पाया। एक दिन प्रातः काल उठकर भक्तों ने देखा कि बिना किसी को बताए बाबा अपने नवीन परिव्राजन पथ पर न जाने कहाँ अन्तर्ध्यान हो गये हैं।

१९२१ साल के लगभग नंगा बाबा फिर पुरी क्षेत्र में वापस आ गये। अन्तरंग भक्तगण हर्षातिरेक से विह्वल ही उठे। सभी की एकमात्र इच्छा यही हो उठी कि इस बार बाबा के लिए एक आश्रम का निर्माण हो जाय जहाँ कि सभी उनके आनंदमय सान्निध्य का लाभ कर धन्य हो सकें।

आश्रम एवं आश्रम विरक्त महापागल संन्यासी का दीर्घ जीवन

अब तक बहते नदी के जैसे प्रवहमान था। अब इस स्वाभाविक जीवन में व्यवधान पड़ गया। शहर के एक जनविरल स्थान पर एक अति साधारण आश्रम के निर्माण की उन्होंने स्वीकृति दी। जनारण्य से बाहर गिर्नारी बन्ता के एक उच्च बालुका स्तूप का निर्वाचन बाबा के आश्रम के लिए हुआ। स्थान का पवित्र इतिहास भी था, तथा प्राकृतिक परिवेश एवं जन शून्यता देखकर बाबा ने संतोष प्रकट किया।

अबसे टीले के शीर्ष भाग पर स्थित यह आश्रम नंगा बाबा का स्थायी स्थान हो गया। दो-चार बार गंगा तथा नर्मदा के तीर्थ स्थानों के भ्रमण को छोड़कर, बाबा अधिक दिनों के लिए यहां से बाहर कभी नहीं गये।

इस बार बाबा सागर संगम की ओर गये हैं। पुण्यतीर्थ में स्नान समापन के बाद पदयात्रा करते हुए उड़ीसा की ओर वापस आ रहे हैं। कलकत्ते के पास ही रिसड़ा आकर उन्होंने एक वृक्ष के नीचे आसन जमाया। महाकाय, दिव्यकांति शिवकल्प महापुरुष—एकबार उन पर दृष्टि पड़ने पर भ्रूक्षेप भी सम्भव नहीं है। स्थानीय धनी जमींदार, लालजी, उसी रास्ते कहीं जा रहे थे। दर्शन मात्र से ही वे बाबा के प्रति आकृष्ट हो उठे।

आगे बढ़कर उन्होंने प्रणाम निवेदित किया। हाथ जोड़कर कहा 'आप कृपा करके जब इस अंचल में आ ही गये हैं तो इस अधम के घर पर ही चलें। आपकी सेवा का सुयोग पाकर हमलोग कृतार्थ होंगे।

नंगा बाबा के अधरों पर स्मित हास्य की रेखा फैल गयी। मृदु गंभीर स्वर में बाबा ने जो कहा, उसका सारांश :

—मैं तो इस वृक्ष के नीचे ही काफी सुख में हूँ। तुम्हारे भवन में जाकर मुझे क्या इतना आराम मिल जायगा? तुम सभी विषयी लोग हो। विषय को ही केन्द्र करके दिन-रात उसी में उलझे रहते हो—यह सब देखकर मुझे विरक्ति ही होगी।

"बाबा, निश्चय ही हम लोग विषय कीट हैं, तथा स्वयं अपने पाप की ज्वाला से संतप्त हैं। परन्तु आप लोग जैसे साधु सन्तों का सान्निध्य पाने से तथा अमृतमय वाणी सुनने से हृदय में थोड़ी शान्ति अवश्य मिल जायगी।

देखो, यह सब बेकार की बातें छोड़ो। साधु-सन्तों की बात जीवन में तुम लोगों ने काफी सुनी है। उनमें से कितनी बातें तुम लोगों ने हृदयंगम की हैं तथा अपने जीवन में उतार पाये हो? उपनिषद् तथा वेदान्त में ऋषियों ने सार तत्व की बातें की हैं, परन्तु कितने लोग उसे ग्रहण कर पाये हैं?"

"फिर भी साधुओं के पुण्यमय साहचर्य से हम लोगों का थोड़ा कल्याण तो अवश्य ही होगा।"

"साधु महात्माओं का गृहस्थों के घर में निवास, यह मैं बिल्कुल पसन्द नहीं करता। इसकी पृष्ठभूमि में साधु-संग लाभ की थोड़ी इच्छा तो अवश्य है, यह तो सत्य है, परन्तु इससे अधिक अहंबोध की भावना है—मेरे निवास पर एक मस्त साधु आकर ठहरते हैं—यह बात अन्यथा न समझना, एक अप्रिय सत्य कह रहा हूँ। बाग-बगीचा, घर एवं रक्षिता रखने जैसे ही आडंबर पूर्वक साधु रखने की भी प्रवृत्ति आजकल बड़े लोगों के भीतर प्रवेश कर गयी है।"

अपने निवास की ओर इंगित करते हुए लाल जी ने कहा, "बाबा, परंतु मैं उतना बड़ा आदमी नहीं हूँ।"

"छोड़ो इन बातों को और मेरी बात सुनो। तुम्हारा यह स्थान मुझे पसन्द आ गया है। कुछ दिन यहीं काट देने का विचार है। परन्तु तुम्हारे मकान में नहीं ठहरूँगा वरन् पास के बगीचे में इसी वृक्ष तले ही रहूँगा। नित्य दो सूखी रोटी और सब्जी रहने से ही मेरा काम चल जायगा।

रिसड़ा में नंगा बाबा ने कुछ दिनों तक निवास किया। तथा लालजी एवं उनके पुत्र राधारमण जी दोनों ही इन महापुरुष की सेवा परिचर्या करके धन्य हो उठे।

यहाँ निवास करने की अवधि में ही एक दुर्घटना के कारण नंगा बाबा महाराज की योगविभूति का ऐश्वर्य अनायास एक दिन प्रकटित हो उठा।

प्रातःकाल उठ कर अपने कृत्यादि शेष करने के पश्चात् भक्त लालजी बाबा के दर्शनार्थ बाहर निकले। मकान के सीमा पर ही फूलों का एक जंगल था। इसी जंगल वाले रास्ते को पार करते समय उनका पैर एक गेहुँमन साँप के ऊपर पड़ गया। पैर पड़ते ही क्रुद्ध सर्प फण उठाकर खड़ा हो गया और उसने लाल जी के पैरों में अपना प्राणघाती दंश कर डाला।

लालजी की आर्त चीत्कार को सुनकर चारो ओर से लोग इकट्ठा हो गये तथा ओझा और डाक्टर बुलाने के लिए सभी विचार विमर्श करने लगे। आत्मीय तथा परिजनों में रोना-धोना भी शुरू हो गया।

सर्पदंश से पीड़ित लालजी ऐसे गंभीर क्षण में भी लक्ष्यच्युत नहीं हुए। दोनों हाथ आगे बढ़ा कर बाबा-बाबा पुकारते हुए वे जंगलपूर्ण बगीचे के गहन क्षेत्र की ओर दौड़ पड़े—जहाँ नंगा बाबा महाराज उपस्थित थे। विषधर सर्प का तीव्र विष शरीर में फैलता जा रहा है। बाबा के आसन तथा धूनी के पास आते-आते लालजी का शरीर धम से धरती पर गिर पड़ा। सारा शरीर नीलवर्ण हो चुका है तथा मुँह से फेन बाहर निकल रहा है। दोनों नेत्र भी धीरे-धीरे निष्प्रभ होने लगे। बाबा का आसन तथा लालजी के पृथ्वी पर पड़े शरीर को घेरकर तब तक काफी भीड़ इकट्ठी हो गयी थी।

नंगा बाबा नीरव हैं तथा निष्पलक दृष्टि से मुमूर्षु भक्त के मुँह की ओर देख रहे हैं।

दो एक मिनट इसी तरह कट गये। इसके बाद बाबा ने अपने कामण्डलु में सागर तीर्थ से लाया हुआ पवित्र जल लालजी के आँख-मुँह में छिड़क दिया। क्षण भर बाद ही दृष्टिगोचर हुआ कि मृतकल्प लालजी के शरीर में चेतना के लक्षण वापस आते जा रहे हैं। शरीर का

रंग क्रमशः स्वाभाविक होता जा रहा है तथा सम्पूर्ण बाह्यज्ञान भी लौट आया है।

लालजी आगे बढ़कर बाबा के चरण पकड़ कर स्तुति कर रहे हैं, तथा दोनों नेत्रों से अविरल अश्रुधारा बह रही है।

इस आश्चर्यमय तथा आनन्दमय दृश्य से पुलकित जनता बार-बार नंगा बाबा की जयध्वनि उच्चरित कर रही है।

लालजी को प्रबोध देने के पश्चात् बाबा ने स्नेह पूर्ण कण्ठ से कहा, "बेटा, और कुछ भय नहीं है। अभी थोड़ा सा दूध पी लेव। घर में जाकर विश्राम करो। कल सुबह में मेरे पास आ जाओ।"

दूसरे दिन प्रातः भेंट होते ही बाबा ने लाल जी से कहा, "अभी तो तुम्हारे समझ में आ गया—जीवन ऐसा एक स्वप्न ही है। तुम्हारा धन-दौलत, इतना बड़ा मकान, लड़का-लड़की, स्त्री—सब कुछ स्वप्न के माफिक झूठ है। एक मुहूर्त में सब टूट जाने लगा था। सब कुछ प्रपंच है, स्वप्न है—यह याद रखने से दुःख की निवृत्ति होगी, मोक्ष आ जायगा तुरन्त।"

उपरोक्त घटना के बाद नंगा बाबा के योग विभूतियों की ख्याति इस क्षेत्र में प्रचारित हो गयी। इसके बाद उस निर्जन बगीचे में जन समागम हो गया। इस कारण ये विरक्त सन्यासी यहाँ से चुपचाप खिसक गये।

भक्त लाल जी के अनुरोध से रिसड़ा में बाबा के लिए एक छोटे से आश्रम का निर्माण हुआ था। लाल परिवार के स्नेह तंतु से आबद्ध बाबा का बीच-बीच में पुरी से यहाँ आगमन होता था। स्वेच्छाविहारी महापुरुष १९२१ से १९२६ ई० तक इस आश्रम में कई बार आ चुके हैं तथा दो एक मास व्यतीत कर गये हैं। रिसड़ा प्रवास की अवधि में कलकत्ता क्षेत्र के कुछेक भाग्यवान भक्त नंगा बाबा के सानिध्य का सुयोग पाकर धन्य हो चुके हैं।

१९२६ ई० के बाद गिर्नारी बन्ता बाबा का स्थायी आवास हो

गया इसके बाद बहुत आवश्यक कार्य न होने पर उन्होंने इस आश्रम का त्याग नहीं किया। जनविरल आश्रम में दो-तीन निष्ठावान सेवकों के साथ बालुका पहाड़ के शीर्ष पर वे अपना आरण्यक जीवन व्यतीत करते। इनके दर्शनों के लिए भक्त गृहस्थ, तीर्थचारी एवं उच्चकोटि के साधु-सन्यासियों का दल एकत्रित होता। समदर्शी महापुरुष सभी के लिए अद्वैत तत्व तथा आत्म ज्ञान का उपदेश वितरित करते। त्याग, वैराग्यवान एवं वेदान्त साधना के मूर्त विग्रह शिवकल्प इस महात्मा को केन्द्र करके मुमूक्षा और परम कल्याण की स्त्रोतधारा अविरल बहती रहती।

नंगा बाबा कहते,—कलिकाल में मनुष्य की आयु कम है। दृढ़ शरीर अथवा मन कहाँ है? स्वास्थ्यहानि और नाना सांसारिक दुःख दारिद्र्य से वे सदाविनष्ट रहते हैं इसलिए योग अथवा तन्त्र साधना उनके लिए इतनी उपयोगी नहीं है। इस युग के मनुष्यों के लिए वेदान्त साधना का पथ आत्मानात्म विचार के पथ पर ही धीरे-धीरे चलने का अभ्यास करना कल्याणकर है। अनेक बार, अनेक समय पर उन्हें दृढ़स्वर में कहते सुना जाता : वेदान्त विचार के रास्ते पर एक चींटी भी चली जा सकती है मोक्ष के द्वार की ओर।

बाबा के ज्ञानगर्भ उपदेशावली [1] का थोड़ा सारांश यहाँ संक्षेप में दिया जा रहा—"देखो, मनुष्य मात्र सुख चाहता है। किन्तु सुख प्राप्ति का असली रास्ता छोड़कर वह गलत रास्ते पर भटक जाता है। इसीलिए असली सुख से वह वंचित रह जाता है। वाह्य जगत के इस विश्व प्रपंच का सभी कुछ विनाशशील है। जो विनाशधर्मी तथा परिवर्तन शील है, वह स्थायी सुख शान्ति किस तरह देगा? पार्थिव भोग्यवस्तु अंततः बराबर दुःख का ही सृजन करता है। भोग्य वस्तु को ध्यान में न रख कर भोगी मनुष्य की ओर एक बार देखो। तुम देखोगे कि वह

१ वेदान्त बोध संकलयिता—राधारमण लाल—पृ० ४-७

नश्वर एवं विनाशशील है। अपनी असहायता के सम्बन्ध में अनुभव अभिज्ञता एवं प्रत्यक्ष दर्शन के बाद भी उसकी भोग लिप्सा दूर नहीं होती।"

कई मुमुक्षु भक्तों ने बाबा से प्रश्न किया, "बाबा, स्थायी सुख लाभ के लिए हम लोगों को क्या करना उचित है ?

बाबा ने उत्तर दिया, "स्थायी सुख पाने के लिए प्रथमतः सत्य वस्तु क्या है, इसका ज्ञान आवश्यक है। सत्य स्वतः प्रकाशशील है, उसे देखने के लिए किसी प्रदीप का प्रयोजन नहीं होता। फिर भी तुम्हारे चक्षुओं में जो मल है, उसे अवश्य ही दूर करना होगा। पहले दृष्टि दोष को दूर करो फिर सूर्य या उसके आलोक को अर्थात सत्य को देख पाओगे। अपने सम्बन्ध में भी सत्य का संधान ही मूल बात है। अपने सम्बन्ध में सत्य किस तरह प्रतिभात होता है ? यह सत्य बतला देता है कि बाह्य दृश्यमान पदार्थ मात्र जड़ ही है तथा मैं अदृश्य एव चैतन्यमय हूँ। जड़ पदार्थ में अहं भावना का बोध करने ही से उसका जो भी दोष है, जैसे जड़ता, क्षणभंगुरता, विनाशत्व, उसकी अपने भीतर उपलब्धि होने लगती है। और चैतन्य में यदि अहं भावना की जाय तो चैतन्यमय स्वरूप भावुक हो उठेगा तथा सत्-चित् आनन्द स्वरुप हो उठेगा। आत्म- ज्ञान के अलावा स्थायी सुख तथा आनन्द नहीं होता। आत्म कल्पतरु के नीचे ही आश्रय लो, यही सर्वसिद्धिदाता होता है। श्रुति में भी कहा है इसके अलावा 'नान्य:पन्था विद्यते'।

—अच्छा बाबा, आत्मा को जानने का क्या उपाय है ?

—आत्मा सभी समय सर्वदा प्रकाशमान रहता है। लोग उसका अनुभव नहीं कर पाते हैं कारण उनके चित्त में अशुद्धता रहती है। मलिन दर्पण में क्या अपना प्रतिबिम्ब दिखलायी पड़ सकता है ? सूर्य का प्रतिबिम्ब क्या उसमें प्रकाशमान हो सकता है ? सूर्य सर्वदा प्रकाश-मान रहता है परन्तु उसका यह प्रकाश स्वच्छ दर्पण अथवा स्वच्छ जल के समान वस्तु में ही दिखलाई पड़ता है। अविद्या के प्रभाव से चित्त

में मल का विक्षेप अथवा आवरणरूपी मैला पड़ा हुआ है। इस मैले को दूर करने के लिए ब्रह्मनिष्ठ श्रीगुरु के मुख से वेद के तत्वमसि इत्यादि महाकाव्य का श्रवण करना होता है, उसके वाद उसका निष्ठा पूर्वक मनन एवं निधिध्यासन करना होता है। यही वेद चिह्नित कल्याणकर पथ है।

वावा कहते, इस प्रपंचमय विश्वसृष्टि को स्वप्नरूप में समझने से तथा क्षणभंगुर बुद्बुद् के रूप में कल्पना करने से साधक के लिए आत्मज्ञान की ओर अग्रसर होने में सुविधा होती है।

उत्तर पाड़ा के पुराने एम० एल० ए० श्री धीरेन्द्र नाथ मुखोपाध्याय नंगा वावा के पास बीच-बीच में जाते रहते। वावा से सम्बन्धित कुछ तथ्य उन्होंने स्वयं लेखक को वतायी थी। एक वार योगदा आश्रम के अमेरिकन साधु को साथ लेकर मुखोपाध्याय महाशय नंगावावा के रिसड़ा वाले आश्रम में गये। अमेरिकन साधु ने प्रश्न किया, "दया करके यह वताने का कष्ट करें कि मनुष्य का अहंबोध किस तरह शेष हो सकता हैं? तथा इसी शरीर से, इसी जन्म में ही क्या मोक्षलाभ संभव है?"

स्नेहपूर्ण स्वर में तथा सरल एवं सहज भाषा में वावा ने इस विदेशी दर्शनार्थी से कहा, "साधना के दो प्रशस्त पथ हैं। एक हैं, इस जगत् को स्वप्नवत ज्ञान करना तथा मिथ्या समझ कर चलना एवं त्याग वैराग्य के पथ से कर्मसन्यास लेना। दूसरा, इस जगत को भगवत् स्वरूप तथा भगवत्मय समझ कर निष्काम में के भक्ति हो जाना। पहला अद्वैत तथा दूसरा द्वैत पथ है। इसे पूर्णरूप से समझ लेना होगा कि कौन से पथ के तुम अधिकारी हो।"

"हम लोग अज्ञानी, अहंबोध युक्त मनुष्य हैं। कौन से पथ के अधिकारी हैं यह किस तरह समझ पायेंगे।"

"इसीलिए गुरु की आवश्यकता पड़ती है। मूर्ख अज्ञानी गुरु नहीं, ब्रह्मविद् गुरु जो कि आत्मज्ञान के आलोक से अभ्रान्त रूप से तुम्हारे जन्म-

जन्मोन्तर की खबर जान जायेंगे। जो कि इस बार की साधना का पथ प्रदर्शन करने में समर्थ होंगे।"

असल में नंगा बाबा वेदान्त के ही पक्षपाती थे। अधकचरे रास्ते की मिली जुली व्यवस्था वे कभी भी सहन नहीं कर सकते थे। सारांश यह कि वे मुमूक्षुगण के सम्मुख अद्वैत ब्रह्मज्ञान के पथ का ही दिग्दर्शन करते कर्म संन्यास की प्रधानता देते। उनके मतानुसार आत्मज्ञान साधना के दो ही आयाम हैं, एक अन्तरंग तथा दूसरा बहिरंग।

ब्रह्मविद् गुरु के सान्निध्य में रह कर त्याग वैराग्यमय जीवन व्यतीत करते हुए महावाक्य का श्रवण मनन एवं निदिध्यासन ही अन्तरंग साधन है। इस साधन की परम्परा यथाक्रम से विवेक, वैराग्य, षट सम्पत्ति (शम, दम, उपरति, तितीक्षा श्रद्धा एवं समाधान मुमूक्षत्व 'तत' पद 'त्वं' शब्द के अर्थ का साधन श्रवण मनन एवं निधिध्यासन है।

इसके अलावा आत्मज्ञान की बहिरंग साधना दो पन्थ से अनुसृत होती है— निष्काम कर्म एवं निष्काम उपासना से।

वेदान्त के मुमूक्षत्व के विषय में आप जो भी कहें सत् एवं मुक्तिकामी साधारण गृहस्थ के लिए बाबा की व्यवस्था अत्यन्त साधारण थी। वे कहते, "गृहस्थ मनुष्य यदि मोक्ष का द्वार उन्मुक्त करना चाहता है तो उसे तीन विषयों की ओर अग्रसर होना पड़ेगा। वे तीन हैं—सद्ग्रन्थ एवं शास्त्र ग्रन्थ का पाठ, सत्संग तथा सद्गुरु के उपदेशानुसार साधन।

अन्तरंग गोष्ठी तथा परिशवे में साध्य-साधन तत्व की बात नंगा बाबा अनेक बार ऐसी सरल तथा सहज भाषा में आंतरिकता के साथ विवृत्त करते कि भक्तों के हृदय में वह स्थायी भाव से हृदयंगम हो जाती। एक दिन के इस वार्ता को बात मैं श्री राधारमण लाल की ही भाषा में उद्धृत कर रहा हूँ।[1] :—

१—वेदान्त बोध : नंगा बाबा की उपदेशावली, पृष्ठ १०

'हम लोग एक बार पुरी धाम स्थित गिर्नारी पहाड़ पर बैठ कर उसका मनोमुग्धकारी परम रमणीय सौन्दर्य देख रहे हैं। दक्षिण दिशा में तरंगमाला से समन्वित बंग सागर, पूर्व में पुरी का श्रीमंदिर, उत्तर की ओर यमुना नदी एवं पश्चिम में उच्च बालुका राशि के ऊपर नयनाभिराम सुन्दर हरित वृक्षों की श्रेणी अपने मनोमुग्धकारी रुप से हम लोगों को मुग्ध कर रही थी। श्री बाबा ऐसे आसीन हैं मानो साक्षात् शिव हों। मैंने कहा—"यही तो हम लोगों का प्रेय और श्रेय है जो आप के श्री चरणों के निकट हम लोग निर्भय होकर स्वर्गसुख का उपभोग कर रहे हैं। प्रकृति ने निर्जन आश्रम को उसकी मनोरमता-वृद्धि के लिए नाना रूपों से मानों सजा रखा है। कौन नहीं चाहेगा कि इस सुन्दर परिवेश में वह अमर होकर रहे और सर्वदा आपके श्री चरणों की सेवा का सौभाग्य लाभ करें ?

प्रत्युत्तर में बाबा ने कहा— जो लोग सृष्टि के प्रकृत तत्व तथा रहस्य के मर्मज्ञ हैं, एकमात्र वे आत्मानुभवी महापुरुष ही निरविच्छिन्न आनन्द प्राप्त करते हैं और उस आनन्द को प्राप्त करने के वे अधिकारी भी हैं। तुम मात्र अभिनय देखते हो। समझ रखो—अभिनय एवं अभिनेता दोनों ही मिथ्या हैं। अभिनेता समझते हैं कि वे हरिश्चन्द्र नहीं हैं, परन्तु अभिनेता स्वयं तथा दर्शक रूप में तुम लोग, जब करुण दृश्य आता है तो करुणा से तथा भयंकर दृश्य आने पर भय से अभिभूत हो उठते हो। किसी के मन में यह भावना नहीं उठती कि यह मात्र अभिनय है। अपने को सदैव अभिनय द्रष्टा समझ कर रहो, जैसे मैं अपने कैलाश पर आसीन हूँ। पार्श्व में मेरा अक्षयवट वृक्ष है। नीचे संसार के जीव जब माथे पर अपनी ही बांधी हुई गठरी लेकर अतिकष्ट से चलते फिरते नजर आते हैं, तब मुझे देख कर हँसी आती है। इसलिए कि, ये लोग गठरी स्वयं बाँधकर ढोते समय किस तरह दुःखी हो रहे हैं। इसीलिए संसारी लोगों की बातचीत में भी सुख तथा शांति मिल पाना बड़ा ही कठिन है। कारण, उसको वे स्वयं ही नहीं चाहते हैं।

आत्मिक साधना के जिस उच्चतम शिखर पर आरुढ़ होकर नंगा बाबा जगत् प्रपंच के अलीकत्व की घोषणा करते, संसार को स्वप्न-रूप, तथा अभिनय रूप से देखने का उपदेश देते, संसारी मनुष्य के लिए उसकी कल्पना करना भी सहज नहीं है। इस सम्बन्ध में प्रभूत जिज्ञासुगण आधारभेद से बाबा के निकट से साधन के सम्बन्ध में अनेक मूल्यवान उपदेश प्राप्त करते।

कुमुद बंधु सेन उस बार बाबा के दर्शनार्थ गिर्नारी वन्ता आश्रम में उपस्थित हैं। बातचीत में ही साधन तत्व की बात चल पड़ी। श्रीयुक्त सेन ने लिखा है—"मैंने कहा—भगवान लाभ किस तरह होता है। नंगा बाबा ने उत्तर दिया—'तुम उसी ब्रह्म की गोद में बैठे हुए हो और वे तुम्हारे अन्तर के हृदय-पद्म पर आसीन हैं'। मैंने कहा—क्या ऐसा तुरत हो जाता है? आपने भी तो कितनी योग्य-तपस्या की थी।"

"उन्होंने उत्तर दिया—वह सब करके ही तो कह रहा हूँ। कलियुग में, विशेषत: बंगाली शरीर से योग प्राणायाम अधिक करने पर अस्वस्थ हो जाओगे। मैं यह सब करके ही तो तुम्हें इतनी बात बतला रहा हूँ।"

"मैंने कहा,—ब्रह्म सत्य जगत् मिथ्या', यही तो वेदान्त कहता है। उन्होंने कहा, तुम्हें इतनी बड़ी-बड़ी बातों से क्या प्रयोजन? जो बताया, वही करो, यही सहज मार्ग है। उन सबके सम्बन्ध में जब धारणा हो जायगी, तब लम्बी चौड़ी बातें करना।"

"मुझसे आगे कहा,—देख रहा हूँ, तुम्हारा गुरुकरण हो चुकना है। उसी इष्ट मंत्र का जप करोगे। वही इष्ट ही ब्रह्म है। उसी की गोद में बैठे हुए हो। वही तुम्हें ब्रह्मानन्द-रस पान करने देंगे, और तुम्हारे हृदयपद्म पर आसीन होकर रहेंगे।"

भीषण ग्रीष्म की दोपहर है। श्रीयुक्त सेन उस दिन भीषण धूप में घूम-फिर कर वापस आये हैं। नंगा बाबा ने उसी समय सेवकभक्त ज्ञानानंद जी को पास बुलाकर कहा, "जल्दी से एक डाभ दो।"

१ उज्जीवन : पुरी धामें न्यांगटा बाबा, पौष १३६९

सेवक भक्त आदेश पालन में अधिक उत्साह नहीं दिखा रहा है और हाथ जोड़ कर चुपचाप खड़ा है।

रुष्ट होकर बाबा ने कहा, "मामला क्या है? क्या तुमने मेरी बात सुनी नहीं?"

"जी, ऐसा नहीं है, असल बात यह है कि आश्रम के भंडार में मात्र एक ही डाभ बचा हुआ है। उसे आपके लिए ही रख दिया गया है।"

श्रीयुक्त सेन तुरत बोल उठे, "क्या हुआ बाबा, मात्र एक डाभ ही बचा है, उसे आपखायेंगे। मैं उसे कभी नहीं खाऊँगा। मुझे ऐसी कोई आवश्यकता नहीं है।"

बाबा ने इस बात पर ध्यान ही नहीं दिया। उसी समय उनके हुकुम के अनुसार वह डाभ तृष्णार्त सेन महाशय को दे दिया गया।

बातचीत में ही कुछ समय बीत गया। इसके बाद दीख पड़ा—बालुकास्तूप के नीचे गेट के सामने डाभ से भरी हुई एक बैलगाड़ी खड़ी है। गाड़ी का मालिक यहाँ का एक सम्पन्न गृहस्थ है। त्रस्तपद से वह ऊपर आकर नंगा बाबा को प्रणाम करके हाथ जोड़कर निवेदन कर रहा है, "बाबा, मेरे बगीचे में बहुत से नारियल के वृक्ष हैं। एक पेड़ पर निशान लगाकर मैंने मन्नत मानी थी कि इस बार उस पर जो प्रथम फल तैयार होंगे वह आपके आश्रम के व्यवहार हेतु मैं दूँगा। उसे ही लेकर आया हूँ, दया कर आप उसे ग्रहण करें।"

बाबा ने उसे आशीर्वाद देकर तुरत ज्ञानानन्द जी के पास भेज दिया—मानों प्रसाद ग्रहण हो गया। अब सेन महाशय की ओर देखकर मुस्कुराने लगे। शांत स्वर में उन्होंने कहा, तुमने प्रत्यक्ष किया तो, असल में हम सभी ब्रह्म की गोद में बैठे हुए हैं। हमारे लालन-पालन का भार भी उन्हीं के ऊपर है। परन्तु हमलोगों के अन्दर वेशी है, तथा अहंबोध भी अधिक है। इसीलिए तो हम लोग उसकी सारी व्यवस्था उलट-पलट कर डालते हैं। हमारे सारे दुःख-कष्ट हमारी अपनी ही सृष्टि है। जो ब्रह्म के ऊपर एकान्त भाव से निर्भर रहता है, उसके सम्मुख आत्मसमर्पण करता है,

उसे कष्ट क्योंकर होगा ?"

नंगा बाबा आत्मज्ञान साधना का जितना भी उपदेश क्यों न दें, अथवा योग विभूति और सिद्धाई के विरुद्ध कितने भी कठोर विचार प्रकट क्यों न करें, फिर भी उनके लीलामय जीवन में विभूति के कम ऐश्वर्य प्रकट नहीं हुए थे। गिर्नारी बन्ता आश्रम के स्थापना से पूर्व उनको केन्द्र करके जैसी बहुत सी अलौकिक घटनाएँ घटित हो गयी थीं, उसके बाद वाले काल में भी उससे कम अलौकिक घटनाएँ नहीं हुईं। आर्त संसारी मनुष्य का करुण क्रन्दन तथा विनती बार-बार बाबा के हृदय में करूणा का स्पन्दन जगा देता था।

एक दिन आश्रम के कक्ष में बाबा भक्तों के संग कथा वार्ता में लीन थे। ऐसे ही समय में एक कंकाल मात्र, रुग्ण देह उड़िया ग्राम-वासी उनके सम्मुख उपस्थित हुआ। भयानक संग्रहणी रोग से वह ग्रस्त है। भक्तिपूर्वक प्रणाम निवेदन करने के बाद खड़े होते ही बाबा ने उससे संवेदनात्मक स्वर में प्रश्न किया "क्यों रे, तुम्हारी क्या खबर है ?"

रोगी ने आर्त कण्ठ से कहा. 'अब यह कष्ट सहन नहीं कर पा रहा हूँ। जो कुछ भी खाता हूँ, पेट में रुकता नहीं। ऐसा हो गया है कि आज-कल जल-सत्तू भी हजम नहीं हो पा रहा है।"

"देखता हूँ, बड़े कष्ट में पड़ गये हो। फिर यहाँ किसलिए आए हो ? मैं डाक्टर हूँ, जो रोग अच्छा कर दूँगा ? या तो डाक्टर के पास जाकर अच्छी तरह दवा वगैरह लो—नहीं तो लोकनाथ शिव जी के मन्दिर में चले जा।"

"बाबा, डाक्टर का प्रयास शेष हो चुका है। उन्होंने कहा है कि यह संग्रहणी रोग अब अच्छा होने वाला नहीं है। इसी से तो आपके पास शरण ले रहा हूँ। जो भी हो अब आप ही इसकी कोई व्यवस्था कीजिए।"

"मैं क्या करूँगा ? यह तो काल व्याधि है। शिवजी के चरणामृत के अलावा, इसके लिए अन्य कोई उपाय नहीं है। नित्य वहाँ ह एक घड़ा चरणामृत सेवन करो। उसी से ठीक हो जाओगे।"– आश्वासन देते हुए बाबा ने कहा, तुम्हें डरने की कोई आवश्यकता नही है, उससे ही ठीक हो जाओगे। समझे, कोई डर नहीं है।"

कुमुद बन्धु बाबा के पास ही खड़े हुए हैं। कहा, "बाबा, योग विभूति की सहायता से तो रोगमुक्त करना आप पसन्द करते नहीं, फिर भी इसके प्राण बचाने के लिए आपको उसीकी सहायता लेनी पड़ी।"

नंगा बाबा मुस्कराने लगे। भक्त के प्रश्न को कौशल पूर्वक टाल कर उन्होंने कहा 'देखो, द्रव्यगुण को मानना ही पड़ेगा। शिवजी के भक्त गण कितने किस्म के फूल, चन्दन अर्घ आदि डाल देते हैं। उन सभी मिली जुली वस्तुओं का एक विशेष द्रव्यगुण नहीं है क्या ?"

बाबा से उस समय अवश्य ही तर्क किया जा सकता था---कि आपके निर्देश के अलावा अन्य कोई रोगी घड़े का घड़ा चरणामृत पान करके देखे तो कि उससे प्राणघाती संग्रहणी रोग का निवारण होता है या नहीं ?

पुरी के विशिष्ट जमीन्दार कृष्ण बाबू की स्त्री, तुलसी देवी, नंगा बाबा के अनन्य भक्तों में से थीं। गिनीरी बन्ता का आश्रम तैयार होने से पहले से ही इन महिला ने बाबा का आश्रय लिया था और उसके बाद के काल में भी काफी अधिक समय तक उनकी सेवा का अधिकार पाकर धन्य हुई थीं।

प्रतिदिन प्रातः एक निर्दिष्ट समय पर ये महिला भक्त आश्रम में उपस्थित होतीं। उनके साथ बाबा के लिए एक वर्त्तन में दूध होता तथा पूजा एवं अर्घ्य की सामग्री होती। धूप-गुगुल के सुगन्ध से सारा कक्ष सुगन्धित हो उठता, तथा बाबा के गले में बड़े-बड़े गन्ध पुष्पों की माला पहनाई जाती। इसके बाद घंटी और पंचप्रदीप लेकर भक्तिमती तुलसी देवी स्नेह पूर्वक महापुरुष की आरती करती। इस प्रकार का

वाह्य अनुष्ठान बावा को कभी पसन्द नहीं था, परन्तु इस भक्त साधिका के अन्तर की इच्छा का किसी दिन उन्होंने प्रतिरोध नहीं किया। सुबोध बालगोपाल जैसे वे मौन, निश्चल बैठे रहते। आरती एवं पूजा शेष होने के बाद ही प्रतीक्षा में बैठे दर्शनार्थियों से कथा वार्ता आरम्भ होती।

एक बार नंगा बाबा किसी से बिना कुछ कहे सुने पुरी धाम से अन्तर्ध्यान हो गये। सभी भक्त मर्माहत हो उठे। वे अच्छी तरह जानते हैं, कि बाबा स्वतन्त्र पुरुष हैं और यत्र-तत्र स्वेच्छा पूर्वक विहार करना ही उनकी चिरआचरित रीति है। कुछ दिनों के बाद फिर वे अकस्मात् एक दिन आविर्भूत होंगे, इसी आशा से अन्तरंग भक्तगण दिन गिन रहे हैं।

बाबा के दर्शन से वंचित तुलसी देवी ने उस दिन एक अद्‌भुत काण्ड कर डाला। उन्होंने संकल्प किया कि जबतक बाबा पुरी धाम में प्रकट नहीं होते हैं, तबतक वे उपवास करेंगी। पति का आश्वासन तथा नंगा बाबा के भक्तों का अनुरोध किसी से भी उन्होंने अपना संकल्प नहीं तोड़ा। महीनों तक ये महिला भक्त बिना किसी प्रकार का आहार ग्रहण किए हुए दिन व्यतीत करती रहीं।

कृष्ण बाबू एवं बाबा के विशिष्ट भक्तगण पहले तो उनका यह व्रत देख कर चिन्तित तथा भीत हो उठे, तथा अपने को असहाय महसूस करते रहे। परन्तु बाद में लोग सब कुछ बाबा की कृपा पर छोड़ देने को बाध्य हो गये।

परम विस्मय की बात यह थी, कि इन महिला का अनशन व्रत लगभग दो वर्षों तक चला और नंगा बाबा ने अपनी अलौकिक कृपा शक्ति से उनको जीवित रखा।

दो वर्षों के व्यवधान के बाद पुरी के भक्तों को यह सूचना मिली कि नंगा बाबा भागलपुर के निकट एक जनविरल अरण्य में निवास कर रहे हैं। कृष्ण बाबू तुरत बाबा की सेवा में निकल पड़े, तथा उन्होंने साफ-साफ उनसे अपनी स्त्री के आश्चर्यजनक अनशन की बात कही। महा-

पुरुष का हृदय द्रवीभूत हो गया और वे तुरत पुरी धाम वापस आ गये ।

संध्या वे महिला भक्त के घर पर उपस्थित हुए। स्नेह पूर्ण स्वर में उन्होंने कहा, 'ये क्या बात है ? खाना पीना एकदम काहे छोड़ दिया ? खालो-खालो ।"

इतनी दीर्घ अवधि का अनशन बाबा के आविर्भाव तथा इतनी सी बात से ही समाप्त हो गया । ये महिला भक्त ने किस शक्तिबल से दो वर्षों तक यह आश्चर्यजनक कार्य किया था एवं अपने प्राण की रक्षा की थी; इस सम्बन्ध में बाबा से प्रश्न करने पर उन्होंने संक्षेप में उत्तर दिया, 'उसको विश्वास था इसीलिए बिना भोजन-पानी के जिन्दा रही'

इतना ही कह कर उन्होंने भक्त गण को कृपा अथवा योग विभूति का प्रश्न इस संदर्भ में उठाने ही नहीं दिया ।

आत्मज्ञान साधना की प्रथम स्थिति होती है, देहात्म बोध के लोप की प्रचेष्टा । अगर कोई भक्त अथवा आर्त व्यक्ति नंगा बाबा के समीप उपस्थित होता तो वे इस कल्याणकर प्रचेष्टा की ओर उसका ध्यान आकृष्ट करते ।

एक दिन एक भक्त बाबा को प्रणाम निवेदनार्थ आये हुए हैं। उनके साथ में झोला भर रंगीन फूलों की अनेक मालाएँ हैं। बाबा के गले में उन्होंने एक के बाद एक, सारी मालाएँ पहना डालीं। इस माल्यार्पण पर्व के शेष होने पर बाबा ने कहा, "और हो तो दो। लेकिन समझ रखो यह भी एक प्रपंच है।"

कभी-कभी भक्तिपूर्वक कोई प्रणाम निवेदित करता तो बाबा स्निग्ध स्वर में कह उठते, 'हाँ, हाँ, प्रणाम करो, इस हड्डी मांस के देह को तो प्रणाम कर लेव।"

इस मंतव्य के माध्यम से भक्तों के ये कल्याणकारी महापुरुष इंगित करते हैं—अपनी श्रद्धा एवं प्रणति मेरे इस हाड़ मांस की काया तक ही

सीमित मत रखो—उसे मेरी ज्ञानमय सत्ता तथा शिव सत्ता की ओर प्रेरित करो ।

इससे पहले मैंने तुलसी देवी द्वारा वावा की अर्चना तथा आरती का उल्लेख किया है। उनके अलावा भी दो चार एकनिष्ठ भक्त बावा के आश्रम में नाना उपचार के साथ उपस्थित होते तथा उनकी पूजा एवं आरती संपन्न करके विदा लेते।

प्रवीण भक्त तथा आश्रमवासी भजुवावू (वर्त्तमान स्वामी शंकरानन्द) की अभिलाषा हुई कि उपरोक्त भक्तों का अनुसरण करते हुए वे भी वावा की पूजा एवं आरती करेंगे और यह उनका एक दैनिक विशेष अनुष्ठान रहेगा।

संध्या की तरल छाया जब नील आकाश पर प्रतिविंबित हो उठती तथा वालुकाराशि के शीर्ष पर दिवस-अवशान की रक्तिम आभा फूट पड़ती और विराट्काय नग्न महासाधक अर्धनिमीलित नेत्रों से देखते हुए अपने कक्ष में नीरव बैठे रहते, इसी समय रोज आश्रमवासी गण थोड़ी देर के लिए हाजिर होते। उनके साथ पूजा-आरती के सारे उपचार भी रहते जिनमें झाझर-कांसा, सिंघा तथा घंटा भी रहते।

आरती शुरू होते ही वावा महाराज उसे जल्दी से समाप्त कर देने की चेतावनी भी देते। वाद्य यंत्रों की ओर लक्ष्य करके उन्होंने भक्त भजु वावू से कहा—"भजु, जल्दी खतम करो। अपने भूत सभों को भगाओ यहाँ से।"

विनम्र स्वर में भजु वावू ने कहा, "बाबा, भूत भगाने की वात क्यों कह रहे हैं ? आपकी पूजा-आरती के लिए ही ये सब वाद्य यंत्र लाये गये हैं और इन्हें आप कह रहे हैं—भूत ?"

"क्यों नहीं ? असली पूजा में होता है मन में ध्यान। इतना हल्ला तो भूत भगाने के वास्ते होता है"।

हिन्दी और गुरुमुखी भाषा नंगा बावा अच्छी तरह जानते थे। इसके साथ ही तेलेगु तथा तमिल पर भी उनका अधिकार था।

एक बार गंजाम से तेलेगु भाषी साधुओं का एक दल आश्रम में उनके दर्शन हेतु आया हुआ था। उन लोगों ने बाबा की शिवरूप में स्तव-स्तुति एवं अर्चना की। उसके बाद नाना वाद्य यन्त्रों तथा संगीत की लय में उन्होंने दक्षिणी पद्धति की आरती प्रारम्भ की। उच्च स्वर एवं शोर शराबा कान फटाने वाले थे। थोड़ी देर तक धैर्य करने के बाद बाबा कह उठे "अरे इतना चिल्लाने से क्या होगा? मन में स्मरण करो, ध्यान करो। उसी से असली काम होगा।"

बाबा की विरक्तिपूर्ण वाणी सुन कर तथा उनका मनोभाव समझ लेने के बाद भक्त साधुओं का उत्साह ठण्ढा पड़ गया।

शिष्य, भक्त एवं आगन्तुक दर्शनार्थियों के कल्याण हेतु अप्रिय सत्य या कोई कठोर बात कहने में बाबा कभी संकोच नहीं करते थे। इसके कारण प्राय के भक्त एवं सेवकगण अनेक बार लज्जा एवं संकोच में पड़ जाते।

एक उड़िया सज्जन एक दिन बाबा को प्रणाम निवेदित करने आये। स्वयं भक्तिमार्गी साधक होने पर भी इन महावेदान्ती के प्रति उनका विशेष आकर्षण था। बीच-बीच में आकर वे उनकी उपदेश सुधा का पान कर जाते थे। बातचीत के संदर्भ में ही उस दिन कुछ अन्तरंग वातावरण उपस्थिति होने पर भक्त ने अपने व्यक्तिगत अवस्था की चर्चा की। उन्होंने कहा, "बाबा, आजकल मेरा मन भजन तथा गान के अलावा साधारणतया किसी अन्य वस्तु से लिप्त नहीं होना चाहता। भजन सुनते ही मेरा मन उसमें एकदम विभोर हो उठता है। अन्य किसी कार्य के लिए होश नहीं रहता। आजकल ऐसी ही अवस्था है।"

उत्तर मिला, 'वह भी तो एकठो विषय है।'

कलकत्ता के एक विख्यात कीर्तन शिल्पी कुछेक साथियों के साथ पुरी प्रवास के लिए आये हुए हैं। स्थानीय लोगों से बाबा की ख्याति एवं माहात्मय सुनकर उनके दर्शन करने आये हुए हैं।

प्रणाम निवेदन और बातचीत के बाद उस दल के एक व्यक्ति ने कहा, "बाबा, ये भजन कीर्तन एक विख्यात शिल्पी हैं। हम सभी की इच्छा है कि आज इनके कण्ठ से थोड़ा कीर्तन सुनें।"

अर्धनीमिलित नेत्रों से महापुरुष ने उत्तर दिया, 'बेकार गीदड़ के माफिक चिल्लाने से क्या फायदा है?"

बड़ी अप्रिय और कठोर बात थी। दर्शनार्थी-गण मन ही मन क्षुब्ध होकर नीरव बैठे रहे। बाबा को फिर होश हुआ कि इतना कठोर होना अच्छा नहीं हुआ। इससे इनके मन में दुःख हुआ है। धीरे-धीरे प्रशान्त कण्ठ में उन्होंने कहा,—देखो, भजन कीर्तन अच्छा ही है। मन को वह भगवत्मुखी कर देता है, इसमें संदेह नहीं। किन्तु उसको लेकर ही लिप्त होकर लोग भूल करते हैं। प्रपंच से मन को हटा लेना होगा। त्याग-वैराग्य तथा स्मरण, मनन—निदिध्यासन के पथ पर अग्रसर होना होगा तभी मोक्ष प्राप्त होगा। ताल मान, लय—ये सब भी प्रपंच हैं। इसी में फँसे रहने से तो नहीं चलेगा।"

प्रति दिन प्रातः आश्रम में स्वाध्याय का उद्यापन होता है। उस दिन पंचदशी का पाठ चल रहा था। बीच-बीच में बाबा एक-एक सूत्र लेकर अध्यात्म साधना के नाना इंगित प्रदान कर रहे हैं।

थोड़ी देर बाद एक नवीन दर्शनार्थी आकर उपस्थित हुआ। प्रणाम निवेदन के बाद कमरे के एक कोने में जाकर वह बैठ गया, और निर्निमेष सतृष्ण नेत्रों से बाबा की ओर देखने लगा।

,कुछ देर तक आलोचना होने के बाद बाबा इस नवागंतुक की ओर देख कर कहने लगे, "दर्शन हो गया, अभी चले जाओ।'

दर्शनार्थी ने हाथ जोड़ कर कहा, "बाबा, थोड़ी देर और बैठकर आपका दर्शन करूँ।"

थोड़ी देर बाद बाबा ने फिर तगादा करना शुरु किया, "बड़ा धूप होगा, बाहर में। दर्शन तो हो गया, बेकार काहे बैठे हो?'

भक्तों ने सोचा, "बेचारे को क्यों बाबा उठा रहे हैं। बाबा के संग लाभ का उसे लोभ है, तथा कुछ शास्त्र पाठ भी सुनना चाहता है।" किन्तु बाबा के बार-बार कहने पर उसे उठ कर जाना ही पड़ा।

एक भक्त ने साहस संचय कर के प्रश्न किया, "बाबा, इस व्यक्ति को आपने दया करके थोड़ी शास्त्र आलोचना भी नहीं सुनने दी। संभव है उसमें सुनने की तीव्र इच्छा रही हो। कितना दुःखी होकर वह आपके पास से उठ कर गया है।"

बाबा ने उत्तर दिया, "तुम सभी बालक हो, यह सब क्या समझोगे ? उसके स्त्री को राजयक्ष्मा हो गया है। बचने का कोई उपाय मैं नहीं देख रहा हूँ। मन की यह एक मात्र कामना लेकर वह बैठा हुआ है, कि मैं कृपा करके उसकी स्त्री को रोगमुक्त कर दूं। कोई यदि कामना या वासना लेकर पास बैठा हुआ हो तो शास्त्र पाठ क्या चल सकता है ? बार-बार पवित्र भाव-प्रवाह में विघ्न पड़ जाता है। इसीसे तो उसको उठ जाने के लिए कहा।"

उसके बाद अपनी बात के समर्थन में उन्होंने कहा, "अच्छा तुम लोग ही बताओ, यह आश्रम है या हस्पताल ? क्या सभी को रोग मुक्त करने का यह दफ्तर हो जायगा ? यह आश्रम है भव-रोग का हस्पताल। यहाँ भव-रोग मुक्ति तथा मोक्ष का लाभ अवश्य हो सकता है, यदि त्याग-वैराग्य एवं ध्यान मनन में गति हो।"

एक बार एक धनी भक्त बहुत दिनों के बाद नंगा बाबा के दर्शन हेतु आये हुए हैं। उत्साह पूर्वक वे अपने तीर्थ भ्रमण तथा दर्शन की ही बात बार-बार कह रहे हैं। अंत में उन्होंने कहा, 'बाबा भारत के सभी जाग्रत तीर्थों का मैं दर्शन कर चुका हूँ। केदार बदरी इत्यादि का तो पहले ही दर्शन कर चुका हूँ। अबकी भी वहाँ सपरिवार जाऊँगा ऐसा सोच रहा हूँ। प्रार्थना है आपका आशीर्वाद तीर्थ भ्रमण में सर्वदा मेरे ऊपर रहे।"

बाबा अबतक सारी बातें शांत भाव से सुन रहे थे। अब उन्होंने अपना मौन भंग किया, "हाँ, हाँ, जाओ तीर्थ में, बहुत घूमो। लेकिन यहाँ भी पत्थर, वहाँ भी पत्थर। हाथ में बहुत पैसा है, बहुत घूमते फिरते भी हो। और तीर्थ से लौट कर सबके साथ गप करो सबके साथ ऐसा किया ऐसा देखा। यह अहं छोड़ कर कोई स्थान में बैठ जाओ, आत्मज्ञान के लिए कोशिश करो।"

पुरी के साधक बाबा की बहुत भक्ति तथा श्रद्धा करते हैं। प्रायः ही आश्रम में आते हैं, तथा शास्त्र-पाठ-श्रवण के पश्चात उनके उपदेशों से धन्य होते हैं। गुरु निर्देशित मार्ग पर ये काफी दिनों तक साधन-भजन करते रहे हैं, किंतु अंतर में उतनी शांति का लाभ नहीं हुआ है। एक दिन दुःखी होकर उन्होंने कहा, "बाबा इतने दिनों से जप कर रहा हूँ, कृच्छ साधन कर रहा हूँ, कुछ भी तो नहीं हो रहा है। देव-देवियों की मूर्त्ति का दर्शन अथवा अतीन्द्रिय दर्शन श्रवण—ये प्राथमिक प्राप्तियाँ भी तो अबतक कुछ नहीं हुई। ये सब तो दूर की बातें हैं। चित्त भी बराबर अशांत सा ही रहता है।"

बाबा ने उत्तर दिया, "इन सब दर्शनों से क्या फायदा है, मुझे बताओ। इससे तुम्हें आत्मज्ञान होगा ?"

साधक लज्जित होकर मुंह लटकाए चुपचाप बैठे रहे। कुछ देर बाद स्नेह पूर्ण स्वर में बाबा ने जो कुछ कहा उसका सारांश निम्नलिखित है :

अर्जुन के विश्व दर्शन की बात तो तुमने पढी है ? वे कृष्ण जी के घनिष्ट सखा एवं अनुगामी थे। महायुद्ध के प्रारंभ में ही कृष्ण जी ने कृपा करके उन्हें विश्व रूप का दर्शन करा दिया। किन्तु अर्जुन के साधना की प्रस्तुति क्या थी ? विशेष रूप से विश्व रुप दर्शन की उनकी प्रस्तुति कितनी थी ? इससे पहले तो उनका समय धनुर्विद्या, बहु विवाह तथा नारी के साहचर्य में ही कटा था ! अच्छी तरह सोच-समझ कर बताओ तो विश्व रुप दर्शन के पश्चात

हुआ था, ? यदि ऐसा हुआ था, तो अभिमन्यु के मृत्यु के बाद अज्ञानी के जैसे उन्होंने शोक क्यों किया ?"

हँसते हुए उन्होंने आगे कहा, "कृष्ण जी बड़े चतुर हैं, परन्तु अर्जुन के आचरण के कारण वे बड़ी विपत्ति में पड़ गये। इसके अलावा तुम क्या यह सोचते हो कि अर्जुन मात्र शोक से ही अभिभूत हुआ था ? कृष्ण-सखा को डर भी काफी हो गया था, कारण उस पक्ष में भी दुर्जेय महा-रथी थे। वे अजेय हैं इसे अर्जुन सबसे अधिक जानते थे। भीष्म ने सम्मुख समर में किसी दिन भी पराजय स्वीकार नहीं की थी। तथा द्रोण महावीर ब्राह्मण योद्धा थे। मनः पूत वाण संधान करने में वे अद्वितीय थे। कर्ण का भी पराक्रम अपरिसीम था। इन सभी चिंताओं को लेकर विषाद के साथ-साथ डर नहीं लगा, यह तुम कैसे सोचते हो ? इसी डर को हटाने के लिए कृष्ण जी ने दिखाया कि पहले से ही इन महारथियों को काल-कवलित कर डाला है। किन्तु यह भी सोचो, अभिमन्यु, जो मारा गया, उसे उन्होंने बिलकुल ही नहीं दिखाया।"

'वह दिखला देने से क्या होता, बाबा ?" एक भक्त ने कौतूहल पूर्वक प्रश्न किया।

"अरे ऐसा हो जाने पर क्या कृष्ण जी द्वारा निश्चित यह धर्म युद्ध होता ? उसकी पोल हो खुल जाती। गाण्डीव धारी गांडीव छोड़ कर हाथ पांव ढीले करके रथ पर बैठ जाते। उनके द्वारा युद्ध कराया नहीं जा पाता, और कौरवों का पतन भी संभव नहीं हो पाता। फिर सोचो अर्जुन ने इतनी तत्व व्याख्या स्वयं कृष्ण जी के मुख से सुनी, विश्वरुप का भी दर्शन किया, फिर भी शोक के मोह से ग्रस्त रहे।"

प्रसंगवशात् एक जिज्ञासु भक्त ने कहा, 'बाबा, भगवद्गीता परम श्रद्धेय वस्तु है, तथा मैं नित्य उसका पाठ भी करता हूँ। किन्तु अनेक मत और मार्गों की बात पढ़कर मेरे जैसा साधारण मनुष्य समय-समय पर विभ्रान्त हो उठता है।'

थोड़ी देर चुप रहने के बाद बाबा ने अपनी श्रोता मण्डली पर

अकस्मात् मानो एक बम विस्फोट कर डाला।—कहा—"वह तो एक जादू की डिबिया जैसी खिचड़ी है। सब किसम का रस उसमें घुसा दिया है।"

नंगा बाबा की रसिकता एवं भक्तों की कौतूहलपूर्ण बातचीत से कमरे के भीतर एक अंतरंग वातावरण की सृष्टि हो गयी है। ऐसा सुयोग पाकर अनेक भक्त नाना प्रकार के प्रश्न तथा जिज्ञासाएँ उपस्थित करने लगे।

कुछेक स्थानीय भक्त प्रायः इन महापुरुष के आश्रम में आते जाते रहते। एक ने निवेदन किया, "बाबा, दिनों दिन हताश होता जा रहा हूँ, साधना के पथ में अब वैसे अग्रसर नहीं हो पा रहा हूँ।"

बाबा ने तिरस्कार के स्वर में कहा—"पहले एक-एक करके बन्धनों को तो कटाओ, तभी तो यह बात उठेगी। इसके अलावा आगे बढ़ने का उपाय क्या है? तुम्हारा तो ब्राह्मण शरीर है। भाग्यक्रम से ही यह शरीर पाया है। प्राणपण से चेष्टा करो कि इस बार इसी शरीर से ही आत्मज्ञान का उदय हो।"

इसके बाद अन्य भक्तों की ओर देखकर प्रशांत—मधुर कण्ठ से उन्होंने कहना आरम्भ किया, "मात्र ध्यान भजन से ही कार्य नहीं होता। इसके साथ ही कृच्छ्र एवं त्याग-वैराग्य की आवश्यकता है। जिसका आहार-विहार में संयम नहीं है, उसके जीवन में ज्ञान का उदय किस तरह होगा?"

कलकत्ते के एक भक्त कई दिनों से आश्रम में आये हुए हैं। आश्रम का भोजन-कुछेक रोटियाँ तथा एक सब्जी तो किसी तरह गले के नीचे उतर जा रही है, परन्तु चाय की कोई व्यवस्था नहीं है, इसलिए बड़ी मुश्किल में पड़ गये हैं। एक छोकरा आश्रम के पास ही रहता है। उसने इन नवागत भक्त को प्रस्ताव दिया कि वह चाय बना कर पिला देगा। कई दिनों से यही व्यवस्था चल रही है।

एक दिन इन भक्त की ओर देखते हुए बाबा ने कहा, "देखो, तुम इस

छोकरे के हाथ की चाय अब नहीं लेना। कारण, इसने धर्म को व्यवसाय बना लिया है। दर्शनार्थियों को मेरे पास आने से पहले वह उन्हें फूलों की माला पकड़ा देता है तथा उसकी कीमत लेता है। ऐसे हीन बुद्धि लोगों के द्वारा स्पर्श की हुई चाय पीना उचित नहीं है। उसके धर्म का भाव तुम्हारे मन को भी संक्रमित कर सकता है।"

एक और भक्त की ओर देखते हुए बाबा ने कहा, "तुम आश्रम में निवास की अवधि में बाहर इतना घूमना-फिरना क्यों करते हो? आज सागर स्नान को जाते हो तो कल मंदिर को, उसके बाद बाजार हरिण का चर्म खरीदने। ऐसी बहिर्मुखीनता तो अच्छी बात नहीं है। एकनिष्ठ होकर कार्य किया करो। आश्रम में आने पर मात्र स्वाध्याय और ज्ञानविचार की बात सोचनी चाहिये। तभी तो बन्धन मुक्ति के पथ पर अग्रसर हो सकोगे।"

अध्यात्म जीवन की ओर मार्ग निर्देशन के लिए बाबा सभी की दृष्टि उपनिषत् तत्व तथा वेदान्त विचार के प्रति आकर्षित करते। किन्तु आत्मीयता तथा अंतरंगता के स्पर्श से साहसी होकर आज भक्त गण छोटे-बड़े, नाना प्रश्नों की झड़ी लगाए हुए हैं।

एक जिज्ञासु भक्त ने कहा, "अच्छा बाबा, आपने भी तो वेदान्त विचार ग्रहण करने से पूर्व दीर्घ काल तक योग साधमा की थी?

"जरूर किया। मैंने तो हर किस्म की साधना की। हठ योग, राज योग, वेदान्त विचार—सभी कुछ।"

इसके बाद उक्त भक्त के कौतूहल के निवारण हेतु वे कहने लगे,—'मैंने सभी साधनों को कर के देखा है तथा वह सभी कर लेने के बाद आज तुम लोगों से कह रहा हूँ—कि इस युग के साधारण मनुष्य के लिए वेदान्त विचार का मार्ग ही अधिक उपयोगी है। योग साधना के लिए दृढ़ शरीर तथा कष्ट सहिष्णुता की आवश्यकता है। इसके अलावा योगसिद्ध गुरु, अच्छा वासस्थान तथा अच्छा आहार अनिवार्य है। पचास वर्षों की आयु के बाद योगाभ्यास शुरू करना तो किसी तरह संभव नहीं है। इसी कारण

वेदान्त ही आज के युग में सबसे सरल साधन पथ है। फिर भी यह स्मरण रखो, असल वेदान्त साधना होती है आरण्यक जीवन की साधना। सर्व-त्यागी और महावैराग्यवान साधना में दृढ़चित्त एवं निष्ठावान जो साधक वेदान्त के मार्ग पर अग्रसर होते हैं उन्हें न्याय तथा सांख्य अच्छी तरह पढ़ लेना उचित है। ऐसा नहीं करने से वेदान्त शास्त्र की सूक्ष्म विचार धारा को हृदयगंम कर लेना कठिन हो जाता है।"

एक शुद्धचारी तथा स्वाध्यायी भक्त ने हाथ जोड़ कर निवेदन किया, "बाबा, अद्वैत वेदान्त की सारी बातें तो शंकर ही कह गये हैं, क्या यह सत्य है ?"

"ऐसी क्या बात है ? अद्वैत वेदान्त की सारी बातें क्या कोई कह सकता है ? 'माया अनिर्वचनीया'—फिर शेष कथा क्या संभव हो सकेगी ? और शंकर की बात जब तुमने उठा ही दी तो मैं कहूँगा—यह मैं पहले भी कह चुका हूँ—शंकर उतनी ही देर तक शंकर हैं जब तक उनके भाष्यों का श्रुतियों के साथ मतैक्य है। शंकर की बात उठाने पर इस बात को भी स्मरण रखना होगा कि योग-समाधि को उन्होंने 'मूर्छा' कहकर भूल की है।"

बहुत सी बातें सुनते-सुनते भक्तों में काना फूसी आरम्भ हुई। नंगा बाबा ने मुस्कराते हुए कहा, 'हाँ यह बात माननी ही पड़ेगी—शंकर को उच्चतम योग समाधि की अभिज्ञता नहीं थी। फिर भी अद्वैत वेदान्त के वे श्रेष्ठ आचार्य एवं प्रवक्ता थे इसमें किसे संदेह हो सकता ?"

आश्रम से सम्बन्धित एक भक्त नाना सांसारिक विपत्तियों में पड़े हुए हैं। इस सम्बन्ध में बाबा की दृष्टि आकर्षित करते हुए एक भक्त ने प्रश्न किया, "बाबा, ये तो साधना के माध्यम से काफी ऊँचे स्तर पर पहुँच चुके हैं, फिर इनके भाग्य में ऐसी विडम्बना क्यों ?"

नंगा बाबा ने उत्तर दिया, "साधना के मार्ग में समय-समय पर दैव का आघात आता रहता है। इसे सुरविघ्न की संज्ञा दी जाती है। कोई-कोई देवता गण साधक के मुक्ति के प्रयास को अंततः पसन्द नहीं

करते। शास्त्र कहते हैं, मानव देवताओं का 'पशु'—सेवक विशेष होता है। मानव द्वारा अनुष्ठित सेवा, पूजा, उत्सर्ग इत्यादि पर उनका प्रचुर आकर्षण है। जब वे देखते हैं कि वही मानव साधना के माध्यम से मुक्त होता जा रहा है—अर्थात् सेवक उच्चतर लोक की ओर चला जा रहा है, तब वे बाधा देते हैं। ऐसे समय में स्त्री-पुत्रों पर आघात आता है तथा आर्थिक अथवा वैषयिक नाना संकट आते हैं। इस विघ्न को भी जो मानव झेल कर आगे बढ़ जाते हैं उस पर देवता प्रसन्न हो जाते हैं और आगे बढ़ कर उसकी सहायता करते हैं।"

मठ, मंदिर तथा देव मूर्ति के प्रति वैषयिक लोग तथा आर्त भक्त-गण जो भावोच्छ्वास दिखाते तथा बहिरंग भक्ति की जो मादकता तथा फेनिल उच्छलता उनके अन्दर दिखलाई पड़ती उसे नंगा बाबा बिलकुल ही पसन्द नहीं करते थे। वे कहा करते, "चित्त का विक्षेप और मल दूर होने के बाद जो दर्शन होता है, वही है असली दर्शन।"

इसी नकल और असल दर्शन के प्रसंग में भक्तप्रवर कुमुद बंधु सेन के साथ एक बार मनोरंजक वार्ता हुई थी।

कुमुद बाबू ने कहा, "बाबा, आप तो जगन्नाथ देव के दर्शन करने जाते नहीं हैं तथा कभी भी आपको श्री मंदिर में देखा भी नहीं! उन्होंने कहा—हृदय मंदिर में दर्शन ही तो दर्शन होता है। हाँ, एकबार एमार मठ में बैठ कर मैंने रथ देखा था। मैंने कहा,—आपने कैसा दर्शन किया? इस पर उन्होंने उत्तर दिया,--विशाल तमाशा देखा। क्या, पंडे, क्या सेवक गण, अथवा पुलिस, दुकानदार भी केवल यात्रियों को झूठ-सच बता कर पैसे वसूल कर रहे हैं तथा कहीं-कहीं जुल्म भी कर रहे हैं। तथा कीर्तनकारी दलों में भी संप्रदायगत ईर्ष्या एवं द्वेष दिख-लाई पड़ रहा है। कौन कितना उछल सकता है, नाच सकता है उसी को दिखा कर लोग की भक्ति आकर्षित करने की चेष्टा कर रहा है।

अनेक लोग पैरों में जूते पहन कर रथ खींच रहे हैं जिनमें पुलिस के कान्स्टेबिल तो निश्चित रूप से हैं। तुम क्या रोज मंदिर जाते हो ?"

मैंने कहा, "मैं दो-तीन बार जाता हूँ।"

— क्या दर्शन करते हो ?

— श्री विग्रह मूर्त्ति के दर्शन करता हूँ।

—वहाँ पर वकील, मोखतार, डाक्टर, रोगी ऐसे लोगों को क्या नहीं देखते हो ? ऐसे अनेक लोग वहाँ मतलब से जाते हैं। प्रसाद सस्ता है इसलिए अधिकतर वहीं प्रसाद ले लेते हैं।

भावोच्छ्वासमय भक्ति तथा रोना-धोना देखने पर नंगा बाबा कोई ध्यान नहीं देते थे, परन्तु किसी व्यक्ति के हृदय में सही माने में भक्ति का आभास होने पर उनके आनन्द की सीमा नहीं रहती। इस तरह के भक्ति सिद्ध महापुरुषों को वे उत्साह पूर्वक उचित मर्यादा देते। श्री युत सेन के उद्धरणों में उसका प्रमाण भी मिलता है।

—मैंने कहा, वासुदेव बाबा नाम के एक साधु मंदिर में हैं। उन्होंने कहा. अहा, ये एक महात्मा हैं। तुम देखना, वे कितनी तन्मयता से दर्शन करते हैं। वे यथार्थ जगन्नाथ का दर्शन तथा चाव से सेवा करते हैं। इस तरह के दो-चार साधु यदा-कदा ही आते हैं। मैंने कहा—महाप्रभु श्री चैतन्य देव जगन्नाथ दर्शन करते समय वाह्य-संज्ञा शून्य हो जाते थे। जगन्नाथ शब्द का उच्चारण करते समय मात्र ज-ज-ज-जग तक ही कह पाते थे। नंगा बाबा ने हँस कर कहा,—महाप्रभु को तुम क्या समझोगे ? हाथी के बाहर के दांत देख कर तुम क्या समझोगे ? वे श्री विग्रह के दर्शन करते हुए अन्तर में ब्रह्मदर्शन करते थे। ब्रह्म ही सब कुछ हैं। ये सब ऊँची बातें हैं।

इसी प्रसंग में नंगा बाबा ने फिर कहना आरम्भ किया—भगवान, मंदिर इत्यादि, इन सब वस्तुओं को लेकर मिथ्या व्यवसाय करना मैं अत्यन्त हेय कार्य समझता हूँ। जो लोग इन सब कार्यों में लगे रहते हैं, उनका उद्धार होना मैं अत्यन्त कठिन समझता हूँ।

आत्मज्ञानियों के प्रसंग में एक दिन नंगा बाबा ने कहा, "आत्मज्ञान के उदय होने से देह टूट जाता है।

एक व्यक्ति ने तुरत प्रश्न कर डाला, "फिर बाबा, आप इस शरीर में क्योंकर विद्यमान है ? आपका तो देहपात हुआ नहीं ?"

नंगा बाबा का चेहरा एक अपूर्व दिव्य भाव से उद्दीप्त हो उठा। गंभीर स्वर में उन्होंने उत्तर दिया, "तुम बालक हो, इस रहस्य को कैसे समझ पाओगे ? फिर भी, यह बात समझ लो, ईश्वर स्वयं आकर हाथ जोड़ कर प्रार्थना करते हैं, इसी के फलस्वरुप पूर्ण आत्मज्ञानी साधक को अपने शरीर की रक्षा करनी पड़ती है। इसी शरीर के माध्यम से ईश्वर के अनेक कार्य सम्पन्न होते हैं। आत्मज्ञान की दीपशिखा एक साधक के शरीर से अन्यान्य साधकों के शरीर में संचालित होती है। इसी तरह साधना एवं सिद्धि की पवित्र परम्परा की रक्षा होती है।"

एक सरल हृदय भक्त प्रतिदिन बाबा के पास आकर शास्त्र पाठ श्रवण करते थे। सहज भाव से वे इस समय सुयोग पाकर अपने मन की बात बाबा से कह उठे। उन्होंने प्रश्न किया, "अच्छा बाबा, योगियों की अनेक अलौकिक योगविभूतियों की कथा हम लोग साधु-महात्मा तथा उनके शिष्यों से सुनते रहते हैं। आत्म ज्ञानीगण क्या उन सभी शक्तियों के अधिकारी हैं ? अथवा, वे लोग मात्र ज्ञानसुधा का पान करते हुए दिनरात मस्त होकर पड़े रहते हैं ? प्रकृतिवशीत्व का अधिकार क्या आत्मज्ञानी गण उपलब्ध कर लेते हैं ?"

नंगा बाबा ने हँसते हुए उत्तर दिया, "तुम क्या वेवकूफ के माफिक बात करते हो ? आत्मज्ञानी की इच्छा मात्र होने से सृष्टि उलट सकती है तथा लय-प्रलय हो सकता है।"

"परन्तु बाबा, वेदान्त के भाष्य में आचार्य शंकर तो स्वयं कह गये हैं,—जगत् व्यापार वर्जं :—प्रकृति के ऊपर तथा सृष्टि के ऊपर आत्मज्ञानी का कोई कर्तृत्व नहीं है। फिर ?"

"शंकर के बोलने से ही घबड़ाओ मत। देखो—श्रुति के साथ मेल है

कि नहीं ? श्रुति की बात याद रखना—ब्रम्ह्मविद् ब्रह्मैव भवति। जब ब्रह्म बन जाय, तब ब्रह्माविद् को किसी प्रकार की कमी क्यों रहेगी ?"

कुछ दिन बाद की बात। आश्रम की दिनचर्या के अनुसार दैनिक शास्त्रपाठ चल रहा है। प्रसंगवश योगशास्त्र एवं योग विभूति की चर्चा चल पड़ी, तथा नंगा बाबा ने इस सम्बन्ध में अनेक अलौकिक विवरण दिए।

एक पुराने उड़िया भक्त यदा-कदा आश्रम में आकर वास करते हैं तथा बाबा के सत्संग तथा उपदेश लाभ के पश्चात् अपने घर वापस चले जाते हैं। योगविभूति तथा सिद्धाई के प्रति उनका प्रबल आकर्षण है। मन ही मन सोचते हैं कि बाबा तो योग एवं वेदान्त दोनों में ही पारंगत हैं, फिर भी उनसे किसी तरह योगविभूतियों को अर्जन करना संभव नहीं हो पा रहा है ?

श्री हेरम्ब नाथ मुखोपाध्याय कलकत्ता से आकर कूछ दिनों से आश्रम में निवास कर रहे हैं। बाबा उनको बहुत स्नेह करते हैं। उड़िया भक्त ने यही निश्चय किया कि श्री मुखोपाध्याय महाशय के ही माध्यम-से वे बाबा से इस विषय में अनुरोध कराएंगे। इसी दृष्टिकोण से उन्होने कहा, "आप बाबा से सिफारिश कर दें कि वे हम लोगों को स्वरोदय योग की शिक्षा प्रदान करें। इसे सीख लेने पर नाना जागतिक तथ्य अनायास ही जाने जा सकते हैं। कौन व्यक्ति कहाँ है, क्या कर रहा है, क्या सोच रहा है, कोई भी बात जान लेना सम्भव हो जाता है। इन सब बातों को सीख लेने से हम लोगों का लाभ है। थोड़ी शक्ति इत्यादि का अर्जन कर लेने पर साधन पथ में साहस बढ़ जाता है तथा मन में उद्दीपना होती है। एक बार आप बाबा को पकड़िये तो ?"

उड़िया भक्त के अनन्य अनुरोध पर श्री मुखोपाध्याय राजी हो गये। आवेदन करने के साथ-साथ ही नंगा बाबा ने उत्साहपूर्वक जो कुछ कहा, उसका सारांश निम्नलिखित है :

—यह कौन सी कठिन बात है। अभी इस आलमारी से स्वरोदय

योग का ग्रन्थ निकाल लाओ. कुछेक दिनों के भीतर ही मैं तुम लोगों को सारे गुह्य रहस्य सिखा देता हूँ। मात्र स्वरोदय योग ही क्यों, तुम लोगों को परकाया प्रवेश भी सिखा दूँगा। ये सब बातें तो मैंने समझी, फिर भी यह प्रश्न रह जाता है—इन सबके माध्यम से क्या आत्मज्ञान लाभ होगा ? स्पष्ट रूप से बतला देना चाहता हूँ कि वह नहीं हो पायगा, वरन् आत्म ज्ञान साधना के मार्ग में ये सब बाधा स्वरूप हो जायेंगे। मैंने किसी समय ये सब सीखा था—उसके बाद सब भूल जाना चाह रहा हूँ।"

श्री मुखोपाध्याय तुरत बोल उठे, "नहीं बाबा, यदि ऐसा है तो इन सारी वस्तुओं का हम लोगों को कोई प्रयोजन नहीं है।"

भक्तों के कल्याण के लिए बाबा की दृष्टि सर्वदा सजग एवं सतर्क रहती थी। अनेक बार इस संदर्भ में उन्हें कठोर होते भी देखा जाता था।

पुराने राजनैतिक नेता श्रीरामनन्दन मिश्र बाबा के अत्यन्त स्नेह-भाजन हैं। इन दिनों वे आश्रम में ही निवास कर रहे हैं। उनके एक परिचित, बाबा के भक्त आशीर्वाद लाभ हेतु प्रायः ही आश्रम में आते-जाते रहते हैं। ये व्यक्ति शिक्षित हैं तथा समाज में इनकी काफी प्रतिष्ठा है। किसी समय में काफी धनी-मानी व्यक्ति थे। आजकल आर्थिक दृष्टि से बड़ी दुर्दशा में हैं, तथा बीच-बीच में नंगा बाबा का दर्शन करने आ जाते हैं। किन्तु बाबा के समक्ष भय तथा संकोच के कारण अपने दुख तथा दुर्दशा की बात नहीं कर पाते हैं। सुयोग पाकर वे मिश्र जी के समक्ष उपस्थित हुए तथा अपने अभाव तथा दुःख की बात उनसे कही। बाबा इतना स्नेह करते हैं फिर भी इस ओर दृष्टिपात भी नहीं करते—ऐसा क्षोभ भरा वाक्य भी कभी-कभी उनके मुँह से निकल पड़ता है।

भक्त के मानसिक कष्ट तथा आर्थिक दुरवस्था को देख कर मिश्र जी का हृदय विगलित हो उठा। अंततः एक दिन बाबा को उन्होंने पकड़ लिया तथा आवेदनात्मक स्वर में कहा : "बाबा, आपका यह भक्त इतने दुःख तथा दुर्दशा में है, क्या इसके लिए कोई उपाय नहीं हो सकेगा ? मात्र आपकी

दृष्टि से ही तो उसकी सामाजिक मर्यादा तथा आर्थिक समस्या का समाधान हो जायगा।"

नंगा बाबा की गंभीर मुद्रा और भी गंभीर हो उठी। मिश्र जी से उन्होंने कहा, "वह तुम्हारा दोस्त है, और उसका कल्याण तुम चाहते हो—ठीक है कि नहीं ?"

"हाँ बाबा, बिलकुल ही यही बात है।"

"तब तुम मेरी बात सुन लो। उसके पाकेट में पैसा आने से वह विषय के गड्ढे में गिर जायगा। बलात्कार करके उसको अभाव में रखा जाय, तब उसका कल्याण होय।"

महाज्ञानी महापुरुष के कल्याण की धारणा तथा साधारण मनुष्य की धारणा में क्या अन्तर है, यह बात स्पष्ट हो गयी।

किसी के साधन जीवन में उन्नति अथवा आत्मिक कल्याण के लिए चरमतम अप्रिय सत्य कहने में भी बाबा को जरा भी हिचक नहीं होती थी। शक्तिमान तथा प्रतिष्ठावान साधकों को भी प्रयोजन होने पर अनायास ही चैतन्य उत्पादन कारी प्रचंड आघात देने में वे कभी नहीं चूकते थे।

भारत विख्यात एक तांत्रिक संन्यासी नंगा बाबा से काफी दिनो से परिचित हैं। बाबा के सम्पर्क में आकर, प्रधानतः उन्हीं के द्वारा उत्साहित होने पर इन साधक ने संन्यास व्रत ग्रहण किया था, यह बात वे प्रायः कहा करते थे तथा बाबा के प्रति अंतरंग गंभीर कृतज्ञता का भी प्रकाश करते थे।

इन्हीं संन्यासी ने आगे चलकर एक शास्त्र ग्रन्थ की रचना की। एक दिन नंगा बाबा के एक भक्त के पास इस ग्रन्थ के विषय में सन्यासी ने कहा, बाबा को मैं अपार श्रद्धा करता हूँ। हिमालय के नीचे ऐसे उच्च कोटि के महात्मा का मिलना दुर्लभ है। उन्हें मेरा यह श्रद्धार्घ्य अर्पित कीजिएगा, तथा अनुरोध कीजिएगा कि अवकाश होने पर वे मेरे इस ग्रन्थ के सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट करें।"

भक्त ने गिर्नारी बन्ता आश्रम में आकर सुयोग पाकर बाबा के आसन के पास इस पुस्तक को रखा तथा तंत्राचार्य के सविनय निवेदन से उन्हें अवगत कराया।

दो पृष्ठों को पढ़ कर सुनने के बाद बाबा ने भक्त को रोक दिया। शांत स्वर में उन्होंने कहा, इस किताब के लेखक को बोल देओ—किताब लिखना छोड़कर वह आत्मचिंतन में ध्यान दे। उससे ही असली कल्याण आ जायगा।"

उस दिन बुद्ध पूर्णिमा थी। भक्त और दर्शनार्थीगण बाबा के कक्ष में बैठ कर बुद्ध के विषय में चर्चा कर रहे हैं, तथा उनके त्याग, तितिक्षा एवं साधनैश्वर्य की बात कर रहे हैं।

एक अभ्यागत ने प्रश्न किया, "बाबा, बुद्ध तो अवतार ही थे। उनकी संबोधि प्राप्ति की कथा सुनकर ऐसा भान होता है कि पराज्ञान का उन्होंने अवश्य लाभ किया था—तथा परात्रह म में प्रविष्ट हो गये थे। इसमें तो कोई संदेह नहीं है। इस विषय पर आप क्या कहते हैं?"

थोड़ी देर मौन रह कर नंगा बाबा ने उत्तर दिया, "देखो तुम लोगों ने अवतार को बहुत सहजलभ्य तथा सस्ता कर डाला है। अवतार के आने पर युग परिवर्त्तन हो जाता है, जैसा कि राम और कृष्ण के काल में हुआ था। आज कल तो प्रत्येक मुहल्ले में अवतार आविर्भाव है। अरे, असल में तुम भी एक अवतार ही हो—हमारी सृष्टि में जितने भी जीव हैं, प्रत्येक ब्रह्म के ही अवतार हैं।

"किन्तु बाबा, बुद्ध की बात अलग है। पराज्ञान का उदय उनके अंदर हुआ था। इस युग के बहुत लोग उन्हें अवतार ही कहते हैं।

"सभी समझा परन्तु बुद्ध का गुरु कौन है? सद्गुरु की सहायता तथा ईश्वरीय शक्ति का प्रयोग छोड़कर परम प्राप्ति अथवा पूर्ण ब्रह्मज्ञान तो कभी सम्भव नहीं होता।"—सीधी सरल भाषा में बाबा ने इतनी बात कह डाली।

गुरुकरण तथा ब्रह्मविद सद्गुरु के करुण अवदान के विषय में सनातन पंथी साधकों का आदर्श नंगा बाबा पूर्ण रूप से स्वीकार करते थे। उन्हें प्रायः ही यह कहते सुना जाता कि सद्गुरु जहाँ शरीर उपस्थित नहीं हैं वहाँ साधक के लिए देह की साधना में सिद्ध होना अथवा ज्ञान के उच्चतम सोपान पर आरोहण करना सम्भव नहीं है।

अनेक की धारणा थी कि नंगा बाबा भक्तिवाद के विरोधी थे, किन्तु यह बात सत्य नहीं थी। वस्तुतः वे अटूट निष्ठा एवं शरणागति को बराबर ही महत्व देते थे। फिर शून्य गर्भ भक्ति तथा भावुकता के फेनिल उच्छ्वास को वे सहन नहीं कर पाते थे। बाबा की स्वतः स्फूर्त आलोचनाओं से कभी-कभी भक्ति मार्ग के सम्बन्ध में उनके मतामत पर प्रकाश पड़ जाता था।

जन्माष्टमी का दिन था। स्वभावतः भक्त रामनन्दन मिश्र मन ही मन परम प्रभु श्रीकृष्ण की लीला-कथाओं का स्मरण कर रहे थे। बाबा के सामने ही बैठे हुये थे। मिश्र जी के अन्तर की भावना को समझने में अन्तर्यामी महापुरुष को समय नहीं लगा। प्रसन्न मन वे स्वयं ही कहने लगे।

"देखो बाहर से लोग समझते हैं कि भक्ति को मैं प्रधानता नहीं देता तथा मैं कृष्ण का विरोधी हूँ। किन्तु वह बिलकुल ही असत्य है। श्री कृष्ण भगवान के अवतार हैं, इसमें संदेह क्या? जो प्रेम भक्ति पाना चाहता है, उसे कृष्ण के प्रति इष्ट भावना रखनी ही होगी। कृष्ण भजन तथा आत्म-समर्पण के माध्यम से ही कृष्ण को एवं परा भक्ति को पा सकेंगे। ब्रह्मज्ञान यदि उनके भाग्य में होगा तो कृष्ण ही इस परम प्राप्ति के लिए उनकी सहायता करेंगे।"

थोड़ी देर नीरव रहने के बाद नंगा बाबा ने फिर कहा; "एक बात अच्छी तरह स्मरण रखना। कृष्ण ने गोपियों के साथ रासोत्सव किया था। इस सन्दर्भ में भागवत में एक जगह ध्रुवपद से च्युति की बात कही गयी है। इसके बाद ही अन्य नूतन राग एवं तालों का

आरम्भ हुआ। यह सोचने की बात है कि उस जगह ब्रह्म धारण का इंगित है या नहीं? वहाँ देखा जाता है रस की प्रगाढ़ता के फलस्वरूप इष्ट के साथ चित्त की एकात्मता के कारण ताल भंग होता जा रहा है। वैष्णवों के भजन तथा कीर्तन में क्या देख पाते हो? सभी बहिरंग सुर तथा ताल को पकड़े हुये हैं। अगर ऐसा ही होता है तब इष्ट के साथ-साथ वास्तविक तादात्म्य भाव होगा किस तरह? प्रकृत रूप में जहाँ भागवत में कथित ध्रुवपद भंग की बात कही गयी है, वही से आत्मज्ञान का प्रारम्भ होता है।"

एक सुप्रसिद्ध साधु पुरी धाम में आये हुए हैं। अनेक मठ मन्दिर उनके अधीन है। जैसा विस्तृत उनका संगठन है वैसी ही उनकी प्रचुर प्रतिष्ठा तथा प्रतिपत्ति है। नंगा बाबा का नाम पहले से ही उन्हें ज्ञात है। एक-दिन साधु अपने कुछ एक भक्तों के साथ, बाबा के दर्शन के हेतु आये। आश्रम की रेती के समीप आते-आते ही एक विचित्र घटना घट गयी।

बाबा के आश्रम में सुदाम नाम का अल्प वयस्क भृत्य रहता था। उसका नित्य का खेल था—बालू के टीलों में से खोज-खोज कर साँप बाहर करना। साँप के एक बार बाहर हो जाने पर उसके बच निकलने का कोई उपाय नहीं था। एक बाहर हो जाने पर सुदाम इसे लाठी के प्रहार से मार डालता था, उसके बाद रेत के टीले की ढ़लान पर लम्बा करके उसे बिछा कर रखता था। नवागत दर्शनार्थीगण के इस मृत साँप को जीवित समझ कर आतंकित हो उठने पर वह खिलखिला कर हंस पड़ता तथा आनंद पूर्वक ताली बजाने लगता।

भक्तों के एक दल के साथ पूर्वोक्त साधु महाशय आश्रम की सीढ़ी से ऊपर जा रहे हैं। इसी समय एक व्यक्ति 'साँप,—साँप' कहकर चिल्ला उठा। भय ग्रस्त साधु अनायास चिल्ला उठे—'तुम लोग कोई आगे मत बढ़ो। देखो, सामने विराट विषधर सर्प पड़ा है। दल के लोगों में भाग-दौड़ मच गयी तथा भय से खुसुर पुसुर होने लगी।

क्षण भर बाद ही बालक भृत्य सुदाम के अट्टहास एवं ताली से सभी लोग समझ सके कि साँप मृत है। राहत की साँस लेकर सभी ने अब हास-परिहास आरंभ किया।

बालुकापर्वत की शीर्ष पर बैठे नंगा बाबा यह कौतुक भरा दृश्य देख रहे हैं। उनके चेहरे पर मुस्किराहट फैल गयी है। आगन्तुक साधु का बल बाबा के दर्शन तथा कथावार्ता शेष करने के बाद आश्रम से रवाना हो गया। भक्त गण के बीच बातचीत फिर आरंभ हुई।

एक कौतूहली भक्त ने नंगा बाबा से कहा, "बाबा, बुरा न मानेंगे। इन साधु के विषय में ही जिज्ञासा कर रहा हूँ। उनके अनेक अत्युत्साही भक्त हैं। जिनकी धारणा है कि वे पूर्णब्रह्म नारायण हैं। उनके शरीर में पूर्णब्रह्म का प्रकाश जिस तरह धारित हुआ है, ऐसा किसी और मानव शरीर में नहीं देखा जाता। आपका इस विषय में क्या विचार है?"

बाबा ने मुस्किराकर कहा, "थोड़ा विचार तो करो—मुर्दा सांप को देखकर वह पूर्णब्रह्म कैसे माया-विभ्रम में पड़ गया था, और किस ढंग से दौड़ता था।"

इस प्रकार के कठोर सत्य भाषण, भक्त तथा शिष्यगण के ज्ञान-चक्षु उन्मीलन में सहायता करते, इसमें संदेह नहीं।

संध्या की आरती कुछ देर पहले ही शेष हुई है। कक्ष के तरल अन्धकार में भक्त एवं सेवकगण नंगा बाबा को घेर नीरव बैठे हुए हैं। सभी प्रतीक्षारत हैं—संभव है इस समय की उन्मुक्त अवस्था में बाबा के श्री मुख से दो-चार अध्यात्म की बातें सुनी जा सकें।

प्रसंगवश सृष्टि के रहस्य की बात चल पड़ी। बाबा ने कहा, "इस सृष्टि का रहस्य बड़ा दुर्ज्ञेय है। जिन सभी उच्चकोटि के साधकों को पंच भूतात्मक ज्ञान हुआ है, मात्र वे ही रहस्य का आभास भेद कर पाते हैं।

भक्त प्रवर हेरम्बनाथ मुखोपाध्याय उस समय पास ही बैठे हुए हैं। उन्होंने सविनय निवेदन किया, 'बाबा ये बात पहले भी आपके मुख से

दो-एक बार मैंने सुनी हैं। परन्तु बाबा, कोई-कोई विश्वविख्यात पंडित गण आपकी इस बात को मानने को राजी नहीं हैं।"

क्यों नहीं ?"

बाबा, कुछ दिन पूर्व कलकत्ता में एक महात्मा के आश्रम में बैठा उनका उपदेश सुन रहा था। नाना प्रसंगों पर कथा वार्ता हो रही थी। उस समय वहाँ वर्तमान विश्व के एक श्रेष्ठ विज्ञानविद आचार्य बैठे हुए थे। आप द्वारा कथित पंचाभूतात्मक ज्ञान के सम्बन्ध में मैंने उनसे कहा. उन्होंने बाबा, अविश्वास की हंसी में इस बात को उड़ा दिया।"

महापुरुष के नयनद्वय प्रदीप्त हो उठे। रोष भरे स्वर में उन्होंने कहा "उनकी बात छोड़ दो। वह क्या समझेगा? पंचभूत का थोड़ा भी ज्ञान नहीं हुआ उसको"

कलकत्ता वापस आकर श्री मुखोपाध्याय ने बातचीत के प्रसंग में ही एक दिन इन प्रवीण वैज्ञानिक को सहज भाव से नंगा बाबा ने उनके सम्बन्ध में क्या कहा था इसकी चर्चा की। विश्वविख्यात पंडित एकदम अवाक हो गये और देर तक उनके मुख से कोई बात ही नहीं निकली। स्तम्भित होकर वे बैठे ही रह गये।

आदि अन्त हीन सृष्टि-पारावार के तट—प्रदेश से मात्र दो एक उपल खण्डों का उन्होंने संग्रह किया है। सृष्टि के रहस्य को भेद करना तो दूर की बात। आत्मसमीक्षा करके विज्ञानविद् चुपचाप इसी बात का चिंतन कर रहे थे।

कठोर वेदान्ती के रुक्ष बहिरङ्ग जीवन के अन्तस्तल में सर्वदा जगत् कल्याण की फल्गुधारा प्रवहमान रहती। दर्शनार्थी एवं भक्तों के आधार के अनुसार बीच-बीच में इस धारा का प्रकाश दिखलाई पड़ जाता।

मिसेज रोजेन वर्ग नामक एक फ्रांसीसी महिला भारतीय तत्त्व एवं भारतीय साधना का परिचय लाभ करने के लिए इस देश में आयीं। कलकत्ता में निवास करते समय एक ब्रह्म विद् महात्मा का स्नेह सानिध्य उन्हें प्राप्त

हुआ। महात्मा ने एक दिन उनसे कहा, तुम पुरी धाम जाकर नंगा बाबा का एक बार दर्शन कर आओ। ऐसे आत्मज्ञानी महासाधक संसार में बहुत ही कम मिल पाते है।"

"सुना है कि वे बड़े गंभीर एवं शुष्क प्रकृति के है। उनके पास जाकर क्या मैं ठहर पाऊंगी?"—रोजेनवर्ग ने सविनय निवेदन किया।

"निश्चय ही कर सकोगी। यहाँ से जा रही हो, तुम देखोगी कि तुमसे बहुत स्नेह पूर्ण व्यवहार करेंगे।"

सचमुच ऐसा ही हुआ। फ्रांसीसी महिला के आश्रम पहुँचते ही बाबा ने उनके प्रति विस्मयजनक स्नेह का प्रदर्शन किया। बाहर के किसी होटल में नहीं ठहर कर, इस अति साधारण आश्रम की एक कोठरी में इन विदेशी महिला ने निवास किया। बाबा के अन्तरंग सान्निध्य तथा उपदेश श्रवण से उनका अन्तर आनन्द रस से पूर्ण हो उठा।

इन दिनों की एक-एक घटना की बात मिसेज रोजन वर्ग ने लेखक को बतायी थी।

पुरी के जन जीवन में उस समय काफी चांचल्यकर वातावरण हो गया था। गांधीजी के अन्यतम शिष्य तथा देश के एक अग्रणी समाज सेवी नेता; इन दिनों शहर में आये हुए थे। जातीय जीवन के पुनरुत्थान के संदर्भ में उन्होंने कुछ दिनों से अनेक वक्तृताएं दी थीं। एक दिन उन्होंने 'समाधि' के विषय में वक्तृता दे डाली। कौतूहली मिसेज रोजेनवर्ग सभा में जाकर वह भाषण सुन आई।

वापस आकर यह विदेशिनी भक्त वे कहाँ गई थी; किसका भाषण सुन आई तथा उसका विषय क्या था; इसकी पूरी जानकारी बाबा को देने लगी।

थोड़ी देर चुपचाप सुनते रहने के बाद बाबा ने दृढ़ स्वर में कहा, "बेकार तुमने इतना समय नष्ट किया। समाधि कौन चीज है, उसको कुछ मालूम नहीं। तब कैसे तुमको वह बतला सकेगा? जो साधक

समाधि में प्रविष्ट हो चुका है, वह कभी बाजार में और सभा में खड़ा हो कर चिल्ला सकता है ?"

अपनी अंतरंग गोष्ठी में नंगा बाबा की साधना तथा सिद्धि की ख्याति सुनकर कलकत्ता विश्वविद्यालय के दर्शन विभाग के रीडर डाक्टर अनिल राय चौधरी आश्रम में आकर उपस्थित हुए। अध्यापक राय चौधरी दीर्घ काल तक अध्ययन और अध्यापन में हीं व्यस्त रहे हैं और विवाह के बन्धन में बधने का उन्हें अवकाश ही नहीं मिल सका है। दर्शन शास्त्र एवं साधना के विषय में नाना जटिल प्रश्न उनके जीवन में वार-वार उठते रहे हैं। अब तक उनका कोई समाधान भी नहीं मिल पाया है। अबकी बार उन्होंने मन ही मन सोचा है, कि कुछ दिनों तक बाबा के सान्निध्य में रहकर इन सारे प्रश्नों की मीमांसा करेंगे।

परन्तु बाबा के आश्रम में पहुँचने के साथ-साथ उनके अंतर में एक प्रबल भग्वोच्छ्वास का जागरण हो उठा। वे बाबा की प्रशांत गंभीर मूर्ति की ओर बार-बार देख रहे हैं और दोनों आँखों से अश्रुओं की झड़ी लग गयी है।

अंतर्यामी नंगा बाबा ने क्या समझा, यह वे ही जानें। स्नेहपूर्ण स्वर में, भावाकुल तथा कंपित देह अध्यापक राय चौधरी को उन्होंने निकट बुलाया। पास आकर बैठने पर उन्होंने उनके शरीर को अपनी भूजा से वेष्ठित कर लिया और सिर को अपनी विशाल जंघाओं पर नवा डाला। इसके साथ ही डा० राय चौधरी का सारे अंतर को आलोड़ित करता हुआ रुदन एवं विलाप आरम्भ हुआ। क्यों ऐसा रुदन एवं विलाप हो रहा है; इसे समझने की शक्ति उनमें नहीं रह गयी है। केवल जोर-जोर से रो रहे हैं तथा विलाप कर रहे हैं और नंगा बाबा की जाँघ आसुओं से भींगती चली जा रही है।

अध्यापक राय चौधरी के थोड़ा स्वस्थ होने पर बाबा ने जो कहा उसका सारांश :

क्यों इस तरह मात्र असहायों जैसे रो रहे हो ? ईश्वर ने तो

तुम्हारे ऊपर अनेक कृपाएँ की हैं। स्त्री, पुत्र एवं संसार के बन्धन में जकड़ कर तो तुम्हें उन्होंने बाँधा ही नहीं। सात्विक मन तथा वृत्ति भी प्रदान की है। तुम आश्रम में तुरत चले आओ। यहीं स्थायी रूप से जीवन की अंतिम दिन तक रुक जाओ और आत्मचिंतन में लीन हो जाओ।

डा० राय चौधरी ने उत्तर दिया, "बाबा, मैं एशियाटिक सोसायटी एवं कई और प्रतिष्ठानों के साथ इकरारनामों से बंधा हूँ। उनके लिए लिखना समाप्त किए बगैर कलकत्ता नहीं छोड़ पा रहा हूँ।"

"नहीं, नहीं। वह सभी अभी छोड़ कर तुम आश्रम में चले आओ। वरन् अब वापस नहीं जाओ, अभी से यहीं रुक जाओ। देखो जीवन बड़ा ही क्षणभंगुर है। आत्मचिंतन के कार्य में एक मुहूर्त भी गंवाना उचित नहीं है। तुम मेरे पास ही रुक जाओ, क्या कहते हो ?" बाबा, बार-बार उनसे कितना अनुरोध कर रहे हैं।

महापुरुष को बहुत समझा कर डा० राय चौधरी कलकत्ता वापस आ गये। इन्हीं दिनों एक लेखक के साथ उनका साक्षात्कार हुआ। बाबा की बात छिड़ते ही, बुद्धिवादी प्रवीण दर्शन शास्त्र के अध्यापक में अद्‌भुत रूपान्तर दृष्टिगोचर होता था। पता नहीं किस अजाने भावावेग से वे उद्वेलित हो उठते तथा दोनो नयनों से अश्रुओं की धारा फूट पड़ती।

कुछेक सप्ताहों के भीतर ही डा० राय चौधरी का उनके कलकत्ता स्थित वासस्थान में ही आकस्मिक रुप से निधन हो गया। कुछेक सन्यासी महात्माओं ने इस घटना को सुनने के बाद कहा, "राय चौधरी का प्राक्तन खंडित होने को ही है—नंगा बाबा यह समझ गये थे। वह यदि बाबा के आश्रम में रुक गये होते तो उनका आयुष्काल वर्धित हो जाता तथा आत्म-साक्षात्कार के मार्ग पर भी वे आगे बढ़ने में समर्थ हो जाते।"

एक दिन सभी शास्त्र पाठों के शेष हो जाने पर नाना आध्यात्मिक विषयों पर आलोचना प्रारंभ हो गयी है। भक्तों को देखकर बाबा ने कहा, "जिस मनुष्य ने आत्मज्ञान का अर्जन नहीं किया तथा प्रवृत्ति के

प्रताड़न स्वरूप असहाय होकर भटकता रहता है, वह मनुष्य तो पशुतुल्य है।"

कुछ भक्तों ने अपना मत प्रकट किया, "बाबा, हम लोग जैसे गृहस्थ लोग प्रवृत्ति मार्ग में ही अधिक समय तक पड़े रहते हैं। त्यागी साधुओं को छोड़ कर और कितने लोग आत्मज्ञान कर पाते हैं ?"

"यह बात सही नहीं है। गृहस्थों के भीतर सत्, त्यागी एवं आत्म-ज्ञानी लोग मैंने वहुत से देखे हैं। तुम यह मत सोचो कि साधु होने से ही कोई सच्चा तथा ज्ञानी हो जायगा। इसमें भी अनेक फालतू लोग होते हैं। हिमालय के बरफीले हृदय में भी यह गुप्त वासना है कि—अनायास स्वर्ण मणि (पारस) का संधान मिल जाय तो वह भाग्यवश स्वर्ण हो जाय। साथ ही कोई-कोई कन्द मूल के संधान में लगे हुए हैं—पेट की ज्वाला के लिए।

"इसीलिए तो बाबा, हमारे देश के एक श्रेष्ठ नेता, साधुओं को साधु कह कर भी स्वीकार नहीं करना चाहते। पिछले दिनों ही उन्होंने अपने भाषण में कहा था कि साधुगण अमर लता जैसे ही समाज के ऊपर पराश्रयी हैं।"

बात सुनते-सुनते ही बाबा की मुखमुद्रा परिवर्तित हो उठी। क्रुद्ध स्वर में वे कह उठे—"लेकिन असली साधु लोग तुम्हारे उस नेता को मात्र चींटे की तरह ही देखते हैं।"

यह राय प्रकट करने के बाद बाबा ने कहा.--अब पुराण की एक कहानी सुनों :

शास्त्रों में दधीचि नाम के स्वर्ग के एक ऋषि की कथा है। ये ऋषि जैसे त्यागी और तितिक्षावान थे वैसे ही तपस्वी थे तथा सभी उनका प्रचुर सम्मान करते थे। देवराज इन्द्र की सभा में सभी ऋषि दर्शन दे जाते थे, मात्र दधीचि ही एक अपवाद थे। इन्द्र इस बात को लक्ष्य करके दुःखित एवं रुष्ट हुए। फिर इन्द्र तो तुम्हः लोग जैसे बेवकूफ मनुष्यों के राजा नहीं हैं, देवराज हैं। सोच विचार के बाद उन्होंने यही

निश्चय किया कि दधीचि ऋषि के पास उनके स्वयं जाने की आवश्य-कता है।

एक दिन इन्द्र स्वयं तपोवन में गये और ऋषि को साष्टांग प्रणाम करने के बाद उन्होंने करबद्ध निवेदन किया, "ऋषिवर आप स्वयं हम लोगों के पास नहीं आते हैं, इसीलिए मैं आपका दर्शन करने के लिए उपस्थित हुआ हूँ। पहले एक प्रश्न निवेदित करना चाहता हूँ—"मेरे विषय में आपकी क्या धारणा है? आप मुझे कैसा समझते हैं।"

"कुत्ते के जैसा"—ऋषि दधीचि ने निर्विकार चित्त से कहा।

देवराज इन्द्र चौंक गये, यह क्या! यह आप क्या कह रहे हैं ऋषिवर?"

मैंने देखा कि लौहफलक युक्त दण्ड हाथों में लेकर कोई-कोई साधु घूम फिर रहे हैं तथा पैरों के नीचे इस लौहफलक से ठोक भी रहे हैं।

दधीचि ने सीधी और स्पष्ट भाषा में कह दिया, "देवराज, मैंने ठीक ही कहा है। तुम राजत्व का भोग कर रहे हो तथा इन्द्रियों की चर्या तो कुत्तों का कार्य है। इसीलिए तुम्हारे और कुत्ते के आचरण में मुझे कोई पार्थक्य नहीं दिखलाई पड़ा।"

कहानी समाप्त करने पर नंगा बाबा महाराज ने प्रश्नकारी भक्त की न ओर देखकर मुस्किराते हुए कहा, बराबर ध्यान रखना—सच्चे और शक्तिमान साधु जो हैं इच्छा मात्र से ही सृष्टि में परम कल्याण अथवा ध्वंस ला सकते हैं।"

कलकत्ते के एक धनाढय घर के लड़के तथा तरुण बैरिस्टर अपने स्वभावगत दोष के कारण भयानक बीमारी से पीड़ित थे। चोटी के आधुनिक स्थानीय डाक्टरों की सारी चेष्टाएँ व्यर्थ हो जाने के बाद हताश होकर वे अपना समय व्यतीत कर रहे हैं। एक दिन अपने कुछेक बन्धुओं के मुख से नंगा बाबा महाराज के माहात्म्य की बात उन्होंने सुनी। प्राणों में आशा का संचार हुआ। उनके बन्धु नंगा बाबा के स्नेह भाजन तथा भक्त हैं। कुछ दिनों के अन्दर ही वे बाबा के पुरी स्थित

आश्रम में जायेंगे, ऐसा उन्होंने निश्चय किया। बैरिस्टर ने उनसे कहा, "आधुनिक चिकित्सा विज्ञान मुझे इस दुरारोग्य गुप्त रोग से कभी छुटकारा नहीं दिला सकेगा। इसीलिए बाबा की योगविभूति ही मेरा एकमात्र संवल है। मेरा आवेदन उनके समक्ष रखेंगे। वे अंतर्यामी हैं, और कोई भी चीज उनसे छिपी हुई नहीं है। वे अपनी कृपा दृष्टि से मुझे इस रोग के ग्रास से मुक्त करें ऐसा आवेदन करेंगे।"

आश्रम पहुँचने के दूसरे दिन ही भक्त ने सुयोग पाकर बाबा के पास इस बैरिस्टर की बातें रखी, तथा अपना आवेदन भी प्रस्तुत किया "बाबा, ये भद्र पुरुष मर्मान्तिक दुःख पा रहे हैं। आप उनपर कृपालु हों।

"उससे तुम्हारा क्या होगा, बताओ। आत्मज्ञान का रास्ता खुल जायगा ?" क्रुद्ध स्वर में नंगा बाबा कह उठे।

"नहीं बाबा, ऐसा नहीं होगा। फिर भी उन्होंने बार-बार आपसे विनती करने की प्रार्थना की थी, इसीलिए आपसे कह रहा हूँ।"

"फिर मेरी बात सुनो। तुम्हारे दोस्त की बीमारी है, पुरुषत्वहीनता, पहले उसे दारु और पर-स्त्री प्रसंग छोड़ने को कहो। लेकिन यह भी सुन लो वह दारु और पर-स्त्री गमन कभी छोड़ नहीं सकेगा। फिर कैसे हम उसको बचा सकेंगे, बोलो ? उसका प्रारब्ध उसको उसी पापाचार में फिर रख देगा।"

भक्त ने कलकत्ता वापस आकर अपने बैरिस्टर बन्धु को बाबा से हुई सारी वार्ता बताई। सारी बात को सुनने के बाद बैरिस्टर कुछ देर तक नीरव बैठे रहे। आत्मग्लानी से उनके नयन द्वय सजल हो उठे थे। दबे स्वर में उन्होंने कहा, "बाबा अन्तर्यामी-शक्तिधर महापुरुष हैं। कोई भी वस्तु उनकी दिव्य दृष्टि से अगोचर नहीं है। उन्होंने ठीक ही कहा है। इन दो पापों के मोह से ऐसा लगता है, मैं इस जीवन में मुक्त नहीं हो पाऊँगा।"

एक दिन प्रातः काल के समय टीले की सीढ़ी पर चढ़ कर एक

आर्त दर्शनार्थी बाबा के कमरे में आकर उपस्थित हुए। आश्रम के एक भक्त के साथ उनका परिचय है। भक्त ने कहा, "बाबा, इसका नाम माधव पाल है, तथा यह बारिसाल के रहने वाले हैं। किसी समय ये लोग बहुत बड़े व्यवसायी थे, परन्तु पाकिस्तान बन जाने के बाद ये अपना सर्वस्व गंवा बैठे। अब भिखारी जैसे जीवन व्यतीत कर रहे हैं। आपके आर्शीवाद के लिए आये हुए हैं।"

आगन्तुक को आर्शीवाद देकर तथा दो- एक प्रबोधात्मक वाक्य कहने के बाद बाबा ने उस दिन भी एक बड़ी सुन्दर कहानी सुनायी :

वैकुण्ठ में बैठे हुए नारायण और लक्ष्मी एक दिन बातचीत कर रहे थे। प्रसंगवश लक्ष्मी ने कहा, "प्रभु, तुमने इस विश्व चराचर की सृष्टि अवश्य की है: परन्तु मनुष्य तुम्हें पाने के लिए अधिक व्याकुल नहीं है। वास्तविक रूप में वे मुझे ही चाहते हैं।"

दोनों में तर्क-वितर्क हुआ और उसके बाद यही निश्चय हुआ कि इस बात की सत्यता की जाँच की जाय। मर्त्त लोक के एक धनी सेठ के घर में दोनों उपस्थित हुए। लक्ष्मी जाकर अन्दर महल में प्रविष्ठ हो गयीं, और नारायण ने एक दरिद्र ब्राह्मण के वेश में भवन से संलग्न बगीचे के एक झाड़ी में आश्रय लिया।

सेठ के गृह में सभी द्रव्यों का लक्ष्मी स्पर्श कर रही हैं, और वह स्वर्ण में परिवर्तित होता जा रहा है। खाट आलमारी,........,खाद्य सामग्री—सभी कुछ अनायास ही सोने में रूपान्तरित हो गया। सेठ तथा उसके पुत्र-पुत्रियों के उत्साह की सीमा नहीं है। उनलोगों ने सारे घर बार को स्वर्ण-द्रव्य से भर डाला। स्थान रहा नहीं—अब क्या किया जाय? उन्होंने निश्चय किया कि बगीचे में नया अस्थायी घर तैयार करके सोना-द्रव्य रखने की व्यवस्था की जाय। यह कार्य करने के लिए सेठ के आदमीयों ने ब्राह्मण वेशी नारायण को निकालने की तैयारी की। वृद्ध ब्राह्मण की करुण प्रार्थना से भी उनका हृदय विगलित नहीं हुआ। अंततः यही देखा गया कि लक्ष्मी की ही बात यथार्थ है। लोग

जगत सृष्टा परम पुरुष को नहीं चाहते हैं, तथा आत्मज्ञान की परम प्राप्ति को भी नहीं चाहते मात्र चाहते है अर्थ, वैभव, जो कि बन्धन का प्रधान कारण होता है।

आगन्तुक श्रीपाल से बाबा ने कहा, "देखो स्वांस ही जीवन है, और इतने वर्षों से बहुत से श्वांस को तुमने व्यर्थ के कार्यों में नष्ट कर डाला है। अब अवशिष्ट श्वासों को ईश्वर की भावना में लगाओ। इसी से प्रकृत कल्याण होगा और प्राणों में यथार्थ शांति आवेगी।

अब भक्त गण की ओर देखकर प्रशांत स्वर में नंगा बाबा ने कहा, "मेरे पास तो कितने तरह के लोग आकर भीड़ कर देते हैं, तथा मन की कितनी बातें लेकर आते हैं। परन्तु मैं तो मात्र एक ही दवाई लेकर बैठा हूँ—वह है भव-रोग की दवाई। अभागा मनुष्य मेरे पास भवबंधन के लिए आकर खड़ा होता है। नयी-नयी आकांक्षाओं की पूर्ति के लिए वह मेरे पास दौड़ा चला आता है। किन्तु मेरे असली दवाई की बात तथा परम मुक्ति की बात पर वह ध्यान भी नहीं देना चाहता।

करुण धारा की अमृत भाण्ड हाथ में लेकर आत्मज्ञानी, शिवकल्प महापुरुष दो सौ वर्षों से उपर इस विशाल भारत भूमि पर जगह- जगह घूमते रहे हैं। आर्तजनों के कल्याण और अद्वैत ब्रह्मज्ञान के प्रचार में वे मुक्त हस्त रहे हैं। अब इस महाजीवन के शेष अंक का शेष दृश्य समागत है।

बारह वर्ष पूर्व डायबेटिस रोगग्रस्त एक मृतकल्प रोगी बाबा के अशीर्वाद के फलस्वरूप बच गया था। इस रोग को बाबा इतने दिनों से अपने शरीर पर धारण किए हुए थे। सेवक भक्त ज्ञानानंद ने एक बार इस ओर बाबा का ध्यान आकर्षित किया था। बाबा ने उत्तर दिया था, "ज्ञानानन्द, वद हमारे तूणीर में एक ठो वाण है, जो हमको देहान्त के रास्ते पर ले जायगा।

इसी वाण को इस वार बाबा ने अपने तूणीर से बाहर किया जिससे शरीर काल व्याधि से आक्रान्त हो उठा।

कुछ दिनों के भीतर ही १९६१ साल की २४ अगस्त तारीख को मर्त्य लीला के अवसान का लग्न उपस्थित हुआ। पुरी तीर्थ के एक निर्जन कोने में गिर्नारी वन्ता पहाड़ के शीर्ष पर जो आत्मज्ञान का आलोक स्तम्भ इतने दिनों तक देदीप्यमान था, वह इस वार सदा के लिए बुझ गया।

—०—

श्रीपाद माधवेन्द्रपुरी

कृष्णप्रेम में उन्मत्त, कृष्ण-रस में सराबोर माधवेन्द्र श्री गोवर्धन पहुँचे हैं। अत्यन्त रमणीय और माधुर्यमय स्थान है। यह गोवर्धन उनके ध्यान-धन, आनन्दघन श्रीनन्दनन्दन का रम्य लीला-स्थल जो ठहरा! माधवेन्द्र की दृष्टि जिधर जाती उधर ही श्रीकृष्ण की ध्यान-स्फूर्ति होने लगती। भुवनमोहन रूपवाले नव किशोर नटवर, जैसे नयन-गोचर हो रहे हों! भक्तप्रवर आत्म-विस्मृत हो जाते हैं।

दिन पर दिन बीतते गये, अपूर्व अलौकिक लीला चलती रही। और प्राणप्रिय राधा-मानव के मिलन-विरह के रंग-रस का आनन्द लेते हुए अपने को वह खो बैठे।

गिरि गोवर्धन का सुरभिसमीर मंद-मंद बह रहा था। माधवेन्द्र चौंक-से उठे! मन में आया, कृष्ण के दिव्य शरीर की सुगन्धि लेकर जैसे गंधवह स्पंदित हो रहा हो! हमारे कृष्ण कहाँ? कृष्ण कहाँ?—कहते-कहते प्रेमी साधक उन्मत्त हो उठें!

मेघ-मेदुर आकाश को देखकर जब मयूरी का हृदय पुलक-सिहरन से भर जाता और पिच्छ फैलाकर वह मधुर भंगिमा से नाच उठतीं तो माधवेन्द्र के हृदय में मोरमुकुटधारी नवल किशोर की छवि-छटा जाग उठती।

कभी उमड़ती हुई श्याम घन-घटा, घनश्याम की विरह-वेदना

जगा जाती। और उनका हृदय व्यथा-पीड़ा से फट पड़ता, आँखों से आँसुओं की अविरल धारा बहने लगती।

बड़े विचित्र हैं यह कृष्णरसोन्मत्त भक्त सन्यासी ! वृजवासी गण अवाक् होकर इन्हें एकटक निहारते रहते। साधु-सन्त भी कुछ कम विस्मित नहीं थे। सभी जानते थे, माधवेन्द्र दशनामी पुरी—सम्प्रदाय के हैं। गुरु-परम्परा से उनके सम्प्रदाय में ज्ञान-तपस्या की धारा प्रवाहित होती रही है। तब फिर यहां इनमें क्योंकर ऐसी रागानुगा भक्ति उमड़ आई है ? ऐसा प्रबल भावोच्छ्वास कैसे जागृत हुआ ? कितने ही वैष्णवाचार्य कितने ही भक्ति-सिद्ध महापुरुष वृजमण्डल में आते रहते हैं, किन्तु इस तरह तो प्रेम-तरंग में उद्वेलित होते और किसी को नहीं देखा गया है !

कुछ दिनों के भीतर ही इस प्रेममार्गी संन्यासी को केन्द्रित कर एक दैवी लीला प्रकट हुई। धीरे-धीरे यह बात लोगों को मालूम भी हो गई एवं इसे लेकर वृज अंचल की चंचलता बढ़ गई।

विधर्मियों के आक्रमण और लूटपाट के कारण वृज मंडल के अधिकांश तीर्थ उस समय विलुप्त से हो गये थे। किसी प्रकार जागृत रूप में गोवर्धन एवं और दो-चार पुराने तीर्थ स्थान ही बचे थे।

उस दिन प्रत्यूष काल में गोवर्धन की परिक्रमा समाप्त कर, माधवेन्द्र गोविन्दकुण्ड के किनारे आकर बैठे थे। स्नान—मध्याह्न-जप सम्पन्न हो चुका था। अब इष्टदेव को भोग लगाकर प्रसाद ग्रहण करना ही शेष रह गया था।

त्यागवृती महावैष्णव बहुत दिनों से अयाचित वृत ग्रहण किये हुए थे। श्रीकृष्ण की कृपा से जब जो भिक्षा मिल जाती उसीसे काम चल जाता। ग्रीष्म ऋतु की दुपहर में, चिलचिलाती प्रचंड धूप में, कोई मानव प्राणी इधर आ पड़ेगा, इसकी संभावना बिलकुल नहीं थी।

कुंड के किनारे, पेड़ की छाया में माधवेन्द्र चुपचाप लेटे थे। हठात् एक गोप-बालक दूध का बर्तन हाथ में लिए सामने खड़ा हो गया। वह देखने में अत्यन्त सुन्दर था। सुगठित शरीर, साँवला रंग—रूप-सौन्दर्य जैसे छिटक रहा हो! सिर पर घुंघराले बाल, बड़ी-बड़ी आँखें देखने वालों पर जादू चल जाय!

मधुर हँसी चारों ओर छिटकाते हुए बालक बोला, "सुनते हो जी! जरा देह झाड़कर, शरीर सीधा कर उठो तो। यह देखो, तुम्हारे लिए डाबाभर दूध ले आया हूँ। आओ, छक कर दूध पीओ। अरे! अनशन-उपवास करने से क्या लाभ होगा? बोलो तो। जो कुछ मामूली खाना तो मांगने से मिल ही जायगा। ग्वालों के घर में दूध-दही की कमी तो नहीं पड़ी है। तब तुम फिर भूखे क्यों रहोगे?"

सम्मोहित-से माधवेन्द्र इस बालक की ओर एकटक निहारते रहे। जरा स्थिर हुए तो पूछना शुरू किया, "बच्चे, तुम कौन हो। किस गाँव में रहते हो? बोलो तो, तुम ने यह कैसे जाना कि मैं यहाँ उपवास किये बैठा हूँ?"

"मैं? मैं तो पास की बस्ती में रहता हूँ। तुम्हें मालूम नहीं, कोई यदि अयाचक वृत्ति लेकर रहता है—माँगकर नहीं कुछ खाता, मैं ही उसके लिए दूध जुटा लाता हूँ। ग्वालों की बहू-बेटियाँ इस घाट पर धोने-नहाने आई थीं, उन्हीं से तुम्हारे उपवास की बात मालूम हुई। दूध भी उन लोगों ने ही भिजवाया है। तुम पीकर निबट लो, मैं थोड़ी देर में आकर हाँडी ले जाऊँगा।"

श्रद्धा भरे हृदय से इष्टदेव को यह दूध भोग लगाकर वह इसे पी गये।

पेड़ की छाया में विश्राम करते-करते दिन ढल गया। किन्तु वह गोपबालक तो लौटकर आया नहीं। हांड़ी अभी भी एक ओर ज्यों की त्यों रखी हुई है।

धीरे-धीरे रात हो आई। गोवर्धन पहाड़ी के आकाश-अवकाश

में घना अंधेरा छा गया। पूजा-कीर्तन एवं जप के बाद मध्य रात्रि में माधवेन्द्र आसन बिछाकर लेट गये। शरीर थका-मांदा था, तुरत नींद आ गई।

रात के पिछले पहर हठात् उनकी नींद टूटी। आँख खोलते ही उन्होंने एक अपूर्व दृश्य देखा! दिव्य आलोक की छटा से सम्पूर्ण वन-प्रांत उद्भासित हो उठा है! और उस आलोक पुंज के मध्य मण्डल में वही गोपकुमार खड़ा दिखाई दे रहा है!

यह क्या अद्भुत घटना है! इस आलौकिक दृश्य-उद्भावना का रहस्य क्या है? माधवेन्द्र हड़बड़ा कर उठ बैठे।

इस वार मधुर हँसी बिखेरते हुए नवलकिशोर ने कहा—'माधवेन्द्र, तुम आ गये हो, अच्छा ही हुआ। तुम्हारे सिवा और किसी के द्वारा मेरी प्रतिमा का उद्धार कार्य संपन्न नहीं होगा। बहुत दिन पहले की बात है—गोवर्धन पहाड़ के निकट इस गाँव के ही एक भाग में मेरे पौत्र वज्रनाभ ने स्थापित की थी मेरी एक शिलाप्रतिमा—गोवर्धनधारी श्रीगोपालमूर्त्ति। वह प्राचीन विग्रह आज भी लोगों की नजरों से ओझल भूगर्भ के गंभीर गर्त में पड़ा है। मुसलमानी आक्रमण के समय पुजारियों ने उसे वहाँ छिपा कर रख दिया था। उसी समय से शीत-ताप-वर्षा एक पर एक समान रूप से ऊपर होकर गुजरते रहे हैं। मेरी इस मूर्त्ति का तुम्हीं उद्धार करो। तुम्हारे जैसे परम भक्त की ही सेवा अंगीकार करने की इच्छा लिए प्रतीक्षा करता रहा हूँ। इस मूर्त्ति का उद्धार कर पुनः प्रतिष्ठित करो और अगणित मानवों का कल्याण साधित करो।"

दिव्य मूर्त्ति फिर अन्तर्हित हो गई। साथ ही माधवेन्द्र का करुण आर्तनाद और क्रन्दन-विलाप शुरू हुआ।

भूमि में लोटते, जोर-जोर से बिलखते माधवेन्द्र बार-बार कह उठते—'हाँ नाथ! अपने हाथ हाँड़ी लिये मुझे दूध पिलाने आये।

कृपा करके दर्शन दिये, मेरी सेवा स्वीकार की। फिर भी यह अधम तुम्हें पहचान न पाया ! हे दयामय, यह दुःख मेरा असह्य हो उठा है !'

कुछ क्षण बाद ही प्रकृतिस्थ हुए। सोचा, ऐसा करते रहने से तो प्रभु की आज्ञा का पालन नहीं हो सकेगा। अपने श्रीमुख से सेवा ग्रहण करने की बात प्रभु ने कही है। वन के अन्दर कहाँ पर वह श्रीविग्रह गड़ा पड़ा है, दया करके कुछ उसका भी निर्देश कर दिया है। —माधवेन्द्र के लिए अब सब से महत्त्व का काम है उस मूर्त्ति का उद्धार और प्रतिष्ठापन।

तब से गाँवों के लोगों को बुला-बुलाकर, इस अलौकिक वार्ता का वह प्रचार करने लगे।

समस्त ग्राम में प्रबल उत्साह उमड़ आया ! कुदाली-कुल्हाड़ी ले-लेकर सैकड़ों की संख्या में स्त्री-पुरुष सभी उनके आगे-आगे चले। स्वप्न में प्राप्त निर्देश के अनुसार माधवेन्द्र सबों को लेकर जंगल में स्थित बताये गये कुंज में उपस्थित हुए। दुर्भेद्य पेड़-पौधों, लता-गुल्मों के जाल-जंजाल की सफाई करने के बाद खुदाई का काम शुरू हुआ और भूगर्भ से गोपाल की भव्य मूर्ति बाहर निकली !

ग्रामवासियों के उत्साह और आनन्द की सीमा न रही ! माधवेन्द्र तो भावावेश में प्रमत्त हो उटे ! उसी दिन बड़ी धूमधाम के साथ सब लोगों ने मिलजुल कर श्रीविग्रह का अभिषेक-विधान संपन्न किया।

माधवेन्द्रपुरी की ऋद्धि-सिद्धि का अपूर्व प्रकाश उस समय देखा गया। उनके मन में फिर अभिलाषा जगी, इस अभिषेक के उपलक्ष में अन्नकूट का अनुष्ठान हो और वैष्णव साधुओं को बृहत भंडारा दिया जाय। महान् वैष्णव की यह आकांक्षा पूर्ण होने में देर न लगी। मथुरा के भक्त सेठ समाज में एक होड़ मच गई। दही, दूध, आटा, चीनी, घी आदि भार के भार पहुँचने लगे। कर जोड़े हुए सभी लोग आते और सामग्रियाँ

माधवेन्द्रपुरी के सामने रख जाते। महापुरुष की कृपा से श्रीगोपाल प्रकट हुए हैं, इससे उनके निर्देश पालन में उत्साह का कहीं कोई ठिकाना नहीं है।

बड़ी धूमधाम से अन्नकूट और भंडार संपन्न हुए। गोपाल एक सुरम्य एवं विशाल मन्दिर में प्रतिष्ठित हुए।

इस विग्रह के अभिषेक और मन्दिर-प्रतिष्ठा के साथ-साथ माधवेन्द्रपुरी वृजमण्डल में अत्यन्त प्रसिद्ध हो गये। वैष्णव समाज में उनकी कथा को लेकर खूब चर्चा चलती थी। सभी कहते, श्री गोपाल ने जिनकी सेवा को स्वयं अंगीकार किया वह कौपीन—लंगोटीधारी वैष्णव निश्चय ही एक भक्तिसिद्ध महापुरुष हैं।

गोवर्धन के तत्कालीन इस भाग्यवान् महापुरुष के सम्बन्ध में वृन्दावन दास अपने चैतन्य-भागवत में लिख गये हैं—

"भक्ति रसे आदि माधवेन्द्र सूत्रधार।
गौरचन्द्र ईहा कहिया छेन वार-वार॥

(चै० भा० १।६।६१)

बंगाल की प्रेमभक्ति के निजी ऐश्वर्य का अधिकारी होकर माधवेन्द्र आविर्भूत हुए, साथ ही उनकी साधना आकर मिली दाक्षिणात्य आलवार के भक्तिरस में। राधाकृष्णलीलातत्त्व के एक श्रेष्ठ धारक और वाहक रूप में उनका प्रकाश हैला। उनके जीवन में निगूढ वैष्णवीय साधना पुष्पित एवं फलित हुई।

बंगाल, उड़ीसा, दाक्षिणात्य एवं वृजमण्डल आदि प्रदेशांचलों में माधवेन्द्र ने प्रेमभक्तिनिष्ठ साधकों की टोलियाँ कायम की। ज्ञानवादी पुरी-सम्प्रदाय के अन्तर्भुक्त संन्यासी होने पर भी उनके अन्तर में कृष्णप्रेमरस का उत्स प्रवाहित होता रहता था। भावप्रमत्त इस साधक ने उत्तरोत्तर जन चेतना में भागवत-आश्रित प्रेमधर्म की प्रवर्तना जारी रखी।

उत्तर भारत में इस समय रामानन्द-कबीर का युग चल रहा था। भक्ति और प्रपत्ति की वाणी देश की दसों दिशाओं में व्याप्त थी। इस भक्ति आन्दोलन में माधवेन्द्र पुरी ने एक नया रस स्रोत बहाया।

महाप्रभु चैतन्य की प्रेम-यमुना के वृहत्तर प्रवाह में मिलकर उनका यह भक्तिस्रोत फलितार्थ हो गया। लाखों भक्तगण इस में अवगाहन कर धन्य हुए।

श्रीहट्ट जिले में पूर्णिपाट नाम का एक छोटा-सा गाँव है। इसी गाँव में एक धर्मनिष्ठ ब्राह्मण-कुल में माधवेन्द्र पुरी पैदा हुए।

उपनयन संस्कार के बाद बालक को एक पाठशाला में भर्ती किया गया। धारणाशक्ति असाधारण थी। सहजता से उसने व्याकरण, काव्य और धर्मशास्त्र—क्रमशः एक के बाद दूसरे का अभ्यास कर लिया। यह देखकर आचार्य विस्मित रहते।

क्रमशः माधवेन्द्र युवक हुए। अध्यापन और शास्त्र के पठन चिन्तन से उनमें आध्यात्मिक जिज्ञासा जागृत हुई।

एक तो धर्मपरायण ब्राह्मण के घर में सहजात भक्ति-भावना और धर्मनिष्ठा लेकर वह पैदा हुए, दूसरे वयोवृद्ध लोगों की संगति, सुतरां उनके जीवन में भगवत्प्रेम की रसधारा सहज ही उद्भूत हुई।

वेद-वेदाङ्ग के शास्त्रीय ज्ञान के साथ भागवत एवं अन्यान्य भक्ति-शास्त्रों में माधवेन्द्रपुरी पारंगत हो गये। केवल श्रीहट्ट अंचल में ही

यह वारेन्द्र ब्राह्मण थे। काश्यप गोत्र के शुद्ध श्रोत्रिय करजा मूल-ग्राम के थे। पन्द्रहवीं सदी में लिखे गये 'हरिचरित' नामक ग्रंथ में उल्लेख मिलता है कि ग्रन्थकार चतुर्भुज के पूर्वपुरुष स्वर्णरेखा ने राजा धर्मपाल के यहाँ से वारेन्द्र अञ्चल के करजा नामक ग्राम प्राप्त किया था। सुतरां करजाग्राम के श्रीपाद माधवेन्द्र भी चतुर्भुज के समान स्वर्णरेखा के ही वंशधरों में अन्यतम थे। इसके अतिरिक्त इनके वंशपरिचय के सम्बन्ध में अभी तक कोई विशेष बात नहीं ज्ञात हो सकी है।

—माधवेन्द्रपुरी : डा० हृषीकेश वेदान्तशास्त्री—हिमाद्रि ३२ फाल्गुण १३६५ साल।

नहीं, पूर्व बंगाल भर में सर्वत्र उनकी प्रतिभा का आलोक फैल गया। किन्तु उनकी यह प्रतिभा-ज्योति चकाचौंध में डालनेवाली तेज-तर्रार नहीं प्रत्युत घी के दिये की लौ की तरह स्निग्ध-उज्ज्वल थी। आँखों में ताप-तीव्रता नहीं, प्रत्युत शीतल शांति आलोक देती थी। एक बार जो इनके सम्पर्क में आता वह मुग्ध हो जाता।

माधवेन्द्र अब प्रौढ़वयस्क हुए। अध्यापन कार्य द्वारा इन्हें ख्याति के साथ अर्थसम्पत्ति भी उपलब्ध होती रही। माँ-बाप ने इस बार जोर-दबाव देकर इनका विवाह भी कर दिया। कुछ दिनों के बाद एक पुत्र भी उत्पन्न हुआ।

पुत्रजन्म के बाद हठात् एक दिन पत्नी परलोक जा बसी। माधवेन्द्र भी सांसारिक जीवन से क्रमशः उदास होते गये। कुछ दिनों के बाद गंगा के तट पर वास करने के लिए वह अपने किशोर पुत्र को साथ लेकर पश्चिम बंगाल आ पहुंचे।

कुलिया और कुमारहट्ट के बीच में विष्णुग्राम बसा था। यहाँ आकर माधवेन्द्र ने कुटी बनाई। वहाँ एक नवीन चतुष्पाठी अध्ययन-अध्यापन के लिए खुल गई।

नवागत आचार्य के शास्त्र-ज्ञान और भक्ति-साधना की ख्याति चारों ओर फैल गई। कुछ ही दिनों के भीतर कुमारहट्ट, कांचनपल्ली से लेकर कुलीनग्राम, शांतिपुर और नवद्वीप तक वह सुपरिचित हो गये।

एक दिन इसी कुमारहट्ट से आकर माधवेन्द्र के कुटीर के सामने एक मेधावी तरुण उपस्थित हुआ। माधवेन्द्र के समीप यही तरुण शिक्षार्थी शास्त्र ज्ञान, साधन और दीक्षा लाभ कर, आगे चलकर स्व-नामधन्य ईश्वरपुरी नामसे प्रसिद्ध हुए। यह ईश्वरपुरी वही थे जिन्होंने गया धाम में श्री चैतन्य को गोपाल मंत्र की दीक्षा दी थी और उनके जीवन में रूपान्तर ला दिया था।

अध्यापन और साधन-भजन करते हुए यहाँ उनके अनेक वर्ष बीते। इस बीच विष्णुपुर में माधवेन्द्र के निकट आकर उपस्थित हुआ पुनः एक नवीन छात्र कमलाक्ष। श्रीहट्ट के निकट लाउड़ परगना के नवग्राम में इस तरुण का निवास स्थान था। माधवेन्द्र की साधन-निष्ठा और भक्तिशास्त्र के पाण्डित्य के विषय में उसने लोकमुख से वहुत—सारी बातें सुन रखी थीं। इस बार उन्हीं शक्तिमान् आचार्य का आश्रय ग्रहण करने के लिए वह अपने गाँव से यहाँ दौड़ा आया था। परिणत जीवन में यही कमलाक्ष श्री चैतन्यदेव के लीला पार्षद् श्रीअद्वैत नाम से प्रसिद्ध हुए। गौडीय वैष्णवों की प्रभुत्रयी में एक प्रभु रूप में पूजित हुए।

कमलाक्ष का मुख-मण्डल अपूर्व प्रतिभा से भास्वर था। प्रेम-भक्ति के रस से इसका हृदय निरन्तर भरा-पूरा रहता था। क्षण भर में माधवेन्द्र भाँप गये, यह तरुण साधक असाधारण प्रतिभा का है। इसमें भविष्णुता का महान् बीज छिपा है! इसीसे उन्होंने दोनों भुजाओं में भरकर उसे अपने अंक में बिठाया। पुत्र-स्नेह के साथ अपने घर में उसे यत्न से रखा।

कृष्णप्रेम की निरन्तर पिपासा माधवेन्द्र के हृदय में जाग रही थी। निष्ठावान् परम सात्त्विक जो साधन-जीवन एक दिन प्रारम्भ हुआ था वही रागानुगा भक्तिरस में परिणत हो गया।

अध्यात्म साधना के प्रधान अवलम्बन रूप में उन्होंने भागवत को अपनाया। बंगाल की जो भाव-कल्पना एवं प्रेमावेग की जो सहज वासना उनमें थी वह उद्वेलित हो उठी। जयदेव, विद्यापति और चंडीदास की भाव-भूमि में अवतरित होकर वह उनकी कोमल काव्य पदावली के रस में सराबोर रहते। प्रेम-सुषमा के अंजन दोनों नयनों में आँजते हुए माधवेन्द्र निरन्तर राधाकृष्ण के अनुध्यान में विभोर रहते।

फिर भी उनकी प्यास मिट गई क्या ? लोकमुख से सुना करते, दक्षिण देश में भागवत धर्म का एक अपूर्व माधुर्यमय विकास हुआ है। तामिल आलवारों की प्रेमार्ति, साधना और सिद्धि के द्वारा आत्मधर्म के इतिहास में एक नवीन अध्याय जोड़ा जा चुका है। उस निगूढ़ साधना से परिचय प्राप्त करने के लिए वह व्याकुल हो उठे ! उन्होंने निश्चय किया, विषयकूप में अब डूबना नहीं है। इस बार चिर दिन के लिए वह घर छोड़कर बाहर निकल पड़ेंगे—दक्षिण देश के प्रेमिक साधकों के साथ कुछ दिन बिताएंगे। फिर संपूर्ण भारत का परिव्रजन करेंगे। तीर्थ-तीर्थ में, कुंज-कुंज में दीन-हीन भिक्षुक वेश में प्रेमपिपासु साधक माधवेन्द्र को अब विचरण करना वांछित है।

समस्या है मातृहीन किशोर विष्णुदास को लेकर। किसके पास उसको रखकर जायेंगे ?

प्रिय छात्र कमलाक्ष गुरू माधवेन्द्र की सेवा में सतत तत्पर रहता। जिस प्रकार उसकी गुरुनिष्ठा थी उसी प्रकार दायित्व बोध भी था। विष्णुदास का भार अगर उस पर दिया जाय ? अन्त में यही व्यवस्था उन्होंने की। पुत्र को उसके पास रखकर, इष्ट साधना में बाहर निकल पड़े।

विदा के समय कमलाक्ष को पुकार कर उन्होंने कहा—"बाबा, परम प्रभु का हाथ मैंने टेक लिया है। अब से मेरे नये जीवन का अध्याय शुरू हुआ है। मैंने निश्चय किया, अब संसार को छोड़कर, कौपीन पहने मैं निकल पड़ूंगा। भगवान ने तुम्हें मेरे पास ले आकर एक बड़ा सुयोग लगा दिया है। विष्णुदास ठहरा अबोध बालक, उसके देखने-सुनने का भार आज से तुम्हारे ऊपर सौंपकर जा रहा हूँ। जीवन का स्वप्न यदि सफल कर सका, इष्टदेव श्यामल-किशोर के यदि दर्शन मिले, तभी मैं देश लौट सकूंगा।"

गुरुदेव की यह कैसी मर्मभेदिनी वाणी है। कमलाक्ष एकबार तिलमिला उठे!

स्नेहार्द्र कंठ से माधवेन्द्र समझा रहे हैं—"कमलाक्ष, मेरे सदृश दीनातिहीन साधक के लिए तुम्हारी आंखों में ये आँसू शोभनीय नहीं। वत्स! यदि रोना ही है तो सारे विश्व के दुर्भाग्य पर रोओ। और आँसू बहाना ही है तो बहाओ उनके लिए कि जिनके आविर्भाव के बिना कलि-हत जीवों का उद्धार सम्भव नहीं। ऐसा ही रोना रोओ, ऐसा ही अश्रुजल बहाते रहो।"

"किन्तु प्रभुवर! क्या सचमुच वह जन्म ग्रहण करेंगे? क्या यह सौभाग्य जीवधारियों को मिलेगा? —कमलाक्ष की आँखों में आशा की झिलमिल किरणें चमक-सी आई!

"हाँ, वत्स! उनके आने का अवसर आ गया है! मेरी दृष्टि में यह दिव्यता झलक रही है। आज की मनुष्यता चरम पाप-पंक में डूबी हुई है। द्वेष-हिंसा से पृथ्वी कलुषित हो उठी है। यही तो उनके अवतरण का अवसर है। किन्तु वत्स, इस सौभाग्य को शीघ्र चरितार्थ करने के पहले ही शुद्ध-सत्त्व साधको एवं प्रेम-मार्गी मानवों को आगे आकर मार्ग परिष्कृत करना होगा। उनके आविर्भाव के लिए ही तिल-तुलसी हाथ में लेकर—त्याग-समर्पण का शुद्ध संकल्प लेकर--मैं भारत के तीर्थ-तीर्थ में रोने धोने के लिए निकल पड़ा हूँ। तुम भी ऐसा ही करने के उद्देश को लेकर उन्हीं के लिए रोओ और उनके चिर-प्रतीक्षित महाप्रकाश के अवतरण को संभावित करो।"

फिर कमलाक्ष और विष्णुदास से बिदा लेकर माधवेन्द्र अपने परमधन श्री नन्दनन्दन के सन्धान में निकल पड़े।

कुछ दिन से संन्यास दीक्षा के लिए माधवेन्द्र बहुत व्यग्र हो उठे हैं। बार-बार सोच रहे हैं, किस शक्तिमान् महापुरुष का आश्रय

ग्रहण करें ? इस बार ईश्वर की कृपा से वह सुयोग भी मिल गया। परिव्राजक के पथ में ही पुरी सम्प्रदाय के एक संन्यासी दल के साथ उनकी देखादेखी हुई। इस दल के अग्रपुरुष के दर्शन मिलते ही वह निहाल हो गये, श्रद्धा से उनके मन-प्राण खिल उठे। एक दिन शुभ लग्न में इन्हीं महात्मा के के आश्रम में आकर उन्होंने संन्यास दीक्षा प्राप्त की।

गुरु के सन्निधान में कुछ दिन रहकर, फिर वह पर्यटन के लिए बाहर निकल पड़े। दक्षिण के नाना तीर्थों मे भ्रमण करते हुए समय व्यतीत करते।

परम तत्त्व को प्राप्त करने की आशा लिए माधवेन्द्र घर छोड़ आये थे, कृच्छ्रव्रत और संन्यास ग्रहण किया था। घर-परिवार-समाज सब कुछ की स्मृति-ममता धो-पोछकर साफ कर देना चाहते थे। परन्तु ऐसा कुछ तो हुआ नहीं। वह प्रतीक्षित शुभ लग्न-घड़ी तो आई नहीं ? कब होंगे प्रभु के बहुवांछित दर्शन ? कब सर्वसत्ता में रस ब्रह्म की परम अनुभूति जगेगी ? इसी सौभाग्योदय की प्रतीक्षा में वह इतने समय से लगे हुए हैं।

इसके अतिरिक्त संन्यास लेने के बाद से ही माधवेन्द्र के जीवन में एक नया मानसिक संकट देखा गया। प्रेमधर्म की अन्तः सलिला धारा यौवन काल से ही उनके जीवन में प्रवाहित होती रही है। यह धारा पुष्ट होती रही है साधना, दिनचर्या, और भक्तिशास्त्र के अध्ययन के माध्यम से। इतने समय तक भागवत का उद्दिष्ट कृष्णप्रेम उनका लक्ष्य रहा और श्रीधर स्वामी का प्रेमरसाश्रित भाष्य जीवन-पथ का परम पाथेय रहा। किन्तु ज्ञानमार्गीय इस संन्यास-जीवन में उनका यह लक्ष्य, वह पाथेय क्या अपने रूप में बना रहा ? अभी के शुष्क पथ में, विचार-विश्लेषण के बीच, चिर—वांछित रसलोक का सन्धान तो उन्हें मिल नहीं पाया !

जीवन का वह बहुपरिचित स्वर, न मालूम क्यों-कैसे, जैसे भुला गया हो ! अन्तर्द्वन्द्वमय महासंकट में वह आ पड़े हैं।

दक्षिण देश का पर्यटन करते-करते माधवेन्द्र उस बार उदीपी मठ में आ पहुंचे। मध्वाचार्य के उत्तराधिकारी साधकों का यह मठ श्रेष्ठ केन्द्र था। द्वैतवादी साधना की धारा यहाँ प्रबल वेग से प्रवाहित होती रहती थी।

उदीपी मठ के धर्माचार्य का नाम आचार्य लक्ष्मीपति था। भक्तिसिद्ध महापुरुष कहकर उनकी ख्याति साधक-समाज में विशेष रूप से थी। माधवेन्द्र ने स्थिर किया इन महात्मा के निकट बैठकर साधन का नया पाठ ग्रहण करेंगे। द्वैतवादी साधन के माध्यम से अपनी अभीष्ट-सिद्धि के पथपर आगे बढ़ेंगे।

कुछ अवधि तक वह मध्व-सम्प्रदाय में अवस्थित रहे। आचार्य लक्ष्मीपति के निर्देशन में साधना की गहराई में निमज्जित हुए। भक्ति साधना और भक्तिशास्त्र के निगूढ़ तत्त्वों को निष्ठा के साथ वह उस समय स्वायत्त करते गये।

माधवेन्द्र के परवर्ती अध्यात्म जीवन में और एक नया प्रवाह आ मिला। नैष्ठिक भक्तिसाधना के स्थान में कृष्णप्रेम का रस मधुर साधन—पथ चिर काल के लिए उन्होंने चुन लिया।

इस समय उनके जीवन का प्रधान आकर्षण-सूत्र बना जयदेव का गीत-गोविन्द और विल्वमङ्गल का कृष्णकर्णामृत ग्रन्थ। इसके अतिरिक्त तामिल साधक आलवाड़ों का प्रेमधर्म और उनका निगूढ़ तत्त्वदर्शन उन्हें विशेष भाव से प्रभावित करता रहा।

कुछ दिनों के मध्य ही माधवेन्द्र का अभीष्ट सिद्ध हुआ। साधक जीवन का स्रोत शीघ्र ही आकर कृष्णप्रेम के रस-सागर में समाहित हो गया।

राधा-कृष्ण के मिलन-विरह के रंग में उनकी साधन सत्ता तरंगित होती रही। युगलमूर्ति के भजनक्रम में उन्हें प्राण-प्रभु की कृपा प्राप्त हुई। नवल

किशोर नन्दनन्दन की रसोज्ज्वल छवि हृदय में अधिष्ठित हुई। जीवन-मञ्च पर इस बार शुरू हुई एक नव-नूतन लीला।

रागानुगा भक्ति के जिस स्तर पर माधवेन्द्र आ पहुँचे थे वहाँ मध्वमठ के साथ और अधिक दिनों तक संपर्क नहीं रखा जा सकता था। वैधी भक्ति और शास्त्रीय तत्वचर्चा आज उनके लिए नीरस और अर्थहीन वस्तु थी। कृष्ण-प्रेम-रस में वे अधीर और उद्वेलित हो रहे थे।

इस अवस्था में उदीपी का मठ उन्हें बाध्य होकर छोड़ना पड़ा।

इस मध्व मठ से बाहर आने के बाद से ही माधवेन्द्रपुरी का आचार्य-जीवन आरंभ होते देखा जाता है। भारतीय प्रेमसाधना के क्षेत्र में एक प्राणवंत उत्स रूप में वह आविर्भूत हुए। इस उत्स की धारा से देश के विभिन्न भाग कुछ ही दिनों में आप्लावित हो उठे।

इसी पुण्यमयी-गंगोत्री से आगे चलकर फूट निकली चैतन्यदेव की भावमयी प्रेमगङ्गा।

महाप्रभु स्वयं एवं उनके बिशिष्ट अनुयायिगण माधवेन्द्र पुरी के निकट अपनी कृतज्ञता स्वीकार कर गये हैं।

माध्व मतवाद और साधनविधि से अलग होकर, माधवेन्द्र ने जिस जीवन दर्शन का प्रचार किया उसमें उनकी निजी साधना और व्यक्तित्व की छाप निखर रही है। ⁂ भागवत के लीलावाद और आलवारों की साधन

⁂ वस्तुतः माध्व सिद्धान्त और साध्य साधन प्रणाली के साथ गौड़ीय वैष्णवों का मत विशेष मेल नहीं खाता। इसीसे कवि कर्णपूर माध्व-सम्प्रदाय की गुरु प्रणाली की कथा लिखकर भी, माधवेन्द्र को नवधर्मप्रवर्त्तक कहकर, उल्लेखकर गये हैं। किन्तु श्री जीव गोस्वामी ने मध्व सम्प्रदाय और माधवेन्द्र के सम्पर्क सम्बन्ध में कुछ स्पष्ट नहीं कहा है, फिर भी गौडीय वैष्णवों को उन्होंने माध्व साम्प्रदायिक अभिधान देना चाहा है। वैष्णव वन्दना के अन्त में वह लिखते हैं—

प्रणाली के साथ ही बंगाल की प्रेमसाधना एवं युगलरूप की भजन उपासना इनसब का वह अपूर्व संमिश्रण कर गये हैं।

इससे देखने को मिलता है कि प्रेमभक्ति के साधन—जगत में माधवेन्द्र पुरी एक नया स्वर लेकर प्रकट हुए। उनके भावमय जीवन और वाणी में विधाता की कल्याणमयी कृपा-करुणा निहित है।संन्यासी, आचार्य और गृहस्थ सभी माधवेन्द्र द्वारा प्रवर्तित प्रेम धर्म का आश्रय करने लगे।

माधवेन्द्र के शिष्यवर्ग में भारत के दक्षिणाञ्चल में परमानन्दपुरी, दक्षिण में श्रीरङ्गपूरी और पूर्वाञ्चल में अद्वैत और पुण्डरीक विद्यानिधि आदि ने उनकी साधना धारा को विस्तारित किया।⁂

उनके गौडीय संन्यासी शिष्यों में ईश्वरपुरी एवं केशव भारती प्रधान थे। ये ही दोनों प्रेममार्गी संन्यासी श्री चैतन्य को दीक्षा और संन्यास देकर इतिहास में ख्यात हो गये है।

माधवेन्द्र पुरी के गृहस्थ बंगाली शिष्य श्री अद्वैत, महाप्रभु के एक प्रधान पार्षद के रूप में गिने जाते हैं। दूसरे विशिष्ठ शिष्य हैं, श्रीवास पंडित जिनके प्रभाव से चैतन्य युग के पहले नवद्वीप में एक छोटा-मोटा भक्त मंडल सुदृढ़ रूप से गठित हो चुका था।

पूर्व बंगाल में माधवेन्द्र के प्रतिनिधि थे पुण्डरीक विद्यानिधि। प्रेमधर्म के प्रचार प्रसार में उनका पूर्ण अवदान था। स्वयं महाप्रभु उन्हें पिता के समान मर्यादा देते। इसी पुंडरीक के शिष्य पण्डित गदाधर

एतद् वैष्णवबन्दनं सुखकरं सर्वार्थसिद्धिप्रदम्।
श्रीमन्माधवसम्प्रदायगणनं श्रीकृष्णभक्तिप्रदम्॥'

⁂माधवेन्द्र के अन्यान्य शिष्यों में हैं—ब्रह्मानन्दपुरी, ब्रह्मानन्द भारती, मैथिल विष्णुपुरी, रघुपति उपाध्याय, कृष्णानन्द, नृसिंह तीर्थ, सुखानन्दपुरी, रघुनाथपुरी, अनंतपुरी गोपाल पुरी आदि आदि।

श्री चैतन्य के अत्यन्त अन्तरङ्ग भक्त थे। गदाधर के पास दीक्षा लेने के बाद ही श्रीवल्लभाचार्य उत्तर भारत में श्रीराधाकृष्ण की उपासना के विस्तार-साधन करने में समर्थ हुए।

माधवेन्द्र पुरी के कृपाप्राप्त साधक राघवेन्द्र राय रामानन्द के गुरु थे। श्रीजीव गोस्वामी की वैष्णव-वन्दना के अनुसार, नित्यानंद के गुरु संकर्षण पुरी ने भी महाप्रेमिक माधवेन्द्र को गुरु के रूप में वरण किया था।

माधवेन्द्र के प्रसिद्ध एवं अप्रसिद्ध गृहस्थ शिष्यों की संख्या कुछ कम नहीं थी। बहुतों के विचार में नवद्वीप के रत्नगर्भ आचार्य (जगन्नाथ मिश्र के घनिष्ठ सुहृद्), शुक्लाम्बर ब्रह्मचारी, गङ्गादास, हिरण्य सदाशिव, जगदीश आदि भक्तगण भी इन्हीं स्वनामधन्य महापुरुष से प्रेमधर्म उपलब्ध कर पाये थे।

माधवेन्द्र एक बार अपने शिष्य श्रीरङ्गम पुरी के साथ नवद्वीप आये थे। कहते हैं, इस समय श्री चैतन्य के पिता जगन्नाथ मिश्र के घर इन्होंने अतिथ्य ग्रहण किया था।

श्री गोपाल की सेवा में माधवेन्द्र पुरी ने प्रायः दो साल व्रजमंडल में बिताये थे। श्रीमूर्ति के प्रकठ होने के बाद, बड़े समारोह से पूजा और भोग-राग चलने लगे। मथुरा के सेठ लोग, वृन्दावन के गृहस्थ समाज उत्साह के साथ ठाकुर जी की सेवा-पूजा की व्यवस्था करते। श्री विग्रह के दर्शनार्थ लोगों की भीड़ उमड़ पड़ती। अपार सन्तोष के साथ माधवेन्द्र के दिन इस समय व्यतीत होते थे।

स्वप्नादेश के द्वारा प्रभु ने स्वयं ही अपना उद्धार कार्य सम्पादित करवाया। इसके अतिरिक्त सेवा पूजा अंगीकार के बाद से ही कभी भी अकिञ्चन अयाचक संन्यासी माधवेन्द्र को, एक दिन के लिए भी, व्रत—नियम में—किसी प्रकार की त्रुटि नहीं आने दी। दयामय स्वयं प्रत्यह भोग राग की विपुल सामग्री जुटवा लिया करते। कहाँ से भार के भार

नाना प्रकार के वस्तुजात पहुँच जाते, कौन कैसे इन्हें जुटा लेता है—कोई नहीं जान पाता। माधवेन्द्र को भी इसके लिए कोई उत्कंठा नहीं। भावावेश में और प्रेमानन्द में वह दिन-रात मस्त रहा करते।

श्रीगोपाल उस दिन उन्हें स्वप्न में फिर दृष्टिगोचर हुए। किन्तु इस बार प्रभु की लीला का नया रंग था। क्लान्त स्वर में बोले—"पुरी गोसाईं, मेरी पूजा तो पूरे घटाटोप से करते हो, किन्तु इधर ग्रीष्म के उत्ताप से सारा शरीर जल रहा है, प्राण निकले जा रहे हैं! कुछ इसका तो उपाय करो।"

त्रिताप से जर्जर प्राणियों के जो परमाश्रय ठहरे, जिनके नाम-कीर्तन से ही सब प्रकार की ज्वाला-यन्त्रणा मिट जाती है, उन्हीं परम प्रभु के मुख से ऐसी विचित्र पीड़ा की शिकायत—ऐसा अद्भुत अभियोग! विस्मय-विस्फारित नेत्रों से माधवेन्द्र श्रीठाकुर की ओर एकटक निहारने लगे।

श्री ठाकुर सहज में छोड़नेवाले नहीं। करुणा भरे स्वर में कहने लगे— 'सुनो, पुरी के मलयज चंदन लेप के विना मेरे शरीर की यह ज्वाला मिटेगी नहीं। वह चंदन तुम्हें नीलाचल में मिलेगा। इस दारुण ग्रीष्म में भक्तगण दारुब्रह्म जगन्नाथ को यही चंदन चढ़ाते हैं। वही मुझे चाहिए। किन्तु एक बात है, और किसी को उसे ले आने के लिए नहीं भेजो, तुम स्वयं जाकर संग्रह करो। मेरे सारे शरीर में उसका अनुलेपन कर, ताप दूर करो।"

यहाँ ननुनच की गुंजाइश नहीं, यह तो प्रभु का आदेश ठहरा, अनुल्लंघनीय आदेश। इस स्वप्न दर्शन के दूसरे ही दिन प्रेमावेश में मस्त माधवेन्द्रपुरी ब्रज-मंडल से बिदा हुए।

वृंदावन से नीलाचल की ओर जाने के लिए उन दिनों गौड़ देश होकर ही जाना पड़ता था। अतः शीघ्रातिशीघ्र यही मार्ग पकड़ कर वह चल पड़े।

अद्वैत उस समय शान्तिपुर में बास करते थे। माधवेन्द्र के यह प्रिय छात्र इन दिनों वहाँ ख्यातनामा आचार्य रूप में सम्मानित थे। भक्तिशास्त्र पर उनका असाधारण अधिकार था। उस अंचल में उनकी लोकप्रियता भी यथेष्ट थी। माधवेन्द्र पहले उन्हीं से जाकर मिले। दोनों के साक्षात्कार से आनन्द का स्रोत उमड़ पड़ा।

माधवेन्द्र के आगमन से शांतिपुर में हलचल मच गई! ऐसा भक्ति-सिद्ध रूप, ऐसी प्रेमार्त्ति, कृष्णविरह का ऐसा उद्वेग—इससे पहले किसी ने नहीं देखा था! गुरु के इस महापरिवर्तन से अद्वैत के आनन्द का ओर-छोर नहीं।

एक शुभ लग्न घड़ी में पुरी महाराज से इस अद्वैत ने दीक्षा ग्रहण की। इस दीक्षा के अन्तराल से इस देश के भक्तिधर्म के क्षेत्र में रोपा गया यह बीजांकुर पीछे महान् अक्षय वट रूप में परिणत होनेवाला सिद्ध हुआ।

शान्तिपुर और नवद्वीप में कुछ दिन बिताकर राघवेन्द्रपुरी उड़ीसा की ओर अग्रसर हुए। कई दिन पैदल-यात्रा करने के बाद रेमुना गाँव जा पहुँचे।

नयन-मनोहर श्री गोपीनाथ की विग्रहमूर्ति रेमुना में विराजमान थी। बड़े जाग्रत थे यहाँ के श्रीठाकुर! यहाँ पहुँचते-पहुँचते पुरीमहाराज प्रेमानन्द से विह्वल हो गये! मन्दिर में बैठकर अश्रान्त भाव से नाम धुन की रट लगाने लगे। इस परम भागवत के आगमन से उस दिन रेमुना गाँव में प्रेम-भक्ति की बाढ़ जैसे आ गई।

कीर्तन और स्तुतिपाठ के अन्त में पुरीजी मन्दिर के जगमोहन पर आकर बैठ गये। एकटक प्रभु की छवि निहारते रहे और बीच-बीच में उनकी सेवा अनुष्ठान विधि को लक्ष्य करते रहे। गोपीनाथ का भोग-राग बराबर बड़े समारोह के साथ चलता रहा। राज्य की व्यवस्था के अनुसार नित्य नियमित रूप से बहुत सी उपादेय भोजन सामग्रियाँ उन्हें निवेदित होती रहीं।

पुरी महाराज ने पुजारी को पुकार कर कहा—'भाई, गोपीनाथ जी की सेवा-पूजा का यह आयोजन देखकर, तुमलोगों की यह आन्तरिकता देखकर, मैं बड़ा ही मुग्ध हूँ। आँखें उधर से हटती नहीं। अच्छा भाई, दया करके मुझको एक बात तो बतलाओ, प्रभु के भोगराग में कौन-कौन से सुस्वादु पदार्थ निवेदित किये गये हैं।

पुजारी ने विस्तार के साथ पूरा विवरण देकर मुस्कुराते हुए कहा—किन्तु महाराज, प्रभु गोपीनाथ के जितने भोगपदार्थ हैं उनमें सबसे बढ़कर है अमृतकेली खीर। यह तो सर्वथा अमृत के समान है। यहाँ की व्यवस्था के अनुसार रोज ठाकुर जी के आगे खीर भरी नौ हाँड़ियाँ रखी जाती हैं। ऐसा भोग पदार्थ कोई और दूसरा नहीं मिल सकता है। यह हमारे गोपीनाथ की खास चीज है।"

पुरी महाराज के मन में चिन्ता की रेखा सहसा उमड़ उठी। अमृतकेली खीर यदि ऐसी वस्तु है तो श्रीगोपाल के भोग में वह क्यों नहीं परोसी जायगी? मन ही मन बोल उठे—"अहा! यदि इस अनुपम खीर प्रसाद का आस्वाद एक बार भी मिलता तो समझ पाता कि किस प्रकार की वस्तु है, कैसे बनाया जाता है इसका भी अन्दाजा लगता।

साथ ही संकोच भी हुआ। अस्फुट स्वर में बोल उठे—श्रीविष्णु, श्रीविष्णु! छिः छिः! आज मेरे मन में यह सब क्या आ रहा है? ऐसा सोचना भी तो घोर पाप है! किस प्रकार यह सम्भव है? सन्यासी होने के बाद मैंने अयाचक वृत्ति ग्रहण की है, अमृतकेली प्रसाद मैं क्यों चाहने लगा? हाँ, यदि अयाचित भाव से मन्दिर वाले दें, तब हो सकता है। क्या जाने, प्रभु मन की इच्छा पूरी करते हैं या नहीं?

भोगराग समाप्त हो गया। पुरी महाराज मन्दिर से बाहर निकल आये। घूमते-फिरते गाँव के एक हाट पर जा पहुँचे।

रात्रि का अन्धकार हो आया था। खरीद-बिक्री समाप्त कर हाट के लोग अपने-अपने घर लौट गये थे। माधवेन्द्र जनहीन एक छपड़ी-झोपड़ी में जा बैठे। मन में आज बड़ा अनुताप था। वह अयाचक संन्यासी ठहरे, फिर उनके मन में याचना की इच्छा जगी क्यों? इस पाप को धो-पोंछने के लिए सारी रात जगकर प्रभु का नाम-गान करेंगे।

पहरों तक उनके मुँह से मीठे स्वर में नामधुन चलती रही।

इधर गोपीनाथ मन्दिर के पुजारी ठाकुरजी को शयन करा रहे थे। अपना जो कुछ काम था उससे वह निबट चुके। अब बगल की कोठरी में निश्चिन्त होकर सोने गये।

गंभीर निशीथ रात्रि। कहीं कोई शब्द नहीं सुनाई देता। मंदिर के चारो ओर वनांचल में झिल्लियों की झनकार मात्र सुनाई देती थी।

हठात् सोए हुए पुजारी के कानों में मृदु-मधुर पुकार सुनाई पड़ी—'उठो उठो, शीघ्र किवाड़ खोलो।'

पुजारी धड़फड़ करता हुआ बिछौने पर उठ बैठा। यह क्या! यह किसका कंठ-स्वर है? इस निर्जन वन-अंचल में कौन मुझे इस तरह पुकार रहा है?

फिर कान में सुधास्निग्ध कंठ स्वर सुनाई दिया—'अरे सुनो! और देरी मत करो, देखो तो मेरे पीताम्बर की ओट में छिपा कर रखी है एक हाँड़ी अमृतकेली खीर। यह छिपा कर रख छोड़ी है अपने प्राणप्रिय भक्त माधवेन्द्रपुरी के लिए। इस खीर प्रसाद को खाने की बड़ी इच्छा आज उसके मन में जगी थी, और वह मुँह खोलकर किसी से यह माँग न पाया। उसकी यह इच्छा पूरी हुए बिना मुझे चैन नहीं मिलेगी। इसी से तुमलोगों की आँख बचाकर मैंने यह खीर चोरी चुपके रख ली है। पुरी गोसाईं इस समय हाट के एक कोने में बैठा मेरा नाम-गान कर रहा है। उसे खोज-ढूँढ़ कर मेरा यह प्रसाद शीघ्र दे आओ।'

स्वयं गोपीनाथ का यह आदेश हुआ। भक्तवत्सल भगवान की यह कैसी अपूर्व लीला, और यह कैसा अद्भुत प्रेम-रंग !

पूजारी का सारा शरीर रोमांचित हो आया, आँखें पुलकाश्रु से भर आईं। फिर प्रकृतिस्थ होकर वह ठाकुर के शयनकक्ष में दौड़ गया। देखा सचमुच ही, श्रीविग्रह के पीताम्बर परिधान की ओट में एक हँडिया अमृतकेली छिपाकर रखी हुई है। झटपट उसे उठाकर वह हाट की ओर दौड़ पड़े।

हाट के इस कोने से उस कोने तक ढूँढ़ते-फिरते जोर-जोर से पुरी महाराज का नाम लेकर पुकारने लगे।

अन्त में वह मिल गये। प्रसाद की हाँड़ी उनके आगे रखकर पुजारी बोले—"महाराज, आप अद्भुत भाग्यवान् ठहरे ! यह देखिए स्वयं गोपीनाथजी ने आपके लिए यह अमृतकेली भेजी है। आपने मुँह खोल कर खीर प्रसाद माँगा नहीं, यह ठीक है, किन्तु दयालु ठाकुर जी ने आपके लिए स्वयं इसे छिपाकर रख लिया था। प्रिय भक्त के खातिर गोपीनाथ स्वयं आज खीरचोर बने।"

"प्राणप्रभु की यह कैसी कृपालीला ! माधवेन्द्र के हृदय में कृष्ण प्रेम का सागर उत्ताल तरंगों में उद्वेलित हो उठा ! स्वयं आत्मविस्मृत होकर भूमि पर लोट गये ! अंग-अंग में सात्विक भाव का प्रेमविकार साकार हो उठा !

इस अलौकिक प्रेमावेश का दर्शन करना भी किसी विरले के भाग्य में बदा रहता है। पुजारी आनन्द में भरकर सुध-बुध खो बैठा ! अस्फुट स्वर में बोलता गया—"पुरी महाराज ! धन्य हैं आप ! आपकी प्रेमभक्ति सार्थक है, कृष्णभक्ति की साधना अनन्य है। आपके लिए प्रभु गोपीनाथ क्यों खीर चुरा रखने को विवश हुए, अब यह समझ में आ रहा है।"

माधवेन्द्र को कुछ प्रकृतिस्थ होते देखकर पुजारी ने साष्टाङ्ग

प्रणाम निवेदन किया और उनके आगे प्रभु गोपीनाथ के प्रसाद की हाँड़ी रख दी।

महावैष्णव का प्रेमावेश शीघ्र उतर नहीं पाया। सारा शरीर पीपल के पत्तों की तरह काँप रहा था और आयत नयनों से झरझर अश्रुधारा बह रही थी।

अस्फुट स्वर से वह बार-बार कह रहे थे—"हे प्राणनाथ, हे दीनदयाल ! अपार है तुम्हारी कृपा, प्रभु ! इस अधम के लिए तुमने आप ही आप प्रसाद चुराये ! इतना ही क्यों ? और वाहक के द्वारा इस घोर निशीथ में भिजवा भी दिये !

प्रसाद भोजन पूरा हुआ। और हँड़िया के एक एक टुकड़े को अपनी चादर में बाँध रखा। इस मिट्टी की हँड़िया का कण-कण भी जैसे उनके लिए महाप्रसाद हो ! स्नान और भोग-राग के बाद वह एक कण नित्य अपने मुँह में डालते और दिव्य प्रेम में उन्मत्त हो जाते ! हँसते रोते, नाचते-गाते और कृष्णप्रेम की भावतरंग से चारों ओर आप्लावित कर देते।

रेमुना से बिदा होकर माधवेन्द्र एक दिन नीलाचल आ पहुँचे। दीर्घ परिव्रजन के बाद श्रीजगन्नाथजी के दर्शन का सौभाग्य मिला। हृदय प्रेमरससे उद्वेलित हो उठा है, सम्पूर्ण शरीर में अश्रु-कम्प-पुलक समन्वित सात्विक प्रेमविकार प्रकट हो रहा है। भक्तिप्रेम की इस पराकाष्ठा को देखने का जिसे एक बार भी अवसर मिला वह असीम विस्मय को प्राप्त हुआ।

यह बात चारों ओर फैल गई, भक्तिसिद्ध महापुरुष माधवेन्द्र श्रीक्षेत्र आ पहुँचे हैं। दल के दल भक्तगण टूट पड़े हैं, जगन्नाथजी के पंडे, राजा के अनुचर सभी आकर भीड़ लगा देते। पुरी महाराज प्रेम भरे कंठ से सबों से श्रीगोपाल के लीलाविलास की कथा कहते—'भाई लोग, हमारे गोपाल का यह आग्रह हो गया है कि वह जगन्नाथजी की भाँति

चन्दन और कर्पूर से अपने अंग को अनुलिप्त करेंगे। और यह सब होना चाहिए इसी पवित्र क्षेत्र के जंगल की उपज से। आप सब कृपा करके हमारे लिए इसका उपाय कर दो। मेरी मुखलज्जा की रक्षा करो

विशिष्ट भक्तगण, प्रतिष्ठित राजकर्मचारी-गण पुरीजी की सहायता में लगे। उनकी प्रार्थित वस्तुओं का ढेर लग गया। भार के भार चंदन-कर्पूर पहुँचने लगे। फिर एक दिन उन सब एकत्रित चंदन-लकड़ी और कर्पूर को माथे पर ढोने वाले कहारों को साथ लेकर माधवेन्द्र वृन्दावन को विदा हुए। कई दिनों तक रास्ता तय करते हुये वह रेमुना के श्रीमन्दिर आ पहुँचे।

गोपीनाथ के सेवकों ने इस बार उनका बड़ा सम्मान किया। सभी इन सिद्ध वैष्णव की सेवा में बड़ी तत्परता से लगे थे। मन्दिर के प्राङ्गण में दिव्य आनन्द का स्रोत बह चला।

पूजन और नर्तन-कीर्तन समाप्त हो चुके थे। प्रसाद ग्रहण के बाद पुरीमहाराज अतीव आनन्द से जगमोहन के एक कोने में सो गये।

गंभीर रात्रि में उन्होंने एक स्वप्न देखा। ज्योतिर्मय मूर्ति से निकलकर त्रिभंग बंकिम रूप में गोपाल उनके सम्मुख आकर खड़े हैं। उनके हँसते चेहरे से प्रसन्नता टपक रही है।

प्रभु बोले—"वत्स माधवेन्द्र! तुम्हें अधिक दौड़-धूप करने के लिए बाहर नहीं जाना है। तुम्हारे द्वारा लाये गये चन्दन-कर्पूर वृन्दावन में मेरे पास पहुँच गये हैं।"

चन्दन आदि श्रृंगार सामग्री का उपहार लेकर माधवेन्द्र अभी रेमुना तक ही पहुँच पाये हैं, वृन्दावन तो अभी बहुत दूर है। प्रभु की यह कैसी विचित्र उक्ति है!

गोपाल फिर कहते गये, "यह क्या! सब जो मुझे मिल गया है, क्या तुम्हें इसका विश्वास नहीं हो रहा है? तब सुनो, कहता हूँ। गोपीनाथ का और हमारा एक ही विग्रह शरीर है। जो

मैं वृन्दावन में हूँ वही मैं यहाँ रेमुना में भी हूँ। तुम गोपीनाथ के अग में नित्य चन्दन-कर्पूर का अनुलेपन करो, हमारा देह शीतल होगा। मन में संशय-द्विधा मत करो, मैं जो कहता हूँ वही व्यवहार चलने दो।"

भोर होते-होते पुरी महाराज ने मन्दिर के सेवकों और भक्तों को बुलाकर स्वप्न की सारी बातें कह सुनाईं। स्वयं प्रभु की आज्ञा हुई है, और वह भी प्रेम-भक्ति-सिद्ध पुरीगोसाईं के मुख से, सभी ने उल्लास के साथ यह कथा मान ली।

अतः निष्ठावान् सेवक द्वारा प्रतिदिन कर्पूर चन्दन का अनुलेपन चलने लगा। उस बार ग्रीष्म ऋतु पर माधवेन्द्र रेमुना में ही प्रभु की सेवा अर्चना लगे रहे। इसके बाद फिर नीलाचल लौट गये।

भक्तशिरोमणि माधवेन्द्र की अमृत कहानी, आगे चलकर श्री चैतन्य के श्रीमुख से बहुधा सुनी जाती। पुरी महाराज का अपूर्व प्रेमोन्माद और अष्ट सात्त्विक विकार दी बाद सुनकर भक्तों के विस्मय की सीमा नहीं रहती।

संन्यास ग्रहण के बाद महाप्रभु नीलाचल जाते समय पथक्रम से रेमुना पधारे थे। यहाँ रहते समय पुरी महाराज की स्मृति और गोपी-नाथ की लीलारंग-कथा उन्हें बार-बार स्मरण हो आती। भक्त कवि कृष्णदास कविराज ने बड़ी श्रद्धा के साथ इसका उल्लेख किया है—

प्रभु कहे नित्यानन्द करह विचार !
पुरी मम भाग्यवान् जगते नहि आर ॥
दुग्धदानच्छले कृष्ण यारे कृपा कैला।
यार प्रेमे वश हञा प्रगट हइला ॥
सेवा अंगीकार करि जगत तारिला।
यार लागि गोपीनाथ क्षीर चूरि कैला ॥
कपूर चन्दन यार अङ्गे चखाइला ॥

—चैतन्यचरितामृत, मध्य ४।

वैधी भक्ति का अनुसन्धान करते हुए माधवेन्द्र ने जीवन साधना शुरु की, उत्तरकालिक जीवन में वही उन्हें रागानुगा प्रेमरसाश्रित भक्ति की चरम साधना तक पहुँचा गई। भागवत प्रचारित प्रेम रस की साधना में वह निमज्जित हुए। अपूर्व महिमा से मण्डित उनका जीवन सार्थक हो उठा।

माधवेन्द्र के प्रशिष्य राय रामानन्द के मुख से भक्तिधर्म का पूर्णाङ्ग परिचय श्री चैतन्यदेव को प्राप्त हुआ था। एक बार दक्षिण देश से लौटकर पुरी धाम आने पर महाप्रभु ने सार्वभौम को कहा था—"दाक्षिणात्य देश जाकर नाना पंथों, नाना धर्म-सम्प्रदायों का परिचय मिला और उनके संपर्क-संसर्ग में आया भी, परन्तु इनमें राय रामानन्द का ही मतवाद मुझे श्रेष्ठ प्रतीत हुआ।"*

कहना व्यर्थ होगा, राय रामानन्द के मुख से जिस साध्य-साधन की व्याख्या सुनकर महाप्रभु मुग्ध हुए थे वह माधवेन्द्रपुरी द्वारा प्रवर्तित प्रेमसाधना का ही परम तत्त्व था।

इसी प्रेम साधना में सिद्धि के साथ-साथ महासाधक माधवेन्द्र के जीवन में व्यक्त हुआ था दिव्यलोक का आलोक-सङ्केत। जीव के उद्धार के निमित्त परमप्रभु के अवतरण की जो अभीप्सा अभी तक वह हृदय में सँजोए आ रहे थे, आज वह स्पष्ट सफल हुई। महावैष्णव की उपलब्धि में प्रभु के आसन्न आविर्भाव की बात पकड़ में आ गई।

किन्तु बार-बार संशय का चक्र चलता, यह आविर्भाव क्या वह प्रत्यक्ष कर पायेंगे? वह सौभाग्य क्या उन्हें वास्तव में प्राप्त हो सकेगा?

अवतार को शीघ्र अवतरित करने के लिए तो कुछ करना चाहिए। इसी से माधवेन्द्रपुरी और नये उत्साह से कठोर तपस्या में संलग्न हुए। झारखंड के सघन वन में दिनोंदिन उनका ध्यान-भजन और भी नयी स्फूर्ति से चलने लगा।

---

* चैतन्यचन्द्रोदय—कविकर्णपूर।

इस दिशा में श्रीपाद के ही निर्देश से उनके सर्वाधिक प्रियशिष्य अद्वैत आचार्य इस समय शान्तिपुर में रहकर अश्रुजल से अन्तर को भिगो-डुबो रहे थे। तिल-तुलसी निवेदन कर श्री भगवान के निकट दिन-प्रतिदिन आकुल प्राणों से प्रार्थना किया करते—"हे कलुषहारी प्रभु ! एक बार आइए, भूभार हरण के लिए आप अवतार ग्रहण कीजिए।"

गौडीय संप्रदाय के वैष्णव कवियों के मतानुसार आचार्य माधवेन्द्रपुरी का संकल्प सिद्ध हुआ। नवद्वीप में आकर वह नवजात गौर-सुन्दर के दर्शन कर गये थे।

माधवेन्द्र की चाह और पाने की आह सब पूरी हो चुकी थी। अब वह पूर्णकाम हो चुके। महाभागवत के मर्त्यजीवन में अब धीरे-धीरे महाप्रयाण की तैयारी शुरू हो गई थी।

अन्तिम शय्या पर लेटे रहने पर भी श्रीपाद माधवेन्द्रपुरी जीव कल्याण की बात सोच रहे थे। उस दिन अपने प्रिय शिष्य मैथिल पण्डित परमानन्द-पुरी को बुलाकर उन्होंने कहा—"वत्स, मेरे विदा होने के दिन अब आ गये हैं। किन्तु मेरे लिए तुम शोक मत करो। वरन् आनन्द ही मनाओ कारण, तुम बड़े भाग्यवान् हो, परमप्रभु के आविर्भाव की आलोक-छटा देख पाओगे और धन्य होगे ! और मैं विधाता के विधान से पहले चल बसूँगा।

अपूर्व भावावेश के बीच महाप्रेमिक माधवेन्द्रपुरी के शेष दिन बीत रहे थे। दिन प्रतिदिन शिष्य-गण आकर उनकी कृष्ण-विरह-विदग्ध मूर्ति के दर्शन करते और विस्मय से अभिभूत होते।

उस दिन कक्ष में कृष्ण-कीर्तन चल रहा था। तीव्र भावावेश के कारण श्रीपाद के शरीर में सात्त्विक भाव के विकार चिन्ह प्रकट देखे जा रहे थे। बहुत काल के बाद वह अर्धचेतना अवस्था में लौटे। बड़ी आकुलता से रोने लगे—"कहाँ हो कृष्ण ? कहाँ हो कृष्ण ? कहाँ हो हमारे प्राणप्रभु ! दयामय, कृपाकर इस अभाजन के प्राण बचाओ !"

मिलन-विरह की यह तरंग-भंगिमा, प्रियतम के लिए मार्मिक प्रेमार्ति, किसकी समझ में आने वाली थी ? इसे जान सकने की शक्ति ही किसे थी ? कृष्ण-रस के उत्ताल सिन्धु में वह कभी डूब जाते और कभी तैरते रहते। जब कभी बाहर तिरने की चेतना आती तो डूबने के लिए ही रो उठते !

मिलन के बाद विरह, विरह के बाद मिलन—प्रेम साधना की यह चिरन्तन आवेग-चंचल दोला, प्रेमार्ति का यह चिर-दहन, ये ही तो महाप्रेमिकों के लिए चिर-काम्य हैं। इस दहन ज्वाला को छोड़ देने पर ही यह जीवन दुर्वह हो उठता है। किन्तु कौन प्रेमज्वाला का स्वरूप समझ सकता है ? कौन होगा उनकी कथा का अनुभवी व्यथित ?

सेवक, भक्त एवं साधक-गण चुपचाप एकटक इस विरहलीला को देखते रहते, और बैठे-बैठे आकाश-पाताल की भावना करते रहते।

रामचन्द्रपुरी माधवेन्द्र के अन्यतम शिष्य थे। ज्ञानमार्गीय वैधी भक्ति-साधना की ओर उनका अधिक आकर्षण था। अन्तिम शय्या पर गुरुदेव की इस विरह-ज्वाला का स्वरुप-दर्शन कर रामचन्द्र अतीव चंचल हो उठे !

प्रश्न के स्वर में कहते—"प्रभु, क्यों इस तरह रो-रो कर आप व्याकुल हो रहे हैं ? अस्वस्थ शरीर को और अस्वस्थ बना रहे हैं ? आप-जैसे ब्रह्मज्ञानी के पक्ष में यह रोदन शोभा नहीं देता ! पूर्ण ब्रह्मानन्द का आप स्मरण करें, हृदय का ताप-दुःख सब दूर होगा। आप स्वस्थ हो उठेंगे।"

श्रीपाद गरज उठे—"अरे तुम महापापी हो, कृष्णप्रेम की रीति तुम क्या जानो ? कृष्णप्रेम और कृष्णलीला की सीमा कहाँ है रे ? हृदय-मंच पर प्रभू को स्थापित कर लिया है, और बुभुक्षु—भोगने का इच्छुक—हो उठा हूँ रसराज की नव-नव लीला के उद,बोधन देखने के निमित्त। अपनी दहन-ज्वाला में खुद-ब-खुद दग्ध हो रहा हूँ। हमारा हृदय जल-जल कर खाक

होता जा रहा है। और हतभागे तुम हो जो मुझे इस समय और मारने पर उतारू हो ! दूर हटो, दूर हटो ! तुम्हारे समान पाखंडी के मुख देखने से जैसे मेरा परलोक नष्ट हो रहा हो !

आत्मम्भरी शिष्य रामचन्द्रपुरी को उसी दिन नतमुख होकर गुरु के पास से विदा होना पड़ा।

इस समय गुरु-सेवा का भार लिया था ईश्वरपुरी ने। दिन पर दिन, रात पर रात, अक्लान्त परिचर्या में वह लगे रहते। कृष्ण-नाम कृष्ण-लीला गुरु को सुनाते रहते। साधन-निष्ठ, सेवा-निष्ठ शिष्य के लिए माधवेन्द्र के भी स्नेह की सीमा न थी। सात्त्विक विचार और घोर भावावेश के बीच अपार सन्तोष के साथ उनपर आशीष और अभयवाणी की वर्षा करते रहते।

महाप्रयाण से पहले दिन की बात है। श्रीपाद ने स्नेहपूर्वक सेवक-भक्त लोगों को समीप में बुलाया और कहा—"वत्स, अब मेरा समय पूरा हो चुका है। जाने से पहले अन्तःकरण से आशीर्वाद देता हूँ, प्रकृत कृष्ण-प्रेम तुम्हारे हृदय में उपजे और तुम श्रीकृष्ण को प्राप्त होओ।"

गुरु की कृपा-निःसृत प्रेमधारा साधक कृष्णपुरी को कृष्णप्रेम के अमृत सागर में परिणत करने में सार्थक हुई। उत्तर काल में इसी सागर का अवगाहन कर धन्य हुए प्रेमदेव श्रीचैतन्य महाप्रभु।

लीला-नाटक की अन्तिम यवनिका गिरनेवाली है। शिष्य और भक्त लोग आँखों में आँसू लिये माधवेन्द्र की शय्या को घेर कर खड़े हैं।

मृदु-मधुर स्वर में महापुरुष के कंठ से उच्चारित हो रहा है उनका स्व-रचित कृष्णविरह का श्लोक—

> अयि दीनदयार्द्र नाथ हे,
> मथुरानाथ कदावलोक्यसे।
> हृदयं त्वदनवलोक-कातरं,
> दयित भ्राम्यति किं करोम्यहम् ॥

अर्थात्, हे दीनदयालु, हे नाथ, हे मथुरानाथ ! कब तुम मुझे अपने दर्शन दोगे ? तुम हमारे चिर-प्रिय हो—प्राणों से भी बढ़ कर प्रियतर। तुम्हारे दर्शन न मिलने के कारण हमारा हृदय कातर हो उठा है। भ्रममयी दशा में मैं गिरा हुआ हूँ। इस समय मैं क्या करूँ ? तुम्हारे सिवा मेरा कोई चारा नहीं।

कृष्णप्रेमतत्व के महान् अधिकारी लोगों के लिए यह श्लोक अत्यन्त प्रिय है। स्वय श्रीचैतन्य भी इस चिरविरह-मूलक श्लोक को पढ़ते-पढ़ते प्रेमोन्मत्त हो उठते थे। अश्रु-कम्प-स्तम्भ-वैवर्ण्य प्रभृति आठों सात्त्विक विकार उनके शरीर में इस समय प्रकट देखकर भक्तगण विस्मय से अवाक् रहते।

माधवेन्द्र के इस श्लोक की प्रशस्ति गाथा कहते हुए दार्शनिक कवि कृष्ण लिखते हैं—

रत्न गण मध्य जछे हय कौस्तुभ मणि।
रस-वाक्य मध्ये तैछे एइ श्लोक गणि।
एइ श्लोक कहियाछेन राधा ठकुराणी।
तार कृपाय फुरियाछे माधवेन्द्र वाणी॥
किंवा गौरचन्द्र इहा करे आस्वादन।
इहा आस्वादिते अधिकारी नाहि ठोठ जन॥

(चै० च० मध्य—४)

माधुर्यमूर्ति कृष्ण के माधुर्य रस का अन्त नहीं, रूपैश्वर्य की भी सीमा नहीं। उसी प्रकार उनके प्रेमिक भक्त के भी रस भोग की समाप्ति नहीं। यह रस जितना आस्वादित होगा, उतना ही उसका उत्स फूटता नजर आयेगा।

अनादि अनन्त माधुर्यविग्रह का आस्वादन भी अनादि अनन्त ही है। इसी से महाप्रेमिक माधवेन्द्र की यह कृष्णार्ति है! इस प्रकार का विरह-उत्ताप, और इस तरह का दारुण दहकता हुवाश !

'अयि दीन दयार्द्र' बोलते बोलते श्रीपाद ने उस दिन अपने दोनों नेत्र मूंद लिये ! भारत की रागानुगा भक्ति साधना के अन्यतम उज्ज्वल ज्योतिर्मय नक्षत्र सदा के लिए अस्त हो गये !

माधवेन्द्र के विपुल अवदान के स्वरूप-निर्णय के प्रकार कविराज गोस्वामी बाद में जो लिख गये हैं, आज भी प्रेमभक्तिमय साधकों के विस्मय को जगा जाते हैं —

पृथिबी ते रोपण करि
गेला प्रेमाङ्कुर।
सेइ प्रेमाङ्कुरेर वृक्ष
चैतन्य ठाकुर ।।

—०—

भक्त लाला बाबू

काम-काज पूरा हो चुका था। कचहरी-घर से लालाबाबू अपने महल की ओर लौट चले थे। तामदान के पीछे-पीछे सिपाही कर्मचारी और सेवक चल रहे थे। लाला बाबू का मन प्रसन्नता से भरा था। मन में सोचते, सायंकृत्य के लिए तो अभी पूरा समय है, थोड़ी देर तक गंगा किनारे घूम लिया जाय तो कैसा हो? फिर तो संकेत मिलते ही पालकी ढोनेवाले उसी ओर मुड़ चले।

पुण्यसलिला भागीरथी कलकल नाद करती बह रही है। अस्तोन्मुख सूर्य की गैरिक किरणें लोल लहरियों पर नृत्य कर रही हैं। निरन्तर गतिशील नदी का शान्त गंभीर प्रवाह एक अद्भुत मायालोक की सृष्टि कर रहा है। लालाबाबू इस नयनाभिराम दृश्य की ओर एकटक निहार रहे हैं। फिर भी 'नयन न तिरपित भेल' की बात चरितार्थ हो रही है।

संकेत पाकर नदी किनारे पेड़ की छाया में पालकी रखी गई। हुक्का भरनेवाला नौकर साथ ही था, तम्बाकू भरकर गुड़गुड़ी प्रस्तुत कर दी गई।

तामदान पर लगी रेशमी चादर हवा में हिलडुल रही थी। बीच-बीच में गंगा की मृदु-मधुर कलकल ध्वनि सुनाई दे रही थी। किम्खाब के तकिये के सहारे पौढ़े-पौढ़े लालाबाबू गुड़गुड़ी से तम्बाकु का कस ले रहे थे। आलस-

मंथर शीतकालीन संध्या का समय उन्हें बहुत सुखद प्रतीत हो रहा था। मुँह से निकलते हुए अम्बरी तम्बाकू का छल्लेदार धूआं ऊपर उठकर वातावरण में छा रहा था। उसके साथ ही लालाबाबू का मन भी भावाकाश में छितरा था।

हठात् बालिका के कंठ स्वर में उनके कानों में यह आवाज सुन पड़ी— 'बाबा, वेला बीत रही है, अब तो उठो। दिन तो अब शेष होने को हैं।"

यह आकुल आह्वान वंकिम गति से हृदय-मर्म को वेधित कर गया।

बिजली करेंट जैसे छू गई हो! लालाबाबू चौंक पड़े! हाथ से गुडगुड़ी की तली गिर पड़ी!

हृदय में एक पर एक प्रश्न उठते गये। सारी सत्ता आलोडित होती गई। लालाबाबू जैसे दिशा भूलकर दिग्भ्रान्त हो गये हों।

'वेला बीत रही है···दिन शेष होने को हैं'—इस यथार्थ को अस्वीकार कैसे किया जा सकता है? उनके मानसचक्षु के आगे यह परम सत्य रूप में उद्‌भासित हो उठा है। गंगा के उसपार क्षितिज छोर में धूसर सन्ध्या सघन हो आई है। उसी तरह उनके जीवन-मंच पर चिर विरति की यवनिका धीरे-धीरे गिरती जा रही है।

यों तो लालाबाबू पर जीवन देवता की असीम कृपा थी, श्री-सम्पदा की कोई कमी नहीं। पुरुषार्थ के सारे द्वार खुले हैं—अर्थ,धर्म,काम,मोक्ष के सभी साधन उन्हें उपलब्ध हैं! किन्तु उन सब सुयोगों का सद्व्यय वह नहीं कर पा रहें हैं। आज जब कि वह जीवन के किनारे आ लगे हैं तो किंकर्तव्यता के प्रश्न का उत्तर वह कैसे दे पाएँगे?

दीवान गंगागोविन्द सिंह के लालाबाबू पौत्र ठहरे। भारत के पूर्वाञ्चल में वैभव और मर्यादा की दृष्टि से उनकी बराबरी का कोई दूसरा व्यक्ति नजर नहीं आता। अंग्रेजों की बसाई तत्कालीन कलकत्ता नगरी में कांचन वैभव और खानदानी रोबदाब में, जोर-जलवा और अमीरी विलास में वह

बेजोड़ माने जाते। किन्तु ये सब विपुल वैभव और विषय-विलास वास्तव में उन्हें कितनी शान्ति और क्या आनन्द दे पाये ?

घर में भगवान् गोविन्द की मूर्ति प्रतिष्ठित है, सेवा-पूजा सदा से होती आई है। लालाबाबू के जीवन को इस इष्ट देवता की कृपा-आलोक से उद्भासित होने में कहीं कोई कमी नहीं देखी गई ! किन्तु क्या उस आलोक के स्पर्श से दिव्य जीवन की ज्योति जग पायेगी ? विषय का अन्ध कोट ही तो वह अब तक बने रहे।

भावना का आलोड़न चलता रहा। फलत: अन्तर में एक दुर्दम संकल्प जागृत हो उठा—नहीं-नहीं, अब इस तरह दिन बिताना वांछित नहीं। इस बार अपने को इष्टदेव के चरणों में अर्पित कर देंगे। वित्त-विभव, यश-मान सब कुछ छोड़कर श्रीवृन्दावन में उपस्थित होंगे। राधा-गोविन्द के लीलाधाम में रहकर वह तप शुरू करेंगे और सांसारिक जीवन की पूर्णाहुति देंगे। इष्ट-देव की सेवा के माध्यम से नित्यलीला रस के आस्वादन का चरम सौभाग्य प्राप्त करेंगे !

वेला बीत रही है, वेला बीत रही है ! केवल यही ध्वनि लालाबाबू के अन्तस्तल में गूंज रही है।

गंगा के सटे किनारे एक मल्लाह की झोपड़ी है। दोपहर को ही काम से थका-मादा वह जो नींद लेने लगा था, वह अभी तक टूटी नहीं है। दिन ढल चुका था, बहुत कुछ काम करने को शेष थे। इसीसे उसकी कन्या व्यग्र होकर उसे उठाने के लिए जोर जोर से हांक लगा रही थी।

वही आकस्मिक हांक-पुकार को सुनकर लालाबाबू की मोह निद्रा एक क्षण में भग्न हो चली। महायोगी का अद्भुत रूपान्तर होने को आया। और जो लालाबाबू अब तक अमीर बाबू थे वह अब महावैष्णव रूप में प्रगट हुए।

तामदान छोड़कर वह तत्क्षण दौड़े-दौड़े धीवर-बालिका के निकट जा पहुंचे। पुलकित शरीर एवं साश्रुनयन होकर बोले— "माँ ! तुम्हारा यह

ऋण मैं कभी चुका नहीं पाऊँगा। तुम्हारी पुकार से मैं बंधनमुक्त हुआ। सचमुच वेला बीतती जा रही है, उसी के साथ मेरी जीवन-बाती भी धीरे-धीरे बुतती जा रही है। सामने अन्धकार फैलता दिखाई दे रहा है। तुम्हारे मुँह से आज राधारानी ने ही मुझे वृन्दावन जाने के लिए हाँक दी है। वहीं मैं जा रहा हूँ। तुम्हें मेरी आशीष है, तुम चिर सुखी रहो।"

महल की ओर लौटते ही लालाबाबू का एक नया रूप देखा गया। जो अबतक महाभोगी महाविलासी रोबदाब वाले बड़े जमींन्दार थे वह अब वैसे नहीं रहे। सर्वस्व त्यागकर, दीन दरिद्र के वेष में वह अपने इष्टधाम श्री-वृन्दावन जाने के लिए कृतसंकल्प हुए।

पत्नी, पुत्र और कुटुम्ब-परिजनों के अनुरोध-उपरोध, रोना-धोना सबकुछ विफल रहे। दैन्य भाव से लालाबाबू ने सब से कहा—"श्रीराधारानी ने कृपा करके मुझे हाँक दी है। उन्होने याद दिला दिया कि वेला बीत चली है। जीवन-मंदिर के दीप एक-एक कर बुझते जा रहे हैं, यह स्पष्ट दीखने में आता है। तुम लोग मुझे अब विषयकूप में पड़े रहने के लिए मत कहो। अब से मेरे जीवन का व्रत होगा, कृच्छ्र साधन, राधा-कृष्ण की सेवा-पूजा और उनका भजन-कीर्तन। प्राणप्रभु वृन्दावन-चन्द्र और राधाकिशोरी के दर्शन जिससे कर पाउँ, वृन्दावन के अलौकिक लीला-माधुर्य रस में मन-प्राण से निमग्न हो पाउँ, यही आशीर्वाद तुम लोग मुझे दो।"

वह रात किसी तरह कटी। दूसरे ही दिन वह भिखारी के वेश में घर छोड़कर निकल पड़े और अपने इष्टधाम का रास्ता पकड़ा।

लालाबाबू का प्रकृत नाम कृष्णचन्द्र सिंह था। अठारहवीं सदी के अन्त में इतिहास-प्रसिद्ध गंगागोविन्द सिंह के वंश में उनके पौत्र रूप में इस महात्मा ने जन्म ग्रहण किया। उनकी ऋद्धि-सिद्धि का अपूर्ण प्रकाश उनके भजन-परायण जीवन में देखा जाता है।

लाला बाबू के पिता प्राणकृष्ण सिंह गंगागोविन्द के पुत्र और एकमात्र उत्तराधिकारी थे। गंगागोविन्द के भाई राधागोविन्द भी प्रचुर सम्पत्ति के अधिकारी थे। निःसन्तान होकर वह मरे। मृत्यु के पूर्व उन्होंने अपने प्यारे भतीजे प्राणकृष्ण को ही अपनी सारी सम्पत्ति सौंप दी। गंगागोविन्द और राधागोविन्द दोनों की सम्मिलित धनसंपत्ति और कुल मर्यादा की विरासत पाकर प्राणकृष्ण भारत के पूर्वाञ्चल में श्रेष्ठ धनी और प्रभावशाली व्यक्ति के रूप में ख्यात थे। आगे चलकर लालाबाबू उर्फ कृष्णचन्द्र सिंह को सारे ऐतिह्य, अभिजात्य और विपुल धन-ऐश्वर्य उत्तराधिकार में मिले।

गंगागोविन्द सिंह अंग्रेज गवर्नर जेनरल वारेन हेस्टिंग्स के प्रिय दीवान थे। लंबे अर्से तक बंगाल, विहार और उड़ीसा के दीवान रहकर उन्होंने असाधारण योग्यता दिखलाई। यहाँ रहकर अपने कुल-परिवार के लिए बहुत बड़ी जमींदारी हासिल की, अपरिमित धन-ऐश्वर्य प्राप्त किया।

पौत्र कृष्णचन्द्र दीवान गंगागोविन्द की आँखों के तारा थे। बड़े स्नेह के साथ पितामह उन्हें लाला कहकर संबोधित करते। उत्तरकालीन जीवन में पितामह संबोधित इस प्यार के नाम से ही वह देश भर में पुकारे जाते थे।

अपने प्राणप्रिय पौत्र लालाबाबू के अन्न-प्राशन में गंगागोविन्द ने धूमधाम के साथ जैसा आयोजन किया था, बंगाल के सामाजिक जीवन के इतिहास में वह चिरस्मरणीय रह गया। बंगाल-विहार-उड़ीसा के बड़े-बड़े पंडित एवं सारे प्रतिष्ठित व्यक्ति इस उत्सव में आमंत्रित हुए थे। दीवान गंगा-गोविन्द ने इस अवसर पर लोगों के यहाँ स्वर्णपत्र पर खुदे हुए अक्षरों में निमंत्रण भेजा था। उस महोत्सव की तड़क-भड़क और भीड़ भाड़ की घटना तो कथा-कहानी के रूप में जनमुख में प्रचलित हो गई।

अनुमानतः १७७५ ई० में लालाबाबू का जन्म हुआ। वंश की एक मात्र थाती, अनिन्द्य सुन्दर इस बालक के जन्म से काँधी के सिंह-भवन में बड़ी

चहल-पहल मची। पितामह गंगागोविन्द आनन्द से उछल पड़ते! किन्तु यह आनन्द वह अधिक दिनों तक नहीं देख सके। पौत्रसुख प्राप्त करने के कुछ वर्ष बाद ही वह परलोक सिधारे।

बालक लाला क्रमशः बड़े हुए। उनकी शिक्षा की व्यवस्था के लिये पिता प्राणकृष्ण प्राणपण से जुटे थे। केवल संस्कृत और बंगला ही नहीं, अंग्रेजी, फारसी, अरबी पढ़ाने के लिए भी खोज-खोजकर विद्वान् रखे गये। उसी तरह उनकी मेधा एवं प्रतिभा असाधारण थी। शिक्षक लोगों का यत्न भी इस ओर बहुत अधिक था। कुछ ही समय के भीतर कितनी ही भाषाएँ उन्हें अधिगत हो गईं।

लालाबाबू का ध्यान विशेषतः संस्कृत और फारसी सीखने की ओर था। इन दोनों भाषाओं में उनकी योग्यता असाधारण थी। पीछे चल कर फारसी के विशेषज्ञ रूप में वह सम्मानित हुए।

संस्कृत शास्त्रग्रन्थों में श्रीमद्भागवत उनका परम प्रिय ग्रन्थ था। इस ग्रन्थ के किसी प्रसंग या श्लोक के संबंध में कोई प्रश्न उठता तो उसका समाधान अत्यन्त व्युत्पत्ति के साथ सोत्साह करते।

मनीषा एवं प्रतिभा के बल से कठिन कठिन श्लोकों की व्याख्या में वह अनायास ही रहस्योद्घाटन करते। जिसे सुनकर जिज्ञासु लोग विस्मय-विमुग्ध होते।

बाल्य काल से ही उनके चरित्र में सत्य के प्रति निष्ठा और ईश्वर के प्रति भक्ति स्फुरित होती। घरेलू देवमन्दिर में जब कभी पुराण-पाठ होता या धर्म सभा बैठती, समझ सकें या न समझ सकें किन्तु अज्ञात आकर्षण वश वह वहाँ जा बैठते। किसी-किसी दिन हृदय में भावप्रवाह उमड़ आता तो वह तन्मय होकर इष्टदेव की प्रतिमा के सम्मुख बैठे रह जाते।

उनके चरित्र की एक और विशिष्टता थी, परोपकार के लिए उत्साह। धनी घर के इकलौते पूत, बीच-बीच में इनके हाथ रुपये-

पैसे बरस आते। फिर यह अपने हाथों अनायास लोगों को बाँट देते। दीन दुखियों की कातर वाणी कान में पहुँचती तो यह अधीर हो उठते।

लालाबाबू की तब किशोरावस्था थी। एक दिन पिता के तहबिल से दान करने चले तो उन्हें बड़ी फजीहत उठानी पड़ी। इस घटना का प्रभाव उनके जीवन में बड़ा गहरा पड़ा।

कन्यादान की चिन्ता से ग्रस्त एक ब्राह्मण उन दिनों उनके द्वार का बहुधा चक्कर लगाया करता। प्राणकृष्ण के दरबार के भीतर पहुँच पाने का कोई सुयोग उसे नहीं मिल पाता। डेवढ़ी द्वार में घुसते ही दरबान मार-मार कर छूटते और उसे बाहर भगा देते।

उस दिन हठात् लालाबाबू की दृष्टि उस पर पड़ गई। पूछते ही ब्राह्मण ने अपनी दुःखगाथा विस्तार के साथ कह सुनाई।

उनका किशोर हृदय, सुनते ही दयाद्रवित हो उठा। आश्वासन देते हुए लाला बाबू बोले—"इस मामूली-सी बात के लिए आप इतनी दौड़-धूप क्यों कर रहे हैं? क्या मालिक से मिलने का मौका आपको नहीं हुआ है? अच्छा तो, मैं स्वयं ही रुपयों की व्यवस्था कर देता हूँ।"

उसी समय खजाने में जाकर आदेश दिया, कन्यादान की चिन्ता से ग्रस्त इस ब्राह्मण को आज ही एक हजार रुपये मिल जाना चाहिए।

बूढ़े खजांची बड़ी मुश्किल में पड़े। मालिक के हुक्म हुए बिना ये रुपये तहबिल से कैसे निकाले जायें! यह तो कभी संभव नहीं है!

उसी समय प्राणकृष्ण के समीप खजांची दौड़े गये। सभी बातें उन्हें कह सुनाईं।

प्राणकृष्ण का चेहरा गंभीर हो उठा। चुपचाप मन ही मन कुछ सोचने लगे। फिर बोले—'देखो, लाला ने जब वचन दे दिया है तो रुपये दे दो। इसके सद्व्यय होने में तो कुछ संदेह नहीं। किन्तु सावधान रहो! ऐसी घटना फिर दुबारे न हो! लाला को साफ समझा देना, भविष्य में फिर ऐसा कोई अनुरोध न किया करे। आगे फिर आदेश करे तो उसकी मान्यता

नहीं होगी। और उसे कह देना—आगे अपने सामर्थ्य से कोई रोजगार करे, जमीन्दारी की आमदनी बढ़ावे। फिर उसके बाद ही कोई दान—ध्यान करे। तभी मान्यता होगी।'

दरिद्र ब्राह्मण को रुपये तत्काल दे दिये गये। उसके साथ ही लाला को उनके पिता का मन्तव्य खजांची ने सुना दिया।

तरुण लालाबाबू के हृदय में वह बात तीर की तरह चुभ गई।

प्रबलप्रतापी कोटिपति जमीन्दार गंगागोविन्द सिंह का वह पौत्र ठहरा। सम्पत्ति का एकमात्र उत्तराधिकारी। लोकहित के लिए भी इस विपुल सम्पत्ति से एक पैसा दान करने का अधिकार भी उसे नहीं! यह कैसी विचित्र और असंगत बात है!

हृदय में तभी दुर्जय संकल्प जाग उठा। अच्छा, तब यही हो। उपार्जन का कोई रास्ता फिर अपनाया जाय। और अब से बाप-पितामह की संचित धनराशि से एक कौड़ी भी वह ग्रहण नहीं करेंगे। महल के भोग-विलास के प्रति भी वितृष्णा हो गई। अब से वह अपने पैरों पर ही खड़े होंगे।

माँ के आँसू भरे नेत्र, पिता का उदास चेहरा, सब उस दिन व्यर्थ रहा। और लालाबाबू ने अविलंब महल को छोड़ दिया। और वर्धमान शहर जा पहुँचे। फारसी के अच्छे जानकार रहने के कारण, काम मिलने में देर न लगी। वर्धमान कलक्टरी में सिरिस्तेदार के रूप में लालाबाबू का नया कर्म-जीवन आरम्भ हुआ। उन्होंने काम में असाधारण दक्षता दिखलाई, इसलिए उत्तरोत्तर पदोन्नति होती गई।

इस बीच उन्होंने विवाह भी किया। यथा समय एक पुत्र के पिता भी बने।

१८०३ ई० में उड़ीसा प्रान्त अंग्रेज सरकार के अधीन हुआ। लालाबाबू उसके बाद वहाँ 'जरीप' (पैमायशी) के काम में उनकी नियुक्ति

हुई फिर अपनी दक्षता और कृतित्व के बल पर दीवान का सर्वोच्च पद उन्हें प्राप्त हुआ।

सरकारी काम के सिलसिले में इस बीच लालाबाबू का परिचय उड़ीसा के राजा के साथ हुआ। शीघ्र ही एक विशेष घटना-क्रम से यह परिचय और घनिष्ठ होता गया।

पुरी-मन्दिर को जो वार्षिक राजस्व सरकार को देना पड़ता था, वह कुछ अधिक समय से बाकी पड़ गया। राज्य सरकार के प्रभारी कर्मचारी ने इसके लिए श्रीमन्दिर को नीलाम पर चढ़ाने की व्यवस्था की। सौभाग्य क्रम से नीलाम के ठीक पहले दिन यह बात लालाबाबू के कानों में पड़ी। उनके मन में इसके लिए बड़ी पीड़ा थी। प्रभु का यह पवित्र श्रीमन्दिर सब लोगों के लिए आराध्य था, समग्र भारत के लिए गौरव की वस्तु था। सरकारी कानून के जाल में पड़कर इसकी मर्यादा पर आघात पड़नेवाला था। यह बड़ी लांछना की बात थी

कर्तव्य स्थिर करने में लालाबाबू को देर न लगी। तत्काल उन्होंने नीलाम रोक दिया। सरकारी व्यवस्था को रद्द करने के दायित्व और उसके परिणाम भुगतने की प्रस्तुति में उनका मन किंचित भी विचलित न हुआ।

इस गंडगोल का नतीजा यह हुआ कि मन्दिर के कर्ता-धर्ता चेत गये और दूसरे ही दिन राजस्व का पाई-पाई बकियौता अदा कर दिया गया। सब ने सुख की साँस ली।

लालाबाबू का नाम लेकर चारो ओर लोग धन्य-धन्य कह उठे। उनके सत् साहस और सुविवेक के कारण प्रभु का मन्दिर अमर्यादित होने से बच गया, इस कारण पुरी के राजा भी बार-बार इनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापन करने लगे।

इस काम के पुरस्कार स्वरूप पुरी के राजा ने अपनी जमीन्दारी के अन्तर्गत कुछ अंचल उन्हें अर्पित किया। आज तक उसी स्थान से लाये गये नीम की लकड़ी से ही दारुब्रह्म श्री जगन्नाथ जी का कलेवर परिवर्तन

किया जाता है। यह नव कलेवर धारण उत्सव प्रत्येक बारहवें वर्ष में पुरीधाम में अनुष्ठित होता है।

जगन्नाथजी के विग्रह दर्शन और सान्निध्य लालाबाबू के अंतर में प्रेम-भक्ति के बीज वपन करते गये। प्रेमावतार श्रीचैतन्यदेव के लीलास्थल का महात्म्य दिन-दिन उनके अंतर में स्फुरित होता गया। भक्तिशास्त्र के पठन-चिन्तन नाम-कीर्तन के श्रवण से आन्तरिक जिज्ञासा निरन्तर बढ़ती गई।

इसी समय एक बार तीर्थाटन की इच्छा से वह वृन्दावन पहुँचे। श्रीकृष्ण की मोहन-मूर्ति और लीला भूमि के दर्शन से उनका हृदय निर्मल आनन्द से भर गया।

व्रज-मण्डल के गहन वनांचल में तितिक्षावान् और भजन परायण वैष्णव रहा करते हैं। उनकी भजन-गुफा और कुटिया देखने के लिए वह वहुधा जाया करते।

दिन पर दिन उनके हृदय में वैराग्य-उदासीनता की हवा बहती रहती। मन में कई प्रश्न उठते रहते—भोगैश्वर्य, यश, मान कुछ भी चिरस्थायी नहीं है। प्रकृत शांति का समाधान तो इस पथ से चलकर नहीं मिल सकता। तब क्यों उस मायामृग के पीछे दौड़ते हुए अपने को विपर्यस्त किया जाय ?

अमृतमय जीवन की लालसा बीच-बीच में लालाबाबू को व्यग्र-उत्कंठित कर जाती। किन्तु उपाय क्या ? संसार का दायित्व और कर्तव्य उनके अशेष थे। उसे शेष किये विना, वहाँ कैसे वसने की वासना पूरी की जा सकती है ? आनन्दमय वृन्दावनधाम छोड़ कर कुछ दिनों में लालाबाबू उड़ीसा लौट आए। और फिर कर्म जीवन के स्रोत में बहने लगे !

इन्हीं दिनों एक दिन संवाद पहुँचा, पितृदेव प्राणकृष्ण सिंह परलोक सिधार गये हैं। पिता की वियोगकथा उनके मन को तीक्ष्ण

शूल की तरह बेंध गई। स्मरण हो आई, दरिद्र ब्राह्मण के कन्यादान के प्रसंग अर्थ दान की घटना। इसी तुच्छ घटना को लेकर चिरकाल के लिए घर छोड़कर वह चले आये थे। पीछे पिताजी अनुताप करते हुए कितने रोये-धोये, बारंबार अपने एकलौते लाडले लाला से अनुरोध करते रहे--एक बार भो भेंट-मुलाकात कर जाओ। किन्तु वह अनुरोध उनका निभ न सका। वह आशा उनकी पूरी न हो सकी! अभिमानी पुत्र दूर ही दूर रह गया, कभी लौटा नहीं।

लालाबाबू इस दुःख का बोझ सँभाल नहीं सके। पुराने दिनों की बात यादकर आँखों से आँसुओं की धारा बह चली।

पिता के श्राद्ध कार्य सम्पादन के लिए इस बार वह कलकत्ता लौट आये। बड़े समारोह से श्राद्धादि क्रिया दान संपन्न हुआ।

पिता-पितामह जो विशाल जमींदारी और धन-सम्पत्ति छोड़कर गये, लालाबाबू ही उसके एकमात्र उत्तराधिकारी हैं। इन सब विषय—आशय, जाल-जंजाल की रक्षा करनी ही होगी। इसके अतिरिक्त भी अनेक सांसारिक उत्तरदायित्व निभाने होंगे। इसीसे लालाबाबू उड़ीसा वसवास को उठाकर, अब स्थायी रूप से कलकत्ता ही रहेंगे।

जीवन-प्रवाह इस बार दो धाराओं में विभक्त होकर बह रहा है। बाहर से वह रोब-दाब वाले प्रबल जमीन्दार हैं, वैषयिक क्रियाकलाप ओर विलास-वासना में लगे विषयी पुरुष हैं। दूसरी ओर अन्तरंग में बह रही है भक्ति की प्रच्छन्न धारा। प्रायः देखा जाता, विशेषकर उनका हृदय विग्रहसेवा, पुराण-भागवत श्रवण और दान-ध्यान के बीच जीवन की सार्थकता को खोजता फिरता है।

इसी समय में, उसदिन एफ अमृत लग्न में धीवर-कन्या के आकुल कंठ-स्वर से उनका चैतन्योदय हुआ। आसक्ति का बंधन अज्ञात रूप से कब कैसे खुल गया! कृष्ण नाम जपते-जपते लालाबाबू कृष्णधाम वृन्दावन जा पहुँचे।

भक्तों का प्रिय धन यही वृंदावन धाम है। इस महातीर्थ का रज-कण श्रीकृष्ण के चरणस्पर्श से चिर-पवित्र रहा है। यहाँ के वन, पर्वत, यमुना-पुलिन आकाश-वातावरण सर्वत्र दिव्य जीवन की स्मृतियाँ जुड़ी हुई हैं। केवल इतना ही नहीं, आज भी राधा-माधव की अलौकिक लीला यहाँ अव्याहत चल रही है। भौतिक वृन्दावन के अणु-परमाणु में आध्यात्मिक चिर-मधुर वृन्दावन ओतप्रोत है। उसी दिव्य दर्शन की कामना लालाबाबू के मन-प्राणों में रमी है।

त्याग-तितिक्षा और कृच्छ्रव्रतमय साधक का जीवन उन्होंने स्वेच्छा से वरण किया था। पत्नी कात्यायनी देवी रो-रो कर आकुल हो रही थी। पुत्र नारायणचन्द्र और आत्मीय स्वजन कुटुम्ब-परिवार की मानसिक पीड़ा असीम थी। बहुत से लोग वृन्दावन जाकर उन्हें मनाने लगे— धाम में रहकर इष्टदेव की सेवा में सारा जीवन बिता देना चाहते हैं। यह तो अच्छा है, बहुत ऊँची बात है। किन्तु प्रभु की इस सेवा-अर्चा के लिए सुव्यवस्था करना भी तो आवश्यक ही है। यह बात आप क्यों नहीं सोचते !"

"मैं तो अकिंचन व्यक्ति ठहरा, प्रभु की सेवा के लिए उपयुक्त व्यवस्था मेरे बूते के बाहर की बात है। जो कुछ भिक्षान्न मिलेगा, उसे लेकर ही नित्य किसी तरह दो दाने भोग-प्रसाद निवेदन करूँगा।"—भक्त लालाबाबू करुण कण्ठ से उत्तर देते।

दीवानजी जोर देते—"हजूर, यह कैसे होगा? कृपामय प्रभु कृष्णचन्द्र तो अपनी यह व्यवस्था पहले से ही कर-कराकर रखे हैं। आपलोगो का तीन पुरुषों से धन-वैभव संचित होता आ रहा है, वह सब तो परम प्रभु का ही दिया हुआ है। उन्होंने कृपा करके स्वयं अपने सेवक का निर्धारण कर रखा है। षोडशोपचार पूजन-अर्चन की जिम्मेवारी सौंप चुके हैं। वह सब व्यवस्था आप क्यों तोड़ने चले हैं? ईश्वर के सेवक रूप में आपको जो धन-संपत्ति मिली है, उसे क्यों नहीं सेवा कार्य में लगाते ?"

लालाबाबू बहुत कुछ नर्म हुए। सोचा—सच तो है, प्रभुका दिया हुआ धन उन्हीं की सेवा में लगे, इसमें आपत्ति की बात क्या है ? इसके अतिरिक्त वृन्दावन के इन मन्दिरों की भग्नावस्था देखकर, श्री विग्रह की पूजा-अर्चा में दैन्य-दुर्दशा देखकर वह स्वयं अधीर हो रहे थे। यह सब ध्यान मे आते ही इनके दोनों मुँदी आँखों से आँसू झरझर गिरने लगे। पुत्र और पत्नी का अंशवाद देकर, उनके अपने हिस्से में जो कुछ धन-सम्पत्ति पड़ेगी उसे लगा देने से अनायास ही कृष्णसेवा का आयोजन वह कर पायेंगे। उसके साथ ही वृन्दावन के सेवानुष्ठान का उज्जीवन भी उन्हें आकांक्षित हैं। इसके माध्यम से संपूर्ण देश में भक्तों के बीच सेवा-पूजा का आग्रह-उत्साह बढ़ेगा। जनकल्याण की दृष्टि से यह सर्वथा उपादेय होगा। क्या इस कल्याणकारी कार्य के लिए प्रभु उन्हें ही निमित्त बनाना चाहते हैं ?

लालाबाबू को राजी होना पड़ा। यह तय पाया कि अपने निर्वाह के लिए तो मधुकरी वृत्ति ग्रहण करेंगे, पर स्टेट से मिलने वाला एक-एक पैसा प्रभु की सेवा में खर्च होगा। केवल मन्दिर निर्माण और विग्रह प्रतिमा की सेवा-पूजा ही नहीं, व्रजमंडल में जहाँ जो पवित्र साधनपीठ है, कुंड और स्नान घाट हैं—जहाँ जो नष्ट-ध्वस्त हो रहे हों, देखरेख के अभाव में बिगड़-बिखर रहे हों, उन सबों के लिए इनका वित्तसंभार नियोजित होगा। प्रभु कृष्णचन्द्र के लीला-क्षेत्र वृन्दावन के उन्नयन के सेवा-कार्य में यह समस्त अर्थ-सामर्थ्य लगा देंगे।

लालाबाबू ने संकल्प किया, इस महाधाम में इष्टदेव का भव्य मन्दिर निर्माण करेंगे। और ऐसी दिव्य प्रतिमा स्थापित करेंगे जो महान् जाग्रत् एवं महाभाव के उद्दीपक सिद्ध हों। सेवा-पूजा के साथ इस मन्दिर में शत शत साधु-महात्मा एवं दरिद्र नर-नारी गण महाप्रसाद पाते रहें। यहाँ का अन्नसत्र शत-शत बुभुक्षुओं का उदरभरण करता रहे।

थोड़े ही दिनों में बंगाल-एवं उड़ीसा की अपनी जमीन्दारी से पच्चीस

लाख रुपये उनके पास पहुँच गये और इस विपुल अर्थराशि के सद्व्यय के लिए एक विराट् योजना बनी।

शास्त्र-पुराण और सिद्ध-महात्मा के कथनानुसार श्रीराधा-कृष्ण की लीला-संक्रमित स्थानों को लालाबाबू ने पहले चिह्नांकित किया। फिर इन सब पवित्र तीर्थस्थलों को स्वायत्त करने के लिए चुयोरटी परगना एक-एक कर उन्होने खरीद लिया।

वृन्दावन से लेकर सेतुबंध रामेश्वर तक उद्घोषित करा कर प्रचरित किया कि प्रभु के सेवक लालाबाबू श्रीराधा-कृष्ण के लीला-पवित्र स्थानों एवं तत्समीपी अंचलों को खरीदने के इच्छुक हैं। जो कोई इन स्थानों को हस्तान्तरित करना चाहें, उन्हें उचित मूल्य प्रदान किया जायगा।

विक्रेता गण अविलंब एक-एक कर मिलते गये एवं लालाबाबू के कर्मचारी गण उत्साह के साथ जमीन-जायदाद खरीदते गये। इस तरह जमीन जायदाद के द्वारा अर्जित सारी आय श्रीविग्रह की स्थापना में. मन्दिर धर्मशाला निर्माण में और देव-सेवा के विधिविधान में लगाई गई।

लालाबाबू की लोकप्रियता एवं प्रतिपत्ति कुछ स्थानीय लोगों के मन में खटकने लगी। ईर्ष्या में आकर उन्होंने लालाबाबू के विरुद्ध लोगों को उभाड़ना शुरू किया। आरोप यह लगाया गया कि वह छल-बल से, कपट-कौशल से व्रजमंडल की बहुत-सारी जमीन जायदाद हड़प रहे हैं और विक्रेताओं को न्यायोचित मूल्य से वंचित कर रहे हैं।

यह बात जब लालाबाबू के कानों में पहुँची तो उन्होंने आदेश जारी किया—'यहाँ से सेतुबंध तक ढोल पीट कर घोषणा करवा दें, जो लोग लालाबाबू के हाथ जमीन-जायदाद बेच चुके हैं यदि उनको यह धारणा हो कि उसका उपयुक्त मूल्य नहीं मिला है तो लालाबाबू उसे लौटा देने को प्रस्तुत हैं। इस सम्बन्ध में कोई किसी प्रकार की हिचक या संकोच-द्विधा न रखे।'

इस विज्ञप्ति के बाद लोगों के मन से सारा संशय-संदेह दूर हो गया। और फिर एक भी विक्रेता मूल्य लौटाने के लिए सामने नहीं आया।

वृन्दावन पहुँचकर, पहले तो लालाबाबू भरतपुर प्रसाद में आ टिके। भरतपुर के महाराज ने आग्रह के साथ उन्हें आमंत्रण भेजा और अपने महल में उन्हें रहने की व्यवस्था कराई।

कुछ समय बाद की बात है, लालाबाबू उन दिनों इष्टविग्रह के लिए एक विशाल मन्दिर के निर्माण-कार्य का आयोजन कर रहे थे। जयपुर-अंचल से कीमती पत्थर मंगाये जा रहे थे। काम के सिलसिले में उन्हें कभी कभी राजस्थान जाना पड़ता था। इसी बीच सुयोग पाकर वह भरतपुर के महाराज से मिले।

राजा साहिब के साथ इस प्रकार घनिष्ठता रहने के कारण एक बार वह विपत्ति के जाल में पड़े भी। इष्ट-मन्दिर निर्माण करने के पहले यह जो विपत्ति आई वह जैसे इष्टदेव द्वारा एक जाँच रूप में ही थी।

इस समय राजपुताने के राजाओं के साथ अंग्रेजों की एक सन्धि-वार्ता चल रही थी। भरतपुर के राजा प्रस्तावित सन्धि-हस्ताक्षरियों में अन्यतम थे। किन्तु किसी कारणवश वह हस्ताक्षर करने में असहमत हो गये। अंग्रेज पक्ष को यह स्वीकार्य नहीं था। वे सब संकट में पड़े।

कुछ अंग्रेज कर्मचारियों के मन में इस समय एक सन्देह उठ खड़ा हुआ। उनकी धारणा में भरतपुर-राज के इस अस्वीकार–तिरस्कार के मूल में इनके मित्र लालाबाबू की कुमन्त्रणा ही थी।

इस्ट इण्डिया कम्पनी की ओर से सर चार्ल्स मेटकाफ उस समय दिल्ली-दरबार में रेजिडेन्ट पद पर अवस्थित थे। सन्धिपत्र सम्पादित करने का भार अधिकारियों ने उन्हीं पर न्यस्त किया था। पूर्वोक्त कर्मचारियों ने उसे बताया कि राजा तो हस्ताक्षर करने को प्रस्तुत थे किन्तु लालाबाबू ने उन्हें उलटा-सीधा समझा कर बाधा उपस्थित कर दी है।

मेटकाफ इस बात पर आग बबूला हो गया। इस बात की वास्तविकता जानने के लिए उसी समय उसने मथुरा के कलक्टर को निर्देश किया। जिला अधिकारी एक बड़ा खूँखार व्यक्ति था। लालाबाबू को कैद कर उसने दिल्ली को चालान कर दिया। वहीं पर फैसला कियेजाने की व्यवस्था हुई।

सम्पूर्ण ब्रज-मण्डल में गिरफ्तारी की यह खबर दावाग्नि की तरह फैल गई। हजार-हजार स्त्री-पुरुष उस दिन इस त्यागव्रती वैष्णव के पीछे-पीछे चले।

दिल्ली पहुँचते पहुँचते देखा गया, लोगों की भीड़ सागर की तरह उमड़ पड़ी थी। लालाबाबू की ऐसी लोक-प्रियता और व्यक्तित्व का प्रभाव देखकर मेटकाफ बड़ी चिन्ता में पड़ा।

मामला साबित करने के लिए गवाही चाहिए, ठोस सबूत चाहिए। लालाबाबू के पिछले कार्यकलाप का लेखा-जोखा भी चाहिए। इस काम का भार चार्ल्स मेटकाफ ने अपने फारसी-लेखक शान्तिपुर के देवी प्रसाद राय के ऊपर दिया।

राय महाशय द्वारा जाँच विवरण का परिणाम यह मिला कि लालाबाबू और उनके पूर्वज चिर काल से कंपनी के उपकारी रहे हैं, सदा सब क्षेत्रों में उन लोगों का अव्याहत सहयोग कंपनी को मिलता रहा है। इस जानकारी के बाद मेटकाफ की आँख खुली और उसने सारे अभियोग तुरत वापिस कर लिये।

लालाबाबू के त्याग-वैराग्य की कथा सुनकर मेटकाफ की दिलचस्पी इतनी बढ़ी कि एक दिन अपने यहाँ लालाबाबू को आमंत्रण के साथ ले आया। बातचीत के सिलसिले में कहा—"इतने दिनों तक तो आप दीवान पद पर कर्मव्यस्त जीवन बिताते रहे। सरकार और सर्वसाधारण जनता के कितने हित-उपकार करते रहे। अब क्यों और कैसे यह सब छोड़छाड़ कर आप चुपचाप बैठे रह पायेंगे ?"

लालाबाबू ने उत्तर में कहा—"क्यों ? काम तो मैंने बिलकुल छोड़ नहीं दिया है। नई नौकरी मैंने कर ली है जो।"

"वह कौन सी नौकरी ? किस की नौकरी ?"
"सब से बढ़कर जो बड़ा मालिक है उसकी।"
"वह है कौन ? खुलासा तो कहिए।"

कौतुक की हँसी हँसते हुए लालाबाबू बोले—"नये मालिक का नाम है श्रीकृष्णचन्द्र। और मेरे लिए निरन्तर काम यही है, उनका नाम कीर्तन जप और भजन।"

मेटकाफ जिज्ञासा की दृष्टि से देखते रहे। मुन्सी ने उन्हें समझाया, श्रीकृष्णचन्द्र वैसे ही भगवान ठहरे, जैसे ईसाई लोग ईश्वर को परमपिता कहकर ध्यान-स्मरण करते हैं।

ईस्ट इंडिया कम्पनी के अधीन लालाबाबू बहुत दिनों तक काम कर चुके थे। बंगाल, बिहार एवं उड़ीसा के दीवान-पद पर रहकर उन्होंने अपनी दक्षता का पूरा परिचय दिया था। अंग्रेज अधिकारी इसी से प्रसन्न होकर उन्हें खिताब देने के लिए दिल्ली दरबार में सिफारिश भी कर चुके थे। सम्राट् ने लालाबाबू को महाराजा की उपाधि देनी चाही, पर लालाबाबू ने विनयपूर्वक इसे अस्वीकार किया।

इसके बाद लालाबाबू वृंदावन लौट आये। जोरशोर से इष्टदेव के मन्दिर का निर्माणकार्य इन्होंने आरम्भ किया। धीरे-धीरे यह विशाल मन्दिर पूरा हुआ। अन्तर्गृह में बड़े समारोह के साथ मुरलीधर श्रीकृष्णचन्द्रजी की नयनाभिराम प्रतिमा प्रतिष्ठित हुई।

मन्दिर का खर्च चलाने के लिए ब्रजमंडल की जमीन्दारी का बहुत बड़ा भाग निर्धारित कर दिया गया। अतिथिशाला के प्रसाद-भोजन वितरण के लिए उदार व्यवस्था की गई। वहाँ प्रतिदिन सैकड़ों व्यक्तियों के लिए अन्न-संस्थान खोल दिया गया। साधु-संत एवं दरिद्र जनगण के निष्ठावान सेवक इस महावैष्णव की प्रशंसा करते अघाते नहीं थे। लालाबाबू के सदाव्रत की बात ब्रज मंडल के कोने-कोने में फैल गई।

इतनी बड़ी आडम्बरपूर्ण सेवा-पूजा के मध्य लालाबाबू स्वयं निःस्व वैष्णव की भाँति रहते थे। श्रीविग्रह के भोग लगने के बाद दिनान्त में जो कुछ प्रसाद मिलता मुख में डालते। उसके बाद निरन्तर फिर ठाकुर जी के नाम कीर्तन में और भजनभाव में लीन रहते।

भक्त लालाबाबू के अन्तर में यह बड़ी आशा-लालसा थी कि उनके स्थापित श्रीविग्रह शीघ्र जाग्रत् उजागर हों! उनकी कृपा जाति वर्ग-निर्विशेष मानव मात्र के ऊपर बरस पड़े, इस लिए दिनोंदिन निरन्तर रूप से मन्दिर पर बैठकर ठाकुर की सेवा में कातर भाव से प्रार्थना करते। उनके नयनों से झर-झर आँसू बहते रहते।

एक-एक दिन रोते-बिलखते व्याकुल हो जाते। अश्रु गद्‌गद कंठ से बोलते रहते—"हे ठाकुर, अपने श्रीविग्रह में तुम नित्य लीलारत हो, यह तो जानता हूँ। किन्तु यह लीला एक बार इस अधम को भी दिखलाओ। इस अन्ध अभागे की आँख खोल दो। दयामय, सर्वजन समक्ष तुम जाग्रत् हो उठो। तुम्हारी कृपा की अजस्र धारा चतुर्दिक् विस्तारित हो। और यह देखकर मैं धन्य होता रहूँ।"

लालाबाबू के इस क्रंदन और आकुल आवेदन के प्रति ठाकुर अनसुने न रहे। अधिक दिन बीतने नहीं पाये, उनके प्राणप्रिय कृष्णचन्द्र के श्रीविग्रह के माध्यमसे प्रभु की दिव्य लीला स्फुरित होने लगी। यह लीला जितनी अलौकिक थी उतनी ही दया करुण से रसपूर्ण!

माघ का महीना था। वृंदावन में जोर का जाड़ा पड़ रहा था। सवेरे से ही ठाकुर की षोडशोपचार पूजा चल रही थी। मन्दिर के एक कोने में बैठे लालाबाबू मन-प्राण से एकतान होकर नयन-मन-मोहन श्रीमूर्ति की छवि निहार रहे थे। भावावेश के कारण सम्पूर्ण शरीर रोमांच कंटकित हो रहा था। दोनों आँखों से कपोलों को नहलाते दहलाते झरझर आँसू बह रहे थे।

जरा प्रकृतिस्थ होते ही उनके ही मन में एक अद्‌भुत विचार दौड़ गया! निष्ठा-सहित विधि-पूर्वक मन्त्र पाठ के साथ पुजारी ने

श्रीविग्रह की प्रतिष्ठा कर ही दी है। एक बार तब परीक्षा कर के क्यों न देख लिया जाय कि सत्य ही ठाकुरजी की प्रतिमा में प्राणों का संचार हुआ है या नहीं ?

उसी क्षण भोग-राग के उपकरण में से माखन का गोला उन्होंने उठा लिया। पुजारी के हाथ में देकर कहा—"इस माखन को लेकर श्रीमूर्ति के शीर्ष-तालु पर डाल दीजिए तो। हमारे प्रतिष्ठित श्रीकृष्ण भगवान् प्राणवान हो चुके हैं या नहीं, हमारी सेवा-पूजा सार्थक हो सकी है या नहीं, आज उसकी परीक्षा लेना चाहता हूँ।"

पुजारी चौंक गये। लालाबाबू क्या अपने में हैं या भावावेश में आकर यह प्रस्ताव कर रहे हैं ? संकोच के साथ बोले—"आपके आदेश का पालन तो निश्चय करूँगा। किन्तु इस प्रकार की परीक्षा किसीने की हो, ऐसा तो कभी न सुना और न देखा।"

"पुजारी जी, यदि श्रीविग्रह चैतन्यमय हैं तो उनके जड़ प्रतिमा-शरीर में भी चैतन्य-चिह्न क्यों नहीं पाया जायेगा ? इस प्रतिमा काया में उत्ताप एवं प्राणों के स्पन्दन क्यों न रहेंगे।" लालाबाबू का प्रश्नात्मक उत्तर था।

पुजारी समझ गये, और कुछ कहना व्यर्थ है। मक्खन का गोला विग्रह के शीर्ष पर चढ़ा दिया। पूजा-अर्चना फिर पहले की भाँति चलने लगी।

कुछ क्षणों के बाद सब के सामने विस्मय में डालनेवाली घटना का दृश्य प्रकाश में आया। देखते-देखते ठाकुरजी के ऊपर डाला गया मक्खन का शीत-कठोर पिंड धीरे-धीरे गलता जा रहा है, सारी प्रतिमा, माखन-रस से ओत-प्रोत हो उठी है ?

सभी उपस्थित लोगों की समझ में आ गई, इस बर्फीले शीत काल में मक्खन स्वाभाविक रीति से गल जायेगा, इसकी कोई संभावना नहीं है। निश्चय किसी अलौकिक कारण से ही विग्रह की ब्रह्मतालु उष्ण हो आई है नहीं तो ऐसा कांड कभी घटित नहीं हो सकता।

मन्दिर के पुजारी और सेवकगण इस दृश्य को देखकर आनन्द से जयजयकार कर उठे।

लाला बाबू का सारा शरीर मन-प्राण आनन्द रस से उद्वेलित हो गया! भावावेश में काँपते-काँपते मन्दिर की चौक पर मूर्छित हो पड़े!

और एक दिन की घटना है। उस दिन लालाबाबू के दिमाग को और नई झोंक झकझोर गई। श्रीमुर्ति के मस्तिष्क तल में यदि ताप-उष्णता संचरित हो सकती है तो उनकी नाक से साँस क्यो नहीं चल सकता? एक बार देखा क्यों नहीं जाय, परिणाम क्या निकलता है?

आदेशानुसार मन्दिर के सेवक दौड़कर रूई ले आये। लालाबाबू ने पुजारी से कहा, "आप कृपाकर श्री विग्रह की नासिका के तले इस रूई के गोले को कुछ देर तक रखे रहें। श्वासोच्छ्वास चल रहा है या नहीं, इसे प्रत्यक्ष करना चाहता हूँ।

मंद हँसी के साथ पुजारी ने विचार प्रकट किया—'उस दिन श्रीमूर्ति के ब्रह्मांड पर रखा गया मक्खन का गोला जब गल गया तभी आप को चैन मिली थी। देखता हूँ, आप का कौतूहल अभी तक निवृत्त नहीं हुआ है।"

"यह अधम चिरकाल तक विषय का कीड़ा बना रहा है। इसीसे संशय मिट नही सका है। प्रभु के चरणों में अभी तक स्थिर विश्वास नहीं जम पाया, अतः स्वभावतः बारंबार अलौकिक ऐश्वर्य देखने का कुतूहल जाग उठता है। पर संशय-कौतूहल अभी जो शेष है वह क्रमशः स्वयं निवृत होता जायगा। आप जाकर देखें साँस सचमुच चल रही है या नहीं?"

रूई का गोला श्रीविग्रह की नासिका के नीचे रखा गया। साथ ही, देखा गया प्राणमूर्ति की नाक के छिद्र से, सजीव शरीर की भांति, श्वासोच्छ्वास जारी है! हाथ में रखा हुआ रूई का गोला रह-रहकर हिल-डुल रहा है!

श्री ठाकुरजी की इस कृपा-लीला को देखकर लालाबाबू के आनन्दोल्लास की सीमा न रहीं। प्रेम-प्रमत्त होकर मन्दिर की रंगशाला में बार-बार दन्डप्रणाम देने लगे।

वृन्दावन में रहकर लालाबाबू भजनानन्द और ध्यान-जप में दिन-रात लगे थे। एक दिन इष्टदेव स्वप्न में दिखाई दिये। कहने लगे—"लाला, तुम्हारी सेवा स्वीकार करने के बाद से मैं आनन्द से हूँ। विशाल मन्दिर, पूजा-सेवा, भोग-राग और अन्न-सत्र सभी कुछ है। और साथ ही तुम्हारी दैन्य भक्ति भी है। किन्तु इतना सब कुछ होते हुए भी, मुझे कुछ और चाहिए। तुम मुझे और कुछ भीख में दे सकते हो?

लालाबाबू चौंक उठे! विश्व ब्रह्माण्ड के जो स्वामी हैं उनके श्रीमुख से यह कैसी बात निकल रही है! उन्होंने उत्तर में कहा—"प्रभु, और जो कुछ कहिए, भीख की बात आप के मुँह से अच्छी नहीं जँचती। मेरा उद्धार श्रीचरणों में है, मुझे लगा रहने दजिए। बात जो है, कृपया खुल कर कहिए।"

"क्यों जी, क्या तुम जानते नहीं, मैं सदा का भिखारी हूँ? जीवों के द्वारे-द्वारे प्रेम की भीख लेने क्या मैं दौड़ता-फिरता नहीं रहा हूँ? किन्तु रहने दो यह सब तत्त्व-कथा। मेरे लिए इस बार तुम्हें एक नूतन मन्दिर का निर्माण करना होगा।"

"नया मन्दिर? प्रभो! जो पचीस लाख रुपये तुम्हारी सेवा के लिए घर से ले आया था वह सारा का सारा चुक गया। सर्वस्व चढ़ा चुका हूँ। अब और एक मन्दिर कैसे बना सकूँगा भगवन्!"

"लाला, जिस मन्दिर के निर्माण की बात मैं कह रहा हूँ वह साधक के सर्वस्व चुकने के बाद ही तो प्रस्तुत किया जाता है।"

लालाबाबू सोचने लगे, यह कैसी उलझन में डालने वाली प्रहेलिका जैसी बात है!

श्रीठाकुर हँसते हुए बोले—"लाला, सर्वस्व दान करने के बाद ही तो

अपने हाथों भक्तहृदय का श्रीमन्दिर गढ़ा जाता है। वही मन्दिर तो मेरा परमप्रिय स्थान है। इस बार तुम अपनी हृदय-वेदी पर मेरे लिए चिर-स्थायी प्रेममन्दिर की रचना करो। इसी भिक्षा के लिए तो मैं यहाँ आ खड़ा हूँ।"

"दयामय! तो आप स्वयं बतला दें कि इस अधम के हृदय-मन्दिर में आप को किस प्रकार चिर प्रतिष्ठित कर पाऊँगा।"

"तुम झटपट इसी क्षण गोवर्धन चलेजाओ। वहाँ की महापवित्र भूमि और निर्जनता तुम्हारे शेष पर्यन्त भजन-भाव के लिए अत्यन्त अनुकूल रहेगी। यहीं तुम्हें परम प्राप्ति होगी।"

मधुर वृन्दावन छोड़कर, इष्टविग्रह श्रीकृष्णचन्द्र को छोड़कर, गोवर्धन चला जाना होगा—लालाबाबू का हृदय हाहाकार से भर उठा। श्री ठाकुर से निवेदन करने लगे, 'प्रभु, कृपा करके मेरे द्वारा स्थापित इस श्रीमूर्ति में आप जाग्रत हो उठे हैं। कहिये तो, इसे छोड़कर मैं कहाँ जाऊँ, ? किस तरह जाऊँ?

'यह कौन-सी बात है जी! मेरा लीला-विलास केवल तुम्हारी स्थापित प्रतिमा में ही आबद्ध है क्या? यह लीला तो स्थापित है सभी विग्रह-मूर्तियों में—जल, थल और आकाश में! अतिरिक्त इसके, विचार कर देखो, जो सब लीला-तीर्थ आविष्कृत हुए हैं श्रीचैतन्य के महाभाव के आलोक से, जो सब तीर्थ जाग्रत् हो उठे हैं रूप सनातन प्रभृति महावैष्णव की साधना से---वह सब और कितने ज्योतित-जाग्रत् हैं। तुम अब आगे व्रज-मण्डल के सभी तीर्थों में परिव्रजन करो, उसके बाद गोवर्धन जाकर अपनी तपस्या की गंभीरता में डुबे रहो।"

लालाबाबू ने अब और विलम्ब नहीं किया। एक-एक कर व्रज-मण्डल के सभी तीर्थों के दर्शन के बाद गोवर्धन में आ पहुँचे। अब से उनका नित्य का प्रधान कृत्य हो गया, गिरिगोवर्धन की परिक्रमा-प्रदक्षिणा करना। उसके बाद समस्त दिन भूगर्भ गुफा के अन्दर बैठकर भजन और जप-ध्यान में बिताने लगे। दिन में एक बार मात्र मधुकरी के लिए बाहर

निकलते। व्रजकी दरिद्र माताएँ भिक्षा में जो कुछ देती उसी से दिन काटते।

गोवर्धन में उस समय घन-घमंड वर्षा शुरू हो गई थी। उस दिन सवेरे से गिरि-प्रदक्षिणा समाप्त करने के बाद लालाबाबू के अन्तर में यह लालसा जगी कि श्रीविग्रह के संध्याकालीन भोग-प्रसाद ही पाया जाय। फिर मधुकरी के लिए बाहर जाने का क्या प्रयोजन ? वरं सारा का सारा दिन नाम-जप और भजनानन्द में लगाया जाय।

परिक्रमा के बाद मन्दिर के पुजारी को कहला दिया, रात में ठाकुरजी का प्रसाद उसके पास भेज दिया करें।

इधर मन्दिर में आरती और भोग-राज का समय ज्यों ही समाप्त हुआ दुरंत दुर्योग की घड़ी आ पहुँची। प्रचंड बादल-झड़ी के बीच किसी का बाहर निकलना असम्भव हो गया। पुजारी बड़े संकट में पड़े। भक्त लालाबाबू कब से भोग-प्रसाद की प्रतीक्षा में बैठे होंगे। किन्तु इस घोर वर्षा में कौन इसे भजन-गुफा में पहुँचाने जायेगा ?

रात जब गहरी हुई, वर्षा जरा रुकी। पुजारी ने तुरत ठाकुरजी के घर में प्रवेश किया। प्रसाद लेकर उन्हें लालाबाबू के यहाँ दौड़ जाना है— ठाकुरजी के महाभक्त को आज दिन भर भूखा रहना पड़ा है जो।

किन्तु कितना आश्चर्य है ! भोग निवेदन कर, प्रसाद का जो थाल श्री विग्रह के आगे रख दिया गया था, वह नहीं है ! कौन इसे उठाकर ले गया ? रात होने के बाद से तो अकेले पुजारी यहाँ रहे, इस दुर्दिन-दुर्योग में कोई बाहर का आदमी इस निर्जन गिरि—शिखर पर आया भी तो नहीं था !

अगत्या ठाकुरजी की जो कुछ फल-फूल प्रसादी रखी थी उसे ही मिट्टी की नई हड़िया में रखकर, बड़े व्यग्र भाव से वह भजन-गुफा में उपस्थित हुए।

विस्मय भरे स्वर में लालाबाबू ने कहा— "यह क्या पुजारी जी ! अभी तो आप प्रभु का प्रसाद भरा थाल दे गये है। अब यह सब सजधज कर किसके लिए आप ले आये हैं !"

"लालाजी, आप यह क्या कह रहे हैं ? आपके लिए प्रसाद ले आने को मैं सन्ध्या समय से ही बैठा रहा। किन्तु कहिए क्या कर सकता था ? इस झंझा-वृष्टि में बाहर निकल पाना असंभव जो था।

गुफा के एक कोने की ओर उंगली दिखाकर लालाबाबू बोले—"देखिए, यह ठाकुरजी के प्रसाद का थाल अभी भी रखा हुआ है। आप स्वयं अपने हाथों यह दे गये हैं, और जल्दी भोजन कर लेने की बात भी कहते गये हैं। क्या पागल हो गया हूँ जो इतनी ही देर में सब कुछ भूल जाऊँगा ?"

पुजारी ने हाथ जोड़कर कहा—"ठाकुरजी का नाम लेकर मैं शपथ पूर्वक कहता हूँ, इससे पहले आज मैं मन्दिर से बाहर निकला ही नहीं हूँ ! और इसे जाने दीजिए, ठाकुर जी के भोग का थाल खोजते-खोजते जब हार गया तब इस मिट्टी की हाड़ी में यह सब ले आया हूँ। अभी देखता हूँ, मन्दिर का थाल अलौकिक भाव से पहले ही आप के आगे पहुँच गया है !"

यह बात सुनने के साथ-साथ भक्तवर लालाबाबू के सम्पूर्ण शरीर में सात्विक प्रेमविकार फूट उठे—स्तंभ, स्वेद, रोमांच, गदगद वाणी, कंप, विवर्णता और अश्रु आदि सभी सात्विक भाव एक-एक कर उदित हुए और फिर हतचेतन होकर भूमि पर लोट पड़े।

कुछ देर के बाद चेतना लौट आई। आँसू-रुधे कंठ से बोलते गये—'हाय नाथ ! अधम के प्रति क्यों इस प्रकार छलना दिखा गये हो। पुजारी के रूप में आये, स्वयं मुझसे यह भोग-प्रसाद देते गये, किन्तु हाय ! मोहाच्छन्न अंध-सा मैं उन्हें बिलकुल पहचान न सका ! हे दयामय ! एक बार सिर्फ एक बार, अपने स्वरूप में प्रकट होकर दर्शन दीजिए, रूप-सुधा माधुरी पिलाकर जीवन कृतार्थ कीजिए।"

गुरु प्राप्त करने की इच्छा बहुत दिनों से लालाबाबू के मन में जाग रही थी। इसके निमित्त व्रज-मण्डल में विशिष्ट साधुओं के पास

घूम-फिर करने में इन्होंने कोई कसर नहीं रखी थी। किन्तु बार-बार उन्हें एक ही बात सुनने को मिलती थी—समय आने पर सद्‌गुरु का आविर्भाव उनके जीवन में घटित होगा, इसके लिए अधिक व्यग्र होने का प्रयोजन नहीं है।

गोवर्धन पर रहकर कठोर तपस्या करते हुए लालाबाबू सद्‌गुरु के आश्रय पाने के लिए अब और अधिक व्यग्र हो उठे।

तत्कालीन साधकों के समाज में मथुरा के कृष्णदास बाबा की ख्याति बहुत अधिक थी। भक्तमाल का बंगभाषा में अनुवाद कर वह बहुत पहले से वैष्णव समाज में सुपरिचित हो चुके थे। तदुपरि उनके आध्यात्मिक जीवन का ऐश्वर्य भी विख्यात था। निगूढ़ वैष्णवीय साधना में उन्हें सिद्धि प्राप्त थी। देश-विदेश के बहुत से साधक इस महात्मा के आश्रय में रहकर प्रेमभक्ति-रस का आस्वादन लाभ किया करते थे।

इस बार कृष्णदास बाबा गिरिगोवर्धन की परिक्रमा करने के लिए पहुँचे थे। लालाबाबू उनके सम्मुख जाकर साष्टांग प्रणाम निवेदन करते हुए बड़ी दीनता से कहने लगे—"प्रभु! मेरी आत्मा में केवल यही करुण आर्ति उठती रही है, गुरु के श्रीचरण के आश्रय पाने की दुर्बार आकांक्षा जाग उठी है। और बहुत समय से श्रीमान को ही मन ही मन सद्‌गुरु रूप में वरण कर चुका हूँ। इस बार मुझे आश्रय देकर कृतार्थ कीजिए।"

कृष्णदास सहमत हो गये और कहने लगे—"अच्छी बात है, मैं तुम्हें दीक्षा प्रदान करूँगा। किन्तु तुम्हें और कुछ समय तक कठोर साधन-भजन करना होगा। विषयी जीवन का सूक्ष्म संस्कार अब भी यत्किञ्चित अवशेष रह गया है। उसे वैराग्य की आग में फूक कर निःशेष कर दो। फिर शुभ लग्न-घड़ी आने पर मैं स्वयं उपस्थित हो जाऊँगा और तुम्हे दीक्षा दूँगा। मेरे पास बार-बार दौड़ना अनावश्यक है।"

इस बार प्राणपण से लालाबाबू ने अपनी नवीनतर साधना शुरू

की। कौपीन-कंथा मात्र संबल लेकर ब्रज के एक-एक तीर्थ में घूमते, कुछ दिन मात्र वहाँ अवस्थान कर फिर स्थान-परिवर्तन करते। दिन-ब-दिन चरम कोटि की त्याग-तितिक्षा और दैन्य के बीच से उनकी अव्याहत साधना प्रवाहित हो चली। वासना के सूक्ष्म अंकुर एक-एक कर दह-बह गये।

कितने वर्ष बीत गये, किन्तु फिर भी गुरु-कृपा लाभ का परम सौभाग्य लालाबाबू को नहीं मिल पाया। अन्तर की आर्ति-पीड़ा पराकाष्ठा पर जा पहुँची।

उस बार लालाबाबू कुछ दिनों के लिए वृन्दावन आये। दिन-रात अधिक समय इनका जप-ध्यान में बीतता था। कभी इष्टविग्रह श्रीकृष्ण-चन्द्रजी की भुवनमोहिनी मूर्ति की झाँकी एकटक निहारते वह घंटों भावाविष्ट रहते। दिन ढलने पर कुछ क्षणों के लिए उठते और नगर की सड़क-गलियों में मधुकरी माँगते। जो कुछ कनसतू भिक्षा में पाते उसीसे जैसे-तैसे जीवन धारण करते।

उस दिन उनके मन में बार-बार पूज्यपाद बाबा कृष्णदास की याद आ रही थी। उन्होंने लालाबाबू को आश्वासन दिया था, उपयुक्त समय पर वह स्वयं उनके निकट प्रकट होंगे। किन्तु आज तक वह सौभाग्य लालाबाबू को प्राप्त नहीं हुआ। गुरु-कृपा की संजीवनी-सुधा से अब तक वह वंचित ही रहे।

अन्तर में वहीं आत्मविश्लेषण चल रहा था। अपने जीवन में वह कौन-सी दोष-त्रुटि रह गई है, कौन संस्कार और माया-बन्धन इसके लिए जिम्मेदार है, बार-बार उसीका अनुसन्धान कर रहे थे।

हठात् लालाबाबू को स्मरण हो आया। वृन्दावन के कितने कुंजों में, कितने मठ-मन्दिरों में वह मधुकरी के लिए जाते रहे। किन्तु कितने ही सेठों के मठ-मन्दिर की ओर तो वह जा नहीं पाये। मठ-मन्दिर निर्माण में, श्रीविग्रह की सेवा में, दान-पुण्य आदि को लेकर सेठ लोग

लाला बाबू के प्रतिद्वन्द्वी बने थे। जमीन्दारों के हक-हकूक के लिए भी तो दोनों पक्षों में टकराव कम नहीं हुए थे। वाद-विवाद भी अनेक बार हो चुके थे। पहले का वह जीवन लाला बाबू छोड़-छाड़ चुके थे, अब तो वह कौपीन-मेखलाधारी एक वैष्णव भिखारी थे। किन्तु पिछले समय की वह द्वेष-वितृष्णा क्या एक बारगी मिट पाई थी? क्या अब भी वह सूक्ष्म रूप में कहीं शेष नहीं थी? यदि वह निःशेष हो चुकी होती तो क्यों नहीं आज तक वह सेठ के मन्दिरों में भिक्षापात्र लेकर उपस्थित हो पाये?

यह विचार उठते ही, लाला बाबू सेठ के मन्दिर की ओर अभिमुख हुए।

मन्दिर में उस दिन भिखारियों की अजस्र भीड़ थी। अङ्गनई में खड़े होकर, खंजुड़ी बजाकर, लाला बाबू मृदु-मधुर कंठ से कृष्ण नाम कीर्त्तन करने लगे। स्वर्ण-गौर वर्ण, लम्बा शरीर इस वैष्णव को वृन्दावन में बहुत-से लोग पहचानते थे। तुरत ही यह खबर, अधिकारी के कानों में पहुँची। प्राक्तन प्रतापशाली जमीन्दार लाला बाबू के वेश में उनके द्वार पर आ पहुँचे हैं। एक मुट्ठी भीख के लिए मधुकरी को आ गये हैं। यह सेठ लोगों की कल्पना से परे की बात थी। मन्दिर के चौक में उस दिन बड़ी हलचल मच गई।

वृद्ध सेठजी स्वयं भिक्षा देने के लिये आगे आये। उनके हाथ में एक थाल था। चावल, दाल और फल के साथ उन्होंने एक सौ एक अशर्फियाँ उसमें सजा रखी थी।

बड़े आदर संभ्रम के साथ माथा झुकाकर सेठ बोले—"बाबूजी, आपके चरण रज की परस पाकर दीनकी यह कुटिया धन्य हुई। कृपा कर यह थाल ग्रहण करें। हम अत्यन्त कृतार्थ होंगे।"

लालाबाबू ने उत्तर दिया—"सेठजी, मैं तो मधुकरी के लिए आया था। कृष्ण नाम श्रवण कराया, इस बार एक मुट्ठी चावल मात्र भीख में चाहिए। किन्तु आप जो-कुछ सजधज कर लाये हैं, उसे तो भीख नहीं कहा जायेगा।

"कहना आप का सही है। आप को मैं भिक्षा दूँ, यह तो मेरी शक्ति के बाहर है। यह तो भेंट नजराना है। राजा लालाबाबू ने आज भिक्षुराज होकर हमें पराभूत कर दिया है। इसीसे यह नजराना हाजिर है।"

"यह नहीं हो सकता, सेठजी! वैष्णव को चिरसाल भिक्षुक ही रहना होगा। आपके इस स्वर्णथाल का स्पर्श नहीं कर पाऊँगा। उसमें से लेकर एक मुट्ठी चावल मेरी झोली में डाल दीजिए। उसीसे आज उदर—पूर्ति हो पायेगी। एक और भीख मुझे दीजिए! ज्ञात-अज्ञात भाव से यदि कभी कोई आघात वा मनस्ताव आपको मुझसे पहुँचा हो तो कृपाकर उनके लिए मुझे क्षमा दान कीजिए। सब मिलकर मुझे आशीर्वाद दीजिए, जिससे इस अपात्र के हृदय से सहज कृष्णभक्ति का उदय हो सके।

रोमांच कंचुकित शरीर से दोनों बाँह उठाकर लालाबाबू ने चिरप्रतिद्वन्द्वी सेठ को हृदय से लगाया। प्रेमाश्रु की धारा दोनों नेत्रों से झर-झर बह निकली। यह भावावेग और प्रेमोच्छ्वास उस दिन वहाँ चारों ओर; जो भी लोग खड़े थे, सबों में संक्रमित देखा गया।

सेठ के मन्दिर से लाला बाबू धीरे-धीरे बाहर निकले। निकट की गली के रास्ते अपनी भजन कुटी की ओर आगे बढ़े। इसी समय सामने महा-वैष्णव बाबा कृष्णदास प्रकट हुए।

बाबाजी महाराज के मुख नेत्र एक अपूर्व प्रसन्नता की दीप्ति से उद्भासित थे। लाला बाबू भक्तिभाव से प्रणाम कर उठे ही थे कि उन्होंने अपनी दोनों भुजाएँ उठाकर हृदय से लगा लिया। बोले—"इस बार समय आया है। देखो, मैं भी इसी से यहाँ आ गया हूँ। प्रतिद्वन्द्वी धनकुबेर सेठजी के निकट इतने दिनों तक तुम मधुकरी माङने नहीं गये थे। अन्तर के गुप्त गंभीर में सूक्ष्म अहमिका जाग रही थी। आज वह निर्मूल हो गई। क्षेत्र तुम्हारा प्रस्तुत है, इस बार दीक्षा-बीज के बपन में कोई बाधा नहीं रह गई है; वत्स!"

कुछ दिनों के भीतर ही एक शुभ लग्न देखकर कृष्णदास बाबाजी ने उन्हें दीक्षा दी। नवदीक्षित शिष्य का साधन-जीवन और भी गहन से गहनतर होता गया।

निगूढ वैष्णव साधना का पथ निर्देशन करने पर गुरु ने कहा—इस बार तुम्हें सर्वस्व अर्पण करना होगा। परम कृच्छ व्रत का अवलम्बन कर साधना में जुट जाना होगा। अब तुम गिरिगोवर्धन की साधन-गुफा में जा कर निवास करो। वहाँ रह कर ही तुम्हें इष्टदर्शन और परमप्राप्ति होगी। जबतक अभीष्ट सिद्ध न हो, तब तक भजन-गुफा में एकान्त जीवन यापन करोगे और तब तक मनुष्य का मुख नहीं देखोगे।

गोवर्धन में लाला बाबू इस समय से जैसी कठोर तपस्या में व्रती हुए उसे देखकर वैष्णव साधकों एवं जन साधारणों में विस्मय की सीमा न रही।

कुछ वर्षों के भीतर ही उनकी तपस्या सार्थक हुयी। इष्ट दर्शन और लीलारस-पान के द्वारा वह पूर्ण काम हुए। ब्रज-मण्डल के अन्यतम वैष्णव महापुरुष के रुपमें लालाबाबू चिर प्रतिष्ठित हुए।

इसी समय सिन्धिया-नरेश पारेखजी वृन्दावन तीर्थ करने के लिए पहुँचे। विशिष्ट तीर्थ और लीलास्थलों के दर्शन करते-करते पारेखजी के अन्तर में अध्यातम-जीवन बिताने की प्रबल आकांक्षा जग उठी। व्यग्र होकर सोचने लगे, ब्रज-मण्डल के किन महात्मा के निकट आश्रय मांगने जायँ? किनके निकट दीक्षा ग्रहण कर कृतार्थता प्राप्त करें? लोक परम्परा से उन्होंने भक्तिसिद्ध महापुरुष लाला बाबू की ख्याति सुनी। अतः सदलबल उस दिन गोवर्धन में जा पहुँचे।

लाला बाबू की एकान्त तपस्या-साधना पर्यायम से कुछ समय के लिए विशमित हुई थी। इस समय स्वेच्छा-पूर्वक बीच-बीच में दो एक साधनकामी व्यक्ति से मिल भी लेते थे। भजन के लिए कुछ-कुछ निर्देश भी दिया करते थे।

पारेखजी के आवेदन के उत्तर में उन्होंने कहा—"महाराज, दीक्षा के सम्बन्ध में मैं अपने गुरुजी द्वारा अनुवर्तित मार्ग का ही अनुसरण करता हूँ। उसे मानकर ही आप को मेरे निकट आना होगा।"

"वह मार्ग क्या है ? कृपा कर उसे स्पष्ट कहा जाय।"

"गुरु ने मुझे तभी दीक्षा प्रदान की थी, जब मैं विषय और विषय का अभिमान—दोनों का त्याग कर उनके चरणों में आत्म समर्पण कर पाया था। श्रीभगवान को पाना हो तो उन्हें दोनों हाथ से गहना होगा। एक हाथ से संसार को पकड़े रहना और एक हाथ से भगवान के चरण स्पर्श करना—यह कभी चल नहीं पायेगा।"

"प्रभु, तो इसके लिए मुझे क्या करने को कहते हैं ?"

"महाराज, कृष्णप्रेम के सागर में झंप देने के लिए आपको दोनों कूल-किनारों के तटबन्धों से अलग होना पड़ेगा—सर्वत्यागी, कौपीनधारी होकर इस गोवर्धन-गुफा में आना होगा। क्या यह कर सकोगे महाराज ?"

सिन्धिया नरेश ने अंजलि-बद्ध होकर कहा—"आपका कहना यथार्थ है। मैं अब समझ रहा हूँ—ऐसा कृच्छ्र साधन, ऐसा त्याग वैराग्य का मार्ग हम जैसे साधारण मनुष्य के लिए नहीं है। इसके लिए चाहिए जन्म-जन्म की साधना और विपुल पुण्य-सुकृति।"

अतः पर भक्ति-भाव से लाला बाबू की चरण-वन्दना कर वह गोवर्धन से विदा हुए।

लाला बाबू के वैराग्य और साधना-सिद्धि की ख्याति उस समय सम्पूर्ण व्रजमण्डल में व्याप्त हो चुकी थी। वृन्दावन धाम में जो कोई भक्त उपस्थित रहते, गुफावासी इस महात्मा के दर्शन के लिए व्यग्र हो उठते। फलतः भीड़ वहाँ बढ़ती जाती थी।

ख्याति की यह विडम्बना लाला बाबू को असह्य थी। मन ही मन उस दिन उन्होंने संकल्प लिया, अब वह गोवर्धन छोड़कर किसी निर्जन एकान्त वन में चले जायेंगे और शेष जीवन वहीं भजनानन्द में बितायेंगे।

गिरि गोवर्धन के पथ में, प्रान्तर में रात्रि का घना अन्धकार छाया हुआ था। यह सुयोग पाकर, लोगों से अज्ञात होकर लाला बाबू स्थान छोड़ कर चल दिये। इस समय गुफा के नजदीक ही एक मर्मान्तिक दुर्घटना घटित हुई। ग्वालियर से आने वाले यात्रियों का एक दल, घोड़े पर चढ़कर उनके दर्शन के लिए आ रहा था। हठात् उन लोगों में किसी एक के घोड़े की टाप लाला बाबू के पांव पर पड़ी और वह गिर पड़े। चोट के कारण जो घाव हुआ वह थोड़े ही दिनों में दुश्चिकित्स्य हो गया।

भक्त-सेवकों की चिन्ता का ठिकाना नहीं। व्यस्त-उदस्त होकर लोग उन्हें वृन्दावन के मन्दिर में उठाकर ले गये। बहुत दिनो तक रोग-भोग की पीड़ा जारी रही।

भक्त पूछते—"प्रभु! आपके प्राणप्रिय विग्रह श्रीकृष्णचन्द्र के निकट आपको लाकर रखा गया है। फिर भी यह असह्य रोग-यन्त्रणा क्यों नहीं छूटती? यही मन में खल रहा है!"

परम भागवत लाला बाबू का रोग-पाण्डुर मुख तत्क्षण उज्ज्वल हो उठता। मन्द हँसी से उत्तर देते—"तुम तो प्रभु के दिए हुए इस दैहिक रोग को ही देखते हो। देखो न उनका दिया हुआ अमृतमय आलोक? वैसा आलोक जो मेरे हृदय-मंच को उद्भासित किए रखा है। कृष्णचन्द्र और राधारानी का मधुर लीला-विलास वहां अविराम गति से चल रहा है। कौन-सा पलड़ा भारी है, कहो तो—दुःख का या आनन्द का?

भक्त और सेवक चुप हो जाते, सिद्ध-वैष्णव के निकट हार मानते।

लाला बाबू का मर्त्य जीवन धीरे-धीरे चिर विराम के किनारे आ लगा। इंगित पाकर, भक्तगण उन्हे झटपट यमुना के तट पर ले आये। युगल-लीला की अनन्त वैचित्र्य-परम्परा के दर्शन में मग्न होकर उन्होंने अन्तिम सांस ली।

सारा व्रज मण्डल इस अद्भुतकर्मा महापुरुष के शोक में विह्वल

हो उठा। साधक लोग कह उठे—"वैष्णव गगन का एक उज्ज्वल नक्षत्र आज अस्त हो गया !

सकल-साधारण समाज माथा पीट-पीट कर रो रहा था। कारण, लाला बाबू उन सब ब्रजवासियों के दुःखदैन्यमय जीवन के लिए परमाश्रय थे। वह वास्तव में इस युग के महान् साधक राजर्षि थे !

—: o :—

गोस्वामी श्यामानन्द

सोलहवीं शताब्दी का द्वितीयार्द्ध। बंगाल और उड़ीसा के अध्यात्म-जीवन में इस समय भक्ति की बाढ़ आ गई थी। श्री चैतन्य के भाव-तरंग चारों ओर उच्छलित हो रहे थे। वर्द्धमान का अम्बिका-कालना भी उस दिन इस सौभाग्य से वंचित नहीं रहा।

महावैष्णव गौरीदास पण्डित के प्रिय शिष्य थे ठाकुर हृदय चैतन्य। ये ही थे तत्कालीन कालना के भक्त-समाज के मध्यमणि। अमृत की खोज में निकले हुए भक्तगण विभिन्न देशो से आकर चरण तल में एकत्र होते थे। ठाकुर महाशय के गौर-विग्रह के मन्दिर प्रांगण में सदा ही नाम कीर्त्तन की आनन्द धारा तरंगायित होती थी।

एक दिन की बात है। संध्याकालीन आरती हो चुकी थी। ठाकुर हृदय चैतन्ह प्रांगण में बैठकर अपने भक्तों को महाप्रभु की लीलाकथा सुना रहे थे। इतने में व्याकुल-हृदय एक किशोर भक्त उनके सामने आकर साष्टांग प्रणत हुआ।

अश्रुरुद्ध कण्ठस्वर में उसने निवेदन किया, "प्रभु मैं बहुत दूर से बड़ी आशा लेकर आज कालना में उपस्थित हुआ हूँ। आप से दीक्षा लेकर अपने को सार्थक बनाऊँगा। यही मेरी एकमात्र अभिलाषा हैं। कृपापूर्वक मुझे चरणों में आश्रय प्रदान करें।"

इस किशोर वैरागी के चेहरे पर दीनता और नयनों में व्याकुलता को देखकर हृदय चैतन्य के हृदय में करुणा जाग उठी। उन्होंने उसे अपने गले से लगा लिया।

अपने पास बैठाकर उन्होंने सस्नेह पूछा—"बेटा, तुम्हारा निवास

कहाँ है और परिचय क्या है ? कैसे तुम्हारे हृदय में मेरा आश्रय प्राप्त करने का संकल्प जागा ? मुझे सब-कुछ बताओ।"

उस किशोर का जबाव सुनकर वे विस्मित हो गये। उसने बताया कि उड़ीसा के धारेन्दा-बहादुरपुर में उसका निवास है। अम्बिका कालना के इस श्रीमन्दिर को याद कर वह पाँव पैदल आ पहुँचा है। न जाने किस दिन किस शुभ मुहूर्त में हृदय चैतन्य देव का नाम उसके कानों में प्रविष्ट हुआ और उसने मन ही मन उन्हें दीक्षागुरु के रूप मे वरण कर लिया।

उड़ीसा से बंगाल—इतनी दूर असमतल और जंगलों से भरा रास्ता पार-कर वह यहाँ आ पहुँचा है। निरन्तर चलते-चलते उसके पैर क्षत-विक्षत हो गये हैं। शरीर थक गया है। परन्तु इस किशोर के दो नयनों में वैराग्य की शिखा प्रज्ज्वलित थी और हृदय में कृष्णनाम का मृदुगुंजन अनवरत चल रहा था।

आचार्य ने सस्नेह पूछा—"वत्स, अपना नाम तो तुमने अभीतक नहीं बताया।"

जवाब में उसने अपना नाम दुःखी बताया। अध्यात्म-जीवन के परम अधिकारी इस नवागत भक्त के चेहरे की ओर देखते ही आचार्य के नयन प्रदीप्त हो उठे। उन्होंने कहा—"नहीं वत्स, तुम केवल दुःखी हो। नहीं, तुम तो दुःखी कृष्णदास हो। तुम जन्म-जन्मान्तर के दुःखी कृष्ण दास हो। प्रभु की चिरन्तन वियोगव्यथा को तुम अपने हृदय में छिपाये दुःखी बने हुये हो। आज से तुम्हारा यही होगा नामकरण। मैं इस गौर विग्रह के सामने खड़ा होकर तुम्हें दीक्षा दूँगा। मेरे पास आश्रय प्रदान करने की जो भी शक्ति हैं वह तुम अवश्य प्राप्त करोगे।'

यही दुःखी अम्बिका-कालना के वैष्णव समाज में परिचित हुआ। दुःखी कृष्णदास के रूप में गौड़ीय वैष्णव साधना के द्वारा अमृतमय महाजीवन की दिशा में उसने कदम बढ़ाया।

दुःखी के पिता का नाम श्रीकृष्ण मंडल था। जाति के ये सद्गोप

थे। पहले ये बंगाल के दण्डेश्वर गाँव के निवासी थे। कालक्रम में मंडल परिवार उड़ीसा के धारेन्दा बहादुरपुर अंचल में स्थायी रूप से बस गया था।

बार-बार कई सन्तान के असमय मर जाने के कारण कृष्ण मंडल और उनकी पत्नी दुरिका के मन में दुःख भरा हुआ था। अन्त में इनकी एक सन्तान जीवित रही। दुःख के जन्म होने के कारण माता-पिता ने इसका नाम दुःखीराम रख दिया। गाँव के लोग इसे दुःखी कहकर ही पुकारते थे। यही बालक उत्तरकाल में गोस्वामी श्यामानन्द के नाम से परिचित हुआ।

श्रीजीव गोस्वामी के कृपापात्र ये महासाधक सम्पूर्ण उड़िया के भक्त-समाज के नेता के रूप में आविर्भूत हुए। सैकड़ों उड़ीया वैष्णव इनसे दीक्षा लेकर परमाश्रय प्राप्त कर धन्य हुए।

इनके माता-पिता की एक अभिलाषा थी कि उनका प्यारा दुःखीराम एक महापंडित के रूप में समाज में प्रतिष्ठा प्राप्त करे।

फलस्वरूप इन्हें गाँव के संस्कृत टोल में भेजा गया। दुःखीराम की बुद्धि और मेधा का परिचय पाकर इनके शिक्षक आश्चर्यचकित हो गये। लोकोत्तर प्रतिभा का अधिकारी यह बालक दिन-प्रतिदिन का अपना पाठ शीघ्र याद कर लेता और कठिन से कठिन शास्त्र-ग्रन्थों को थोड़े ही प्रयास में समझ लेता।

क्रमशः दुःखीराम किशोरावस्था में पहुँचा। परन्तु वह बड़ा ही अद्भुत स्वभाव का लड़का था। इतनी कम उम्र में ही उसके हृदय में सांसारिक विषयों के प्रति तीव्र उदासीनता जाग उठी थी। भक्ति की भावना को हृदय में लेकर ही मानों उसने जन्म लिया हो तथा अपने समस्त जीवन को उसी भक्तिपथ के लिए उन्मुक्त कर दिया हो।

निताई गौरांग के पुण्यमय जीवन के स्पर्श ने बंगाल और उड़ीसा में ला दिया था नवजीवन का जागरण। किशोर दुःखीराम भी इससे प्रभावित था।

इस किशोर भक्त ने निश्चय कर लिया कि गृहत्यागी होकर वैष्णवीय साधना का मार्ग ग्रहण करेगा। कालना के परम भागवत हृदय चैतन्य का नाम उसने पहले से ही सुन रखा था। उन्हीं से दीक्षा लेने की एक प्रबल इच्छा उसके दिल में जाग उठी।

अपने माता पिता के समक्ष उसने अपनी इस इच्छा और संकल्प को व्यक्त किया। उनके माता पिता किशोर बालक के इस असम्भव प्रस्ताव को सुनकर आश्चर्य चकित हो गये।

दुःखीराम ने कहा—"मैं समझता हूँ कि दीक्षा और साधन से हीन जीवन पशु के जीवन के समान होता है। अम्बिका-कालना के वैष्णवाचार्य हृदय चैतन्य देव के निकट मैं दीक्षा तथा वेश ग्रहण करने के लिए जाऊँगा। आप मुझे आज्ञा दीजिए।"

श्रीकृष्ण मंडल और दुरिका के सिर पर मानो आकाश गिर पड़ा। अनभिज्ञ बालक माता-पिता का सान्निध्य तथा आश्रय छोड़कर कहाँ जायगा? किस अज्ञात समुद्र में वह गिरना चाहता है?

माता के अश्रु और पिता की पीड़ापूर्ण वाणी भी दुःखी को अपने संकल्प से डिगा नहीं सकी! माता-पिता को सान्त्वना देकर और उनकी चरणधूलि लेकर वह तेजी से घर से निकल पड़ा।

हृदय चैतन्य देव के घर में एक गौर विग्रह स्थापित है। दीक्षादान के पश्चात् आचार्य ने दुःखी कृष्णदास को इस विग्रह की सेवा में नियुक्त कर दिया।

नवीन साधक के आनन्द की सीमा नहीं रही। उसने सोत्साह गुरु देव द्वारा निर्देशित साधना शुरु कर दी।

दुःखी कृष्णदास को आज अपने जीवन का एक श्रेष्ठ अवसर प्राप्त हो गया। कठोर तपश्चर्या और वैष्णवी आचार निष्ठा के माध्यम से वह इस अवसर का सदुपयोग करने लगा।

विग्रह को स्नान कराने के लिए इस नवीन शिष्य को गंगाजल लाना पड़ता है। गुरु का ऐसा ही आदेश है। नदी का घाट कुछ दूरी पर है और जलपात्र है भारी और वृहत्त आकार का। जल प्रतिदिन कईबार लाना पड़ता है। इस प्रकार माथे पर भारी जल पात्र ढोते-ढोते एक कठिन घाव हो गया। परन्तु गौर विग्रह की सेवा में वे आत्म विभोर थे। घाव के सम्बन्ध में सोंचने का उन्हें समय ही कहाँ ?

एक दिन दुःखी कृष्णदास अपने गुरु को प्रणाम कर रहे थे। शिष्य के माथे पर हाथ रखकर आशीर्वाद देते समय गुरु चौंक उठें, शिष्यके मस्तक पर एक बड़ा सा घाव हो गया है। प्रश्न करने पर उन्हें पता चला कि गंगाजल ढोकर लाते-लाते यह घाव हो गया है। सेवा में बाधा होगी यह सोचकर भक्त ने अपने नित्य कर्म का परित्याग नहीं किया।

तरुण शिष्य की यह सेवा निष्ठा देखकर हृदय चैतन्य देव मुग्ध हो गए। उन्हें अपार संतोष का अनुभव हुआ और उन्हेंाने दुःखी कृष्णदास को गले से लगा लिया।

आचार्य ने स्नेह पूर्ण स्वर में कहा—"वत्स, मैं जानता हूँ तुम्हारे निकट आ रही है प्रेम भक्ति साधना की एक बड़ी सम्भावना। मेरी इच्छा है कि तुम अविलम्ब वृन्दावन चले जाओ तथा वहाँ श्री जीव गोस्वामीजी के आश्रम में रहकर गौड़ीय वैष्णव शास्त्र का अध्ययन करो। बंगाल के वैष्णव समाज में तुम जैसे आचार्य की आवश्यकता है।"

गुरु की बात सुनकर कृष्णदास के नयनों से अश्रु की धारा बहने लगी। गुरुदेव के मधुर सान्निध्य तथा उनकी सेवा छोड़कर कहीं जाना कृष्णदास को पसन्द नहीं। परन्तु गुरु भी उन्हें वृन्दावन जाने के लिए बाध्य कर रहे थे। उन्होंने कृष्णदास से कहा—"वत्स, गुरु सेवा का अर्थ है गुरु को सुख देना मुझे जिस बात से सुख मिलेगा, तुम्हें वैसा ही करना चाहिए। मैं कहता हूँ तुम वृन्दावन जाकर बस जाओ तभी तुम्हें आनन्द मिलेगा।" अब गुरु की आज्ञा का पालन करने के अतिरिक्त कोई उपाय न रहा।

व्रजमण्डल के प्रधान उस समय श्रीजीव गोस्वामी थे। उनके नाम ठाकुर हृदय चैतन्य से एक अनुरोध—पत्र लेकर और गुरु के चरणों में प्रणाम कर दुःखी कृष्णदास कालना से चल पड़े। रास्ते में नवद्वीप एवं अन्यान्य वैष्णव तीर्थ स्थानों के दर्शन करते हुए वे वृन्दावन पहुँचे।

रघुनाथदास गोस्वामी का साधन प्रभाव उस समय समस्त व्रजमडल में परिव्याप्त था। पवित्र राधाकुण्ड के तीर पर प्रेमभक्ति के ये समर्थ साधक एक नव वृन्दावन की सृष्टि कर चुके थे। कुण्ड तीर स्थिति उनके भजन कुटीर को केन्द्र कर धीरे-धीरे चारो ओर वहुत से साधन स्थल वन गए थे।

व्रजधाम में पहुँचते ही दुःखी कृष्णदास रघुनाथ दास गोस्वामी के कुटीर की ओर तेजी से चले गए। तरुण साधक के साष्टांग प्रणाम करने के साथ-साथ उनपर गोस्वामी प्रभु का आशीर्वाद वरस पड़ा।

उन्होंने सस्नेह कृष्णदास से कहा—"वत्स, तुम्हारे गुरु का निर्देश है कि श्रीजीव के पास ही रहो। अतः तुम अविलम्ब वहीं चले जाओ और शास्त्र-ज्ञान एवं साधना की जड़ को मजवूत कर डालो।" यह कहकर उन्होंने एक सेवक के साथ दुःखी कृष्णदास को श्रीजीव गोस्वामी के पास भेज दिया।

असामान्य वैराग्य और भक्ति की प्रतिमूर्ति दुःखी कृष्णदास को देखते ही श्रीजीव का हृदय प्यार से भर गया। हृदय चैतन्य का अनुरोध पत्र पढ़कर इस तरुण वैष्णव को उन्होंने सहर्ष आश्रय प्रदान किया।

वैष्णव समाज के एकपत्री पंडित श्रीजीव के शिष्य के रूप में दुःखी कृष्णदास के जीवन का एक नया अध्याय शुरू हो गया। शीघ्र ही वे व्रज-मण्डल में सुपरिचित हो गए और उन्होंने साधक मण्डली में असामान्य मर्यादा प्राप्त की।

अब उन्होंने नियमित रूप से आचार्य के निकट वैष्णव शास्त्र का अध्ययन शुरू कर दिया श्री निवास तथा नरोत्तम इसके पूर्व हो वृन्द वन पहुँच चुके थे। महान् वैष्णव नेता श्रीजीव के आश्रम में रहकर वे शास्त्र में पारंगत हो रहे थे।

कृष्णदास, श्रीनिवास तथा नरोत्तम ये तीन प्रतिभाशाली शिष्य थे श्रीजीव के। इनकी साधन निष्ठा भी अपूर्व थी। धीरे-धीरे इन तीनों में गहरी दोस्ती हो गई एवं एक आत्मिक वन्धन कायम हो गया। बंगाल और उड़ीसा के धर्म एवं संस्कृति के इतिहास को उत्तर काल में इन तीन सुहृदने विभिन्न प्रकार से प्रभावित किया था।

कई वर्ष वाद की वात है। कृष्णदास कविराज द्वारा चैतन्य चरितामृत की रचना हो चुकी थी। वृन्दावन के गोस्वामीगण ने निश्चय किया कि इस अपूर्व अमृत को वंगाल में भेजना होगा। श्री रूप सनातन तथा श्री जीव रचित शास्त्र ग्रन्थों की संख्या भी कम नहीं थी। अतः, कुछ दिनों से वैष्णवगण इनके प्रचार की वात सोच रहे थे। अब तो उसका कार्यान्वयन होने जा रहा था।

आचार्य श्रीजीव उस सयय वृन्दावन के गोस्वामी समाज के सर्वे सर्वा थे। उन्हीं की व्यवस्था के अनुसार शास्त्रग्रन्थों के साथ श्री निवास को वंगाल भेजा गया। श्रीनिवास के सहायक के रूप में नरोत्तम ठाकुर और कृष्णदास भी गए। कृष्णदास वाद में श्यामानन्द नाम से परिचित हुए।

विष्णुपुर पहूँचने के पहले रास्ते में एक दुर्घटना हुई। डाकुओं ने इनके अमूल्य शास्त्रग्रन्थों की पेटी लूट ली।

इस दुर्घटना से नवीण प्रचारक गण के दिल में काफी चोट पहुँची। श्यामानन्द उडीसा चले गये और वहाँ वैष्णव धर्म के प्रचार का दायित्व अपने हाथों में लिया।

उड़ीसा में वैष्णव धर्म संगठन और प्रचार श्यामानन्द की एक अनमोल कीर्ति है। उत्तर काल में अपने कर्म केन्द्र से वे कभी वृन्दावन भी आते थे।

श्रीजीव के चरण तल में बैठकर वैष्णव शास्त्र एवं साधन के निगूढ़ तत्वों का ज्ञान प्राप्त कर फिर लौट जाते थे।

अध्यात्म साधन के पथ में पाण्डित्य कोई बाधा न हो—ऐसा सौभाग्य साधन जीवन में शायद ही किसी को प्राप्त हो! परन्तु दुःखी कृष्णदास के जीवन में यह सौभाग्योदय हुआ था।

श्री जीव के कुटीर में वे नियमित रूप से भक्तिशास्त्र का पाठ किया करते थे। किन्तु साथ ही साथ भजन निष्ठा और विग्रह सेवा भी वे करते थे। उन्होंने अनुभव किया था कि सेवा ही भक्तिशास्त्र का मूल सिद्धान्त है। इसलिए सेवाकार्य में सदा ही तत्पर रहते थे। वृन्दावन निकुंज मन्दिर में दुःखी कृष्णदास झाड़ू देने का कार्य करते थे उनकी एकमात्र अभिलाषा थी राधा के चरण-दर्शन कर अपने जीवन को सार्थक बनाना।

मन्दिर-प्रांगण में प्रतिदिन बार-बार झाड़ू देते हुए कृष्णदास, राधागोविन्द की आनन्दली के स्मरण में विभोर रहते हैं। विशेष रूप से श्रीराधा के दर्शन प्राप्त करने की आकांक्षा उनके हृदय में बढ़ती रहती है। कब देवी की कृपा होगी, कब अपनी सखियों के साथ निकुंज-विहार दर्शन करने के लिए वे आयेंगी, इसी चिन्ता में वे दिन गिनते रहते हैं।

एक दिन की बात है। रात्रि के शेष प्रहर में जागकर कृष्णदास मन्दिर की सफाई कर रहे थे। अचानक उन्होंने देखा बाहर के आंगन के एक कोने में एक चमकती हुई वस्तु पड़ी हुई हैं।

वे उस वस्तु की ओर तेजी से कदम बढ़ाकर पहुँचे। नजदीक पहुँचते ही वे आश्चर्य चकित हो गए! सामने पड़ा हुआ था एक अपूर्व सुवर्ण नूपूर। शेष रात्रि के हल्के प्रकाश में भी वह चमक रहा था।

इस वस्तु को देखकर दुःखी कृष्णदास का हृदय प्रेम-विह्वल हो उठा। अश्रू, कम्पन्न, पुलक आदि अष्ट सात्विक भावविकार उनके शरीर से उद्गत हो रहे थे और वे जमीन पर लोट पोट रहे थे।

कुछ समय बाद चेतना (बाह्य ज्ञान) लौटने पर वे उठ बैठे। सोने के नूपूर को उन्होंने भक्तिभाव से अपने हाथों में लिया। और भी आश्चर्य की बात थी कि उस उज्ज्वल वस्तु से एक दिव्य सौरभ भी निकल रहा था।

दुःखीकृष्णदास के हृदय में एकाएक जाग्रत हुआ एक परम उपलब्धि-भाव। स्वर्ण नूपूर तो कोई प्राकृतिक वस्तु नहीं हो सकता! अन्तरात्मा से मानो कोई बोल रहा हो—'अहो, परम भाग्यवान, तू ने प्रियाजी का चरण नूपूर प्राप्त कर लिया है!'

दुःखी कृष्णदास के नयनों से निरन्तर अश्रु की धारा बह रही थी और खेद के साथ वे कह रहे थे—"कृपामयी राधे! इस कंगाल के प्रति अगर तूने कृपा ही की, तो केवल नूपूर देकर ही भुलाया क्यों! अपने चरण कमलों के दर्शन मुझे दो।"

किन्तु यह क्या देख रहे हैं! विस्मय पर एक और विस्मय। भाव-विह्वल साधक की दृष्टि के समक्ष फिर यह कौन-सी दिव्यलीला का दृश्य-पट उन्मोचित हो रहा है!

दस-ग्यारह वर्ष की परम सुन्दरी बालिका चंचल पैरों से चलते हुए निकुंज-मन्दिर के द्वार पर उपस्थित होती है। दुःखी कृष्णदास से वह मधुर स्वर में पूछती है—"भैया; एक सोने का नूपूर तुमको मिला है?"

पुलकांचित कृष्णदास बोले—"हाँ बेटी, एक नूपूर मुझे मिला है। पर यह नूपूर किसका है कह सकती हो।"

किशोरी ने बताया कि उसकी सहेली का एक सोने का नूपूर कल रात खो गया है। वह राजनन्दिनी है और उम्र में तरुणी। लोगों के समक्ष आने में उसे बड़ा संकोच होता है। इसलिए अपनी सहेली को उसने नूपूर की खोज में भेजा है।

दुःखी कृष्णदास ने कौशल पूर्वक कहा—"किन्तु तुम्हारा कथन सत्य है अथवा नहीं, यह मैं कैसे समझूँ? इसलिए नूपूर के हकदार को ही मेरे

पास ले आओ। इस नूपूर के साथ उनके चरणों को मिलाकर ही मैं तुम्हारी बात पर विश्वास करूँगा। यदि यथार्थ ही यह नूपूर तुम्हारी सखी का है, तो मैं स्वयं अपने हाथों से उनके चरण में पहना दूँगा। अन्यथा यह नूपूर तुम्हें नहीं मिल सकता।

कृष्णदास अपने विचार पर अटल रहे। उनकी बात सुनकर वह बालिका चली गई परन्तु कुछ क्षणों के बाद वह फिर वापस आ गई। अब उसके साथ राजनन्दिनी सहेली भी थी।

भक्त कृष्णदास के शरीर में भर गया एक अद्‌भुत पुलक-सिहरन ! नवागता किशोरी के सम्पूर्ण अंग से स्वर्गीय रूपमाधुरी उच्छलित हो रही थी। कृष्णदास उसे देखते ही रह गए अपने अपलक नेत्रों से।

तब उन्होंने प्रश्न किया—"तुम दोनों काल रात्रि में क्यों इस मंदिर-प्रांगण में आई थीं, यह मुझे बताना होगा।"

सुधा के समान मीठे स्वर में नूपूर की अधिकारिणी ने स्वयं इस प्रश्न का जवाब दिया—"मैं बहुत क्या कहूँगी ? यह मेरा निकुंज मन्दिर है। अब तुम सब समझ लो। जयादा हठ न करो। देखो सुबह होने को आई। मेरा नूपूर तो लौटा दो।"

साधक कृष्णदास के नयनों के आवरण न जाने कौन धीरे-धीरे खोल रहा है। सर्वसत्ता के माध्यम से उन्होंने समझ लिया कि उनके सामने खड़ी यह राजनन्दिनी और कोई नहीं, स्वयं कृष्णप्रिया राधारानी हैं ! साथ में किशोरी भी उनकी सखी ललिता है। कृपा-पूर्वक आज वृष-भानु नन्दिनी ने उन्हें दर्शन दिया है। खोगए नूपूर को वापस कराने की छलना में आज दुःखी कृष्णदास की उद्धार के लिए देवी की यह सम्पूर्ण कारुण्य लीला है !

अश्रुपूर्ण स्वर में कृष्णदास ने हाथ जोड़कर प्रार्थना की—"राधारानी यदि इस अधम पर इतनी कृपा है तो एकबार अपना स्वरूप दिखाकर कृतार्थ कर दो।"

प्यारी जी ने मुस्कुराकर कहा--"इन आँखों से मेरा सत्य रूप क्या देख सकोगे ?"

दु खी कृष्णदास के आँसुओं को देखकर ललिता का चित्त पिघल गया। अब उसने कहा--"प्यारीजी, जव तुम्हारी कृपा हुई है, तो थोड़ी शक्ति भी दान करो।"

राधारानी जी ने अपने कृपाभंडार को खोल दिया। कृष्णदास की आँखों के सामने खुल गया अतीन्द्रिय लोक का सिंह द्वार. श्रीगोविन्द की आह्लादिनी शक्ति के प्रकाश दर्शन कृष्णदास को हो गये।

क्षणभर के दर्शन थे। परन्तु उनकी सर्वसत्ता दिव्य आनन्द में पूर्ण हो गई। साथ ही उन्होंने सुना प्यारी जी मधुर स्वर में उन्हें आशीर्वाद देते हुए कह रही हैं—"कृष्णदास, तुम्हारी एकनिष्ठ सेवा और भक्ति से मैं प्रसन्न हूँ। मेरी कृपा के चिह्न स्वरूप यह नूपुर चिन्हित तिलक अपने ललाट में तुम आज से धारण करो।"

यह कह कर वृन्दावन का रजलिप्त नूपुर कृष्णदास के ललाट से स्पर्श कराकर राधारानी जी अपनी सखी के साथ अदृश्य हो गईं। और साथ ही साथ भक्त कृष्णदास चेतनाहीन होकर भूमि पर गिर पड़े।

चेतना लौटने पर कृष्णदास रोते हुए श्रीजीवगोस्वामी के निकट पहुँचे। राधारानी के अलौकिक दर्शन तथा उनकी कृपा प्राप्त करने की बात उन्होंने श्री जीवगोस्वामी को विस्तार के साथ वतलायी।

विवरण सुनकर श्रीजीव के नयनों से पुलकाश्रु की धारा बहने लगी। कृष्णदास को आशीर्वाद दिया और कहा—"वत्स, आज से तुम्हारा नाम दुःखी कृष्णदास नहीं क्योंकि तुम्हारा दुःख अब न रहा। तुमने तो श्याम प्रिया प्यारी जी की वहुजन वाञ्छित कृपा को प्राप्त कर लिया। आज से तुम दुःखी कृष्णदास के बदले गोस्वामी श्यामानन्द के नाम से पुकारे जाओगे। यही होगा तुम्हारा नया नाम। श्री मतीजी का नूपुर लांछित तिलक चिन्ह तुम अपने ललाट पर आज से तिलक भूषण के रूप में धारण करोगे।"

श्रीजीव गोस्वामी से ऐसी स्वीकृति और सम्बर्द्धना प्राप्त करना किसी भी वैष्णव के लिए परम सौभाग्य की बात है। केवल ब्रजमंडल में ही नहीं, सम्पूर्ण गौड़ीय वैष्णव समाज में श्यामानन्द का नाम प्रचारित हो गया।

इधर उनके सम्बन्ध में तरह तरह की बातें पल्लवित होकर ठाकुर हृदय चैतन्य के कानों में पहुँची। एकबार एक वैष्णव पंडित ने वृन्दावन से लौटकर उनसे कहा—"ठाकुर, दुखी कृष्णदास ने आपको त्याग कर दूसरे गुरु को ग्रहण कर लिया है। केवल यही नहीं, आपके दिए हुए नाम और तिलक भी उसने बदल दिए हैं।"

हृदय चैतन्य क्रुद्ध हो उठे। उन्होंने श्रीजीव गोस्वामी के पास एक पत्र भेजा कि दुःखी कृष्णदास को अविलम्ब उनके पास भेज दें।

वृन्दावन से श्यामानन्द को कालना आना पड़ा। गुरुदेव को प्रणाम कर वे हाथ जोड़कर खड़े हो गए।

हृदय चैतन्य उस दिन बहुत उत्तेजित थे। शिष्य की ओर तीक्ष्ण दृष्टि से देखते हुए उन्होंने पूछा—"जवाब दो क्यों तुमने गुरु प्रदत्त वेश का नाम परिवर्तित किया। चिराचरित गौड़ीय वैष्णवों का तिलक त्याग करने का साहस तुम्हें कैसे हुआ?"

श्यामानन्द ने सविनय निवेदन किया—"प्रभु, आप ही की कृपा से यह सब सम्भव हो सका है।" गुरु की कृपा पाकर ही उनकी अध्यात्म साधना सम्भव हो सकी है तथा अलौकिक ज्ञान प्राप्त हुआ है, यही उनके कहने का तात्पर्य था। परन्तु क्रुद्ध ठाकुर महाशय सुनने को तैयार नहीं थे।

वे बोले—ऐसी चालाकी नहीं चलेगी। अगर मैं ही तुम्हारे इन परिवर्तनों का कारण हूँ तो फिर मैं तुम्हारा गुरु, आज आज्ञा देता हूँ कि यह नाम और तिलक बदल कर तुम फिर पहले जैसे ही रहो।"

श्यामानन्द शान्त तथा आत्म समाहित होकर खड़े थे। उन्होंने निवेदन किया- "प्रभु, यह नया तिलक गुरु-कृपा का ही प्रसाद है।

अगर परिवर्त्तन करना है, तो आप स्वयं कर दीजिए । यह तिलक मेरे ललाट से मिटा दीजिए ।"

उत्तेजित ठाकुर महाशय अपने वस्त्र द्वारा घिस-घिस कर शिष्य के ललाट से तिलक मिटाने लगे । किन्तु आश्चर्य की बात थी कि बार-बार घिसने के बाद भी यह तिलक मिटाना सम्भव नहीं हो सका । तभी गुरु ने समझ लिया कि राधारानी के नूपुर से चिन्हित यह दिव्य तिलक सचमुच अनुपम है, तथा उनके शिष्य आज भक्ति-सिद्ध हो उठे हैं । दिव्य शक्ति में आज वे शक्तिमान हैं । गुरु ने अपनी भूल समझ ली ।

स्ऽश्रुनयन होकर उन्होंने शिष्य को आलिंगन किया । वृन्दावन से प्राप्त राधागोविन्द जी का एक जाग्रत विग्रह उनके पास था । श्यामानन्द को उन्होंने सहर्ष उस विग्रह की सेवा का भार दे दिया ।

इस विग्रह को प्राप्त कर श्यामानन्द को बहुत आनन्द हुआ । बाद में उड़ीसा के गोपीवल्लभपुर मठ में उन्होंने इस विग्रह की स्थापना की ।

इसी समय गुरुदेव के निर्देशानुसार उन्हें विवाह करना पड़ा एवं उनका आचार्य जीवन शुरू हो गया ।

राधागोविन्द के विग्रह की सेवा द्वारा उन्होंने वैष्णवीय आचारों को उड़ीसा के जनसमाज में ला दिया । लाखों उड़िया भक्तों को दीक्षित कर श्यामानन्द ने समस्त उड़ीसा में एक अपूर्व भक्तिरस की धारा उत्सारित कर दी । केवल गरीब एवं साधारण स्तर के मनुष्य ही नहीं, वरन् उच्च वर्ण के सैकड़ों मुमुक्षु व्यक्तिगण भी इन वैष्णव चूड़ामणि का आश्रय ग्रहण कर धन्य हुए ।

दीर्घ कर्ममय जीवन के अन्त में इन शक्तिधर वैष्णव ने अपने शिष्य और भक्तों के बीच गौरतत्व की व्याख्या करते-करते नित्यलीला में प्रवेश किया । इसी तरह इनके आचार्य जीवन की समाप्ति हुई ।

श्यामानन्द के बारह विशिष्ट शिष्य थे। इन्हीं से बारह वैष्णव शाखाओं की उत्पत्ति हुई। इन शिष्यों में सर्वप्रधान थे रयनी के रसिक मुरारी। ठाकुर गोंसाईं अथवा रसिकानन्द के नाम से तत्कालीन वैष्णव समाज में इन्होंने ख्याति अर्जित की थी। सुवर्णरेखा के तीर पर गोपीवल्लभपुर में श्यामानन्दी सम्प्रदाय का प्रधान केन्द्र स्थापित हुआ। उड़ीसा के धर्म और संस्कृति के क्षेत्र को इसने दीर्घकाल तक प्रभावित प्रसारित किया।

□

हरिहर बाबा

शीर्ण देह, नंगा, पागल काशी के रास्तों घाटों पर अपने मन की मौज में घूम-फिर रहा है। शरारती लड़कों के झुंड प्रायः उसको घेर लेते हैं, कभी ललकारते हैं, और कभी तरह-तरह से तंग करते हैं।

एक दिन राजघाट के क्षेत्र में एक चौड़ी गली के मोड़ पर उसको घेर लाखों की भीड़ जमा हो गयी है। कोई हँसी उड़ा रहा है, तो कोई ढेला मार रहा है। परन्तु पागल को जैसे इसकी परवाह ही नहीं हो। एक-एक ढेला शरीर पर पड़ रहा है और वह उल्लास पूर्वक बोलता जा रहा है—जय राम, जय राम, जय सीताराम।

थोड़ी ही दूरी पर स्थित एक घर में इसी समय एक धर्म सभा का अनुष्ठान हो रहा था। काशी के प्रख्यात आचार्य, साधक प्रवर शिवराम किंकर वहाँ तत्त्व व्याख्या कर रहे थे। सहसा उन्होंने खिड़की के रास्ते से बाहर देखा तो इस उन्माद पूर्ण दृश्य की ओर उनकी दृष्टि निबद्ध हो गयी। आचार्य चौंक पड़े। यह क्या! ये तो साधारण मनुष्य नहीं हैं। सिद्धकाम, योगविभूति सम्पन्न महापुरुष के समस्त लक्षण इनके शरीर में विद्यमान हैं। अपरूप अलौकिक आलोकद्वय से इनका सारा मुखमंडल प्रदीप्त है। चंचल बालक यह क्या कांड कर रहे हैं? यह तो भस्माच्छादित वह्नि के साथ खेल करने जैसी मूढ़ता है!

धर्म व्याख्या बीच में ही रोककर आचार्य जल्दी-जल्दी रास्ते पर उतर आये। भक्तमंडली ने भी कौतूहल वश उनका अनुसरण किया।

बालकों को भगा कर आचार्य शिव किंकर ने परम श्रद्धापूर्वक इस उन्माद ग्रस्त पुरुष को प्रणाम निवेदित किया। उसके बाद साथी शिष्यों की ओर मुड़कर उन्होंने कहा, 'तुम सभी इन्हें पहचान लो। उन्मादी के छद्म वेश में रहने पर भी ये एक शक्तिधर महात्मा हैं। मानव कल्याण के लिए ही ये अवतीर्ण हुए हैं। शीघ्र ही काशी के साधक समाज में इनके तपः सिद्धि का आलोक प्रकाशित हो उठेगा। तुम सभी इसका ध्यान रखना कि कोई इन्हें कष्ट न दे तथा इनकी किसी प्रकार क्षति न करे।"

उस दिन के ये उन्माद ग्रस्त पुरुष ही काशी धाम के विख्यात साधक हरिहर बाबा थे। इन महात्मा के अध्यात्म साधना की अमृत धारा प्रायः अर्ध शताब्दी तक जन समाज के ऊपर वर्षित होती रही। राम नाम साधना के मूर्त विग्रह के रूप में सारे उत्तर भारत में उनकी कीर्ति फैल गयी।

बिहार के छपरा जिले में जाफरपुर नाम का एक ग्राम है। लगभग १८२९ ई० में हरिहर बाबा ने वहाँ जन्म ग्रहण किया। उनके पूर्वाश्रम का नाम था—सेनापति। पिता सरयूपारी तिवारी ब्राह्मण थे। सरल मध्यवित्त परिवार था, तथा घर में अर्थाभाव विशेष दृष्टिगोचर नहीं होता था।

परन्तु अनायास एक दिन इस सुखी गृहस्थी में दैव का निर्मम आघात पड़ गया नितान्त अल्पवयस में सेनापति, अपने पिता तथा माता, दोनों को खो बैठे। आश्रय विहीन, अभिभावक विहीन इस कुसमय में उनके कई भाई घनिष्ट आत्मीयों द्वारा प्रतिपालित हुए।

यौवन में पदार्पण होते-होते सेनापति के परिवार में फिर शोक की करुण छाया लौट आयी। एक अनुज भ्राता सभी को शोक सागर में निमग्न करके अकाल में ही लोकान्तर गमन कर गया। वह निर्मम शोक का आघात सेनापति के हृदय में बाण जैसे लगा। तरुण हृदय में वैराग्य की ज्वाला फूट पड़ी। उनका मन संसार को छोड़कर कहीं और निकल पड़ने को छटपटाने लगा।

सात्विक संस्कार लेकर ही उन्होंने संसार में पदार्पण किया था। इतने दिनों मंदिरों में विग्रह दर्शन करते हुए घूमना उनका कार्य था। किसी स्थान पर धर्म सभा देखते ही उनके उत्साह की सीमा नहीं रहती थी। जाफरपुर ग्राम में मंगनीराम नाम के एक तपस्या परायण ब्रह्मचारी का निवास था। सेनापति उनके प्रति बहुत आकृष्ट थे। समय मिलते ही वे उनके पैरों के पास आकर चुपचाप बैठे रहते। इस साधक के पुण्यमय स्पर्श ने मुमूर्षु तरुण के जीवन में एक दूर प्रासारी छाप छोड़ दी।

संसार के नाना दुःख एवं ताप से उनका जन्मगत संस्कार क्रमशः उद्दीपित होता रहा। धीरे धीरे अंतर की गहराइयों में तीव्र आलोड़न जग पड़ा। सन्यास जीवन ग्रहण एवं ईश्वर दर्शन हेतु, वे बहुत व्याकुल हो उठे।

शीघ्र ही सेनापति ने अपने जीवन का मुख्य उद्देश्य स्थिर कर लिया। जिस तरह भी हो, भगवत् दर्शन उन्हें करना ही होगा। इस हेतु चरम आत्मत्याग के लिए वे सर्वथा प्रस्तुत हो उठे। परन्तु अध्यात्म जीवन का पथ संधान उनके लिए सर्वथा अपरिचित था। इसके लिए काफी कुछ की आवश्यकता थी। पहली आवश्यकता गुरु-करण की थी। इसीलिए वे प्रतिदिन एक ऐसे समर्थ साधक की तलाश में लग गये जो गुरु रूप में उनके जीवन तरी को उस पार पहुँचा देने में समर्थ हों।

गोधूलि की गैरिक आभा उस दिन आकाश—पृथ्वी को व्याप्त कर फैल रही थी। एक वृक्ष तले सेनापति एकाकी अपने में मग्न बैठे हुए हैं। सहसा एक पथिक सन्यासी पर उनकी दृष्टि पड़ी। शरीर पर मात्र कौपीन है, सिर पर जटाओं का भार। परिव्राजक साधक परमानन्द निकटस्थ वन पथ पर अग्रसर हो रहे हैं।

पता नहीं क्यों सेनापति अत्यन्य व्याकुल होकर उनकी ओर दौड़ पड़े। भक्तिपूर्वक प्रणाम निवेदित करने के बाद उन्होंने कहा, "बाबा, मैं बड़ा अभागा हूँ। इस भवसागर के तट का भी संधान नहीं पा रहा हूँ। दिशाहारा होकर यत्र तत्र भटक रहा हूँ। आपके दर्शन मात्र से ही मुझे ऐसा लगता है

कि आपके जैसे ही कोपीन पहन कर रास्ते पर निकल पड़ूँ। कृपा करके यदि आप अनुमति दें तो आज, अभी और यहीं से आपका अनुसरण कर डालूँ।

"ऐसा क्यों बेटा, अनायास तुम इस तरह मेरे साथ कहाँ चले जाना चाहते हो? इसके अलावा, इस तरुण अवस्था में भावनाओं में बह कर सदा के लिए गृह त्याग कर देना क्या अच्छा होगा?"

"बाबा, हृदय से तो मैंने गृह त्याग काफी दिनों से कर रखा है। अब मुझे वास्तविक आश्रय की आवश्यकता है। आप मुझ पर दया करके उसे प्रदान कीजिए।"

सुनो बेटा, मैं कभी किसी को शिष्य बनाता नहीं। इस रास्ते में सोनपुर, हरिहर क्षेत्र के मेले में जा रहा हूँ। संभवतः तुम जानते होगे कि वहाँ अनेक समर्थ साधक आकर उपस्थित होते हैं। कोई-कोई भाग्यवान उनकी कृपा लाभ कर धन्य भी होते हैं। बेटा, यदि गृह त्याग ही तुम्हारी प्रबल इच्छा है, तो क्षेत्र के मेले में आओ। संभव है, वहाँ भाग्यक्रम से किसी की कृपा मिल जाय।

उसी क्षण तथा उन्हीं वस्त्रों में सेनापति इन सन्यासी के सहचर हो गये। आत्म-परिजन किसी से कुछ प्रकट न करके उन्होंने सर्वदा के लिए संसार का त्याग कर दिया। उस समय उनकी अवस्था मात्र अठारह वर्ष थी।

मेला क्षेत्र में पहुँच कर मुमुक्षु तरुण ने हरिहर नाथ के मन्दिर के निकट ही एक महापुरुष का सान्निध्य लाभ किया। इन्हीं महात्मा से उन्होंने राम मंत्र की दीक्षा ली, तथा योग एवं तंत्र के नाना गूढ़ साधन उपदेश भी प्राप्त करके वे धन्य हुए।

कुछ दिनों के बाद क्षेत्र का मेला समाप्त हो गया। महात्मा ने अपने तरुण शिष्य को बुलाकर कहा, 'बेटा, तुम चुपचाप अयोध्या चले जाओ। वहीं सरयू तीर पर निवास करके, एकनिष्ट होकर निर्दिष्ट साधक भजन का आरंभ करो। एक बात का सदा स्मरण रखना, भाग्य

से ही मानव शरीर मिला है जो कि प्रभु हरिहर का पीठ स्थान ही है। साधन की शक्ति से इस पीठ को जाग्रत कर उठाना होगा। उसके बाद हरिहरमय होकर तुम्हें परमात्मा का लाभ करना होगा।"

महात्मा के इस उपदेश का सेनापति ने कभी विस्मरण नहीं किया। परमनिष्ठा, वैराग्य एवं आत्म त्याग के माध्यम से अपने आध्यात्मजीवन को दिन पर दिन समृद्धतर करते रहे। अपनी व्यक्तिसत्ता को भुला कर उन्होंने सभी से अपना परिचय 'हरिहर'—भैया के नाम से देना शुरू किया।

अयोध्या पहुँचकर हरिहर भैया आनन्द से आत्मविस्मृत हो उठे। यह वही पुण्य भूमि है, जहां परम पुरुष रघुनाथ जी आविर्भूत हुए थे। उनके पद स्पर्श से यहाँ का प्रत्येक धूलिकण पवित्र हो चुका है, तथा सभी लीला-स्थान उनकी स्मृति से परिपूर्ण हैं। परम उत्साह पूर्वक वे दर्शनीय स्थलों के दर्शन को निकल पड़े। दिन रात प्रभुजी का स्मरण, मनन तथा अनुध्यान ही उनके जीवन का लक्ष्य हो गया।

कुछ दिन बाद सरयू तट पर कठोर तपस्या शुरू हुई। शीत, ग्रीष्म का बोध नहीं है, आहार, निद्रा भी लुप्त हो गये। तरुण साधक मात्र साधन, भजन करते चल रहे हैं। इस समय उनके कृच्छ्व्रत पर बरबस अनेक लोगों की दृष्टि आकर्षित होती। सारा दिन और रात वे नदी तीरस्थ वृक्ष के नीचे बैठकर काट देते, और दो चार दिन बाद मात्र एक मुट्ठी सत्तू गले के नीचे उतार कर किसी तरह अपनी जीवन रक्षा करते।

एक बार जाफरपुर के कुछ लोग अयोध्या तीर्थ यात्रा के लिए आये हुए थे। सरयू नदी में स्नान तर्पण करते समय डोर-कौपिन पहने कृच्छ्व्रती तरुण तापस पर उनकी दृष्टि पड़ी। पहचानने में समय नहीं लगा कि यह उन लोगों का ही ग्रामवासी सेनापति तिवारी है। कभी एक साधु के साथ वह अन्तर्ध्यान हो गया था और अब तक उसके विषय में कोई समाचार नहीं मिल पाया था।

सभी ने मिलकर हरिहर भैया की खींचातान शुरू कर दी। कहा,

"बन्धु, तुम्हारा ग्राम पुकार रहा है, अब वापस चले चलो। साधु हो जाने की अवस्था अभी तो तुम्हारी हुई नहीं। क्यों इस तरह अपना जीवन नष्ट कर रहे हो, बताओ ? गृहस्थी में क्या धर्म-कर्म नहीं हो सकता ?

हरिहर भैया ने दृढ़ता पूर्वक उत्तर दिया, "आप सभी मेरे शुभचितक हैं। अपनी समझ से तो आप ठीक ही बात कह रहे हैं। परन्तु मेरे लिए घर वापस जाना सर्वथा असम्भव है।"

"क्यों असम्भव है, साफ-साफ बताओ।"

"फिर सुनें। मैंने अपनी अठारह वर्ष की ही अवस्था में ही इस संसार के असारत्व की बात समझ ली है। माता, पिता और छोटे भाई की मृत्यु में मैंने देखा है—मनुष्य कितना असहाय है, और कितना नाशवान है उसका जीवन। इसीलिए तो घर छोड़कर भाग आया हूँ। अयोध्या की पुण्यभूमि में इसी सरयू तीरपर मैं अपने इष्टदेव रामजी के साधन का व्रती हूँ। या तो उनको लाभ करूँगा, अथवा यहीं शरीरपात हो जायगा। स्पष्ट सुन लें, प्राण रहते मैं अपने इस पथ का परित्याग नहीं करूँगा।"

अन्ततः ग्रामवासियों को अपना हठ छोड़ना पड़ा। विरक्त होकर उन लोगों ने वहाँ से विदा ली।

कुछ दिन बाद हरिहर भैया का कृच्छव्रत एवं साधना कुछ-कुछ फलवती हुई। दैवयोग से उन्हें चिह्नितगुरु का संधान भी मिल गया।

एक दिन उषा काल में अयोध्या परिक्रमा शेष करके तरुण साधक लक्ष्मण घाट की ओर आ रहे थे। सहसा नदी तीर से आती हुई मधुर भजन संगीत की स्वर लहरी उनके कानों में पड़ी। मन्त्र मुग्ध जैसे वह उस संगीत ध्वनि की ओर दौड़ पड़े। उन्होंने देखा—कगार के निचले हिस्से में एक छिपी हुई मिट्टी की गुफा है। जटा जूट मण्डित एक वृद्ध वैष्णव वहां बैठ कर अपने मन की मौज में भजन गा रहे हैं।

हरिहर भैया के उपस्थित होते ही उन्होंने भजन गाना बन्द कर दिया।

उसके बाद उन्होंने जो बातें कहीं उससे नवीन साधक के विस्मय की सीमा नहीं रही।

उन्होंने कहा, "बेटा, तुम आ ही गये। यह बड़ा अच्छा हुआ। इतने दिनों से यहाँ मैं तुम्हारी ही प्रतीक्षा कर रहा हूँ। तुम्हारे प्रार्थित धन की अब तुम्हें प्राप्ति होगी। परम प्रभु रामचन्द्र जी के आदेश से मैं तुम्हें दीक्षा मन्त्र दान करूंगा। शुभ लग्न में अधिक विलम्ब नहीं है। अभी तुम सरयू के पुण्य वारि में स्नान कर आओ।"

दीक्षा का अनुष्ठान शेष हुआ। अब हरिहर भैया के साधन जीवन में नवीन ज्वार तरंग आया। सारा देह-मन-प्राण उन्होंने गुरु निर्दिष्ट साधना में उत्सर्ग कर डाला।

हरिहर भैया के गुरु जी का नाम अज्ञात ही है। इसे उन्होंने सदैव गोपन ही रखा। अपनी अन्तरंग गोष्ठी में कभी-कभी वे कह उठते, "मेरे गुरुजी महान शक्तिधर थे। योग, तन्त्र एवं वैष्णवीय साधन पन्थों में उनकी समान एवं अबाध गति थी।"

भजन, साधन की कितनी उच्चतर पद्धतियों का हरिहर भैया को दान करके एक दिन गुरु जी ने कहा, बेटा मेरा प्रारंभिक कार्य शेष हो चुका है, अब विदा का लग्न उपस्थित है। तुम मेरी इस गुफा में ही बैठकर भजन साधन करो। इष्टदेव रामचन्द्र जी की कृपा शीघ्र ही मिलेगी। उसके बाद तुम सरयू तीर का त्याग करके परिव्राजन के लिए निकल पड़ोगे। परिव्राजन समाप्त हो जाने पर स्थायी रूप से तुम वाराणसी में ही निवास करना। वहीं तुम्हें तुम्हारी साधना का चरम साफल्य मिलेगा।"

अश्रु सजल नेत्रों से गुरुदेव को विदा करके हरिहर भैया तीव्रतर तपस्या के व्रती हुए। कुछेक वर्षों के भीतर ही यह तपस्या फलवती हो उठी, और इष्ट दर्शन का परम सौभाग्य उन्हें प्राप्त हुआ!

इसके बाद प्रभु श्री रामचन्द्र जी के निर्देश से हरिहर भैया को आध्यात्म जीवन के वृहत्तर उपलब्धि के मार्ग पर अग्रसर होना पड़ा। प्रभु जी में

कहा, "वत्स, जिस नाम से तुम परिचित हो चुके हो—उसी हरिहर नाम को जीवन्त कर के अपने जीवन में उतार लेने का प्रयास करो। तुम्हारी साधन सत्ता में हरि और हर एकीभूत होकर मूर्त्त हो उठें—और अयोध्या एवं विश्वेश्वर के धाम काशी को एक सूत्र में पिरो डालें। आशीर्वाद देता हूं कि शीघ्र ही तुम्हारी साधना पूर्णाङ्ग हो एवं जययुक्त हो। इससे पूर्व देश के प्रसिद्ध वैष्णव, शैव एवं तांत्रिक तीर्थों का परिव्राजन शेष कर डालो।"

सरयू तीर स्थित गुफा में कई वर्षों तक साधन भजन करने के बाद हरिहर भैया, सारे भारत का परिव्राजन करने के लिए निकल पड़े।

सर्व प्रथम इष्टदेव रामचन्द्र जी के लीला-स्थानों के दर्शन की इच्छा उनके अन्दर बलवती हो उठी। इस समय उन्होंने चित्रकूट, दंडकारण्य, नासिक, रामेश्वर इत्यादि स्थानों का उन्होंने भ्रमण किया। तथा इन सभी पुण्यभूमियों में निवास कर गंभीर तपस्या में रत हुए। इसके बाद देश के अन्यान्य शैव तथा वैष्णवीय तीर्थ समूहों के परिव्राजन को वे निकल पड़े। अन्त में वे काशी धाम में उपस्थित हुए। इस महापुण्यमय शिवभूमि के प्रति ही विशेष रूप से हरिहर भैया का मन-प्राण सर्वांग रूप से आकृष्ट हुआ, तथा अपने दीर्घ जीवन का अवशिष्ट काल उन्होंने यहीं पर काट दिया।

बाद में प्रधानतः वे काशी के दक्षिणी क्षेत्र के वनांचल में ही निवास करते थे। उस समय तक बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय का जन्म नहीं हुआ था, और नगवा तथा उसके निकटवर्ती स्थानों पर घना जंगल था। इस दुर्गम्य क्षेत्र में हरिहर भैया ने एकान्त निष्ठा से अपनी तपस्या का अनुष्ठान जारी रखा।

इस समय के साधन जीवन में उनकी त्याग-तितिक्षा असाधारण थी। प्रचंड शीत में भी उनके शरीर पर एक टुकड़ा वस्त्र नहीं रहता था। क्षुधा, तृष्णा का तो कोई प्रयोजन ही नहीं था, इसलिए आहार के लिए उन्हें कभी समय का अपव्यय करते नहीं देखा गया।

केदारघाट पर राजाराम चौबे नाम के एक ब्राह्मण निवास करते थे। सत् साधन निष्ठा एवं शास्त्रज्ञ ब्राह्मण के रूप में उनकी ख्याति थी। पता नहीं कैसे इन चौबे जी से हरिहर भैया का परिचय हो गया। परिचय के पश्चात चौबे जी बीच-बीच में नगवा के जंगल में घुस कर इन साधक को खोज निकालते। मिलने पर वे गमछे में जो कुछ भी खाद्य पदार्थ बांध कर ले जाते उसी से किसी तरह हरिहर भैया की जीवन रक्षा होती।

क्षुधा निवृत्ति के बाद दृढ़व्रत साधक फिर अपनी साधना के अतल में निमज्जित हो जाते।

हरिहर भैया के जीवन का अधिकांश समय कठोरतर तपस्या में ही व्यतीत हो जाता। दिन और मास की अवधि नहीं, प्रायः उन्हें देखा जाता कि वे निर्वसन गंगा की ढ़लान पर बैठे हुए हैं। प्रखर ताप वर्षन करते हुए सूर्य की ओर दृष्टि निवद्ध किए हुए वे ध्यानस्थ हैं।

इसी अवधि में हरिहर भैया के साधन जीवन में आचार्य विशुद्धानन्द सरस्वती एवं वीतराग बाबा के सानिध्य में एक नवीन ज्वार का सृजन कर दिया। इन दोनों महात्माओं के सान्निध्य में एक तरफ़ उन्हें वेद वेदान्त के अध्ययन का सुयोग प्राप्त हुआ तो दूसरी ओर अध्यात्म साधना की नाना उच्चतर पद्धतियों का दिशा निर्देश प्राप्त हुआ। [1]

हरिहर भैया का यह विशेष संकल्प था कि वे पवित्र पंचकोशी काशीधाम में, विश्वनाथ की अपनी पुरी में, कभी मल मूत्र त्याग नहीं

---

१. कुछ लोग यह भी सोचते हैं कि वीतराग बाबा ही हरिहर बाबा के गुरुदेव हैं परन्तु यह धारणा यथार्थ नहीं है। महात्मा वीतराग बाबा कुछ वर्ष पूर्व तक सशरीर विद्यमान थे। काशी के दक्षिण पूर्व कोण पर वन-पुरवा में १९५ वर्ष के ये नग्नदेह महात्मा एक जनशून्य बगीचे में वास करते थे। १९६० ई० में वीतराग जी ने लेखक से स्वयं ही कहा था—"हरिहर बाबा को मैंने दीक्षा" नहीं दिया। लेकिन यह बात ठीक है कि वे मेरी कुटिया में कुछ साल तक रहते थे।

करेंगे। प्रतिदिन वे रात्रि के अंतिम प्रहर में तैर कर गंगा के उस पार चले जाते तथा प्रातः कृत्यादि वहीं शेष करके तैरकर वापस चले आते। वर्षा तथा आंधी, भंवर अथवा उत्ताल तरंगे, किसी कारण से उनकी इस दैनिक दिन-चर्या में व्यवधान नहीं पड़ता।

पुण्यतोया गंगा से उनका विशेष स्नेह था। स्वेच्छा विहारी साधक वीच-वीच में वेगवती गंगा माई की गोद में कूद पड़ते और कभी-कभी पद्मासन लगाकर वहते रहते।

उत्तर जीवन में हरिहर भैया तुलसी घाट पर निवास करते। यहाँ आने के वाद से ही वैराग्य के मूर्त्त विग्रह कृच्छव्रती इन महासाधक के अंतरंग जीवन की गतिधारा में थोड़ा परिवर्त्तन हुआ। यहां पर कभी-कभी भक्तगण तथा मुमूक्षु नरनारी उनके सान्निध्य में आते रहते। भक्तगण ने इनको श्रद्धापूर्ण स्वर में हरिहर वावा के नाम से संवोधित करना शुरू कर दिया। इस तरह हरिहर भैया, हरिहर वावा के नाम से विख्यात हो गये।

एकांत चारी साधक अव जन जीवन के समक्ष परम मंगलकामी आचार्य के रूप में प्रतिष्ठित हुए। परन्तु यह आचार्य जीवन कभी भी हरिहर वावा को रुचिकर नहीं लगा। अल्पसंख्यक भक्त शिष्य तथा दर्शनार्थियों के अलावा उन्होंने अपनी महिमा तथा महात्म्य को कभी भी सहज रूप में प्रचारित होने का अवसर नहीं दिया।

इन दिनों नग्न सन्यासी हरिहर वावा काशी के जन जीवन में यदा-कदा विचित्र स्थिति उत्पन्न कर वैठते। महात्मा तैलंग स्वामी की नग्नता के कारण इससे पूर्व जैसी—जैसी समस्याओं का उद्भव होता, उसी तरह की समस्याएँ हरिहर वावा के कारण भी उत्पन्न हो जाती। राजघाट के निकट आचार्य शिवराम किंकर की धर्मसभा के निकट पूर्ववर्णित घटना के समय भी ऐसी ही चर्चा चल पड़ी थी।

कभी-कभी कौतूहली पथिक इन दिगंबर सन्यासी को घेर कर खड़े हो जाते और प्रश्नों की झड़ी लगा देते।

वे प्रश्न करते, "साधु तुम्हारा स्थान कहाँ है ? हम होगों को आज सही-सही वताओ ?"

उत्तर मिलता, "हरिहर भैया जिस दिन जहां रहते हैं, वही उनका स्थान है।"

"अच्छा तुम्हारा प्रकृत साधन मार्ग क्या है, स्पष्ट रूप से बताओ ?"

"राम नाम।"

'तुम्हारा परिचय क्या है।'

'मैं पतितपावन रामचन्द्र जी के चरणों का मात्र एक दास हूं। इसके अलावा, और कोई परिचय तो मेरा, है नहीं .'

'हरिहर भैया, हमलोगों को संसार की ज्वाला तथा शोक तापमय जीवन के लिए कोई औषधि तो वतला दो।'

'राम जी ही शक्ति है, राम जी ही बन्धु तथा रामजी ही वैद्य हैं : व्याकुल होकर, निष्ठा पूर्वक मात्र राम नाम का जप करते जाओ।'

वहुजन-मान्य उच्चकोटि के सन्यासी विलकुल नग्न रहते है किसी-किसी भक्त को यह बात अच्छी नहीं लगती। दिगंवरत्व के निवारण के लिए वे प्रयत्नशील भी रहते।

वहुत आग्रह करके उन्हें कपड़ा दिया जाता, किन्तु थोड़ी देर बाद ही पुनः वे इसी दिगंवर अवस्था में आ जाते 'कपड़ा कहाँ गया ? यह प्रश्न करने पर उत्तर मिलता—'जिन्होंने दिया था, उन्होने ही खोल लिया।'

एक सज्जन ने एक मूल्यवान वस्त्र में खूब अच्छी तरह गांठ देकर उन्हें भक्त रुप में सज्जित कर अपने को कृतार्थ अनुभव किया। परन्तु आश्चर्य कुछ देर बाद ही उन्होंने देखा कि बाबा दिगंबर अवस्था में कहीं से वापस आ रहे हैं। विरक्त एवं क्रुद्ध होकर भक्त बाबा से जवावदेही की अपेक्षा कर रहे हैं। किन्तु इन सज्जन के पास आते ही बाबा ने बाल सुलभ सी हंसते हुए कहा, 'देखो, आज मैंने अपना यथासर्वस्व दान कर डाला।

'अपना फिर यथासर्वस्व क्या है ?'

'उन्होंने कहा, 'मणिकर्णिका पर स्नान करते समय मैंने देखा कि एक वस्त्रहीन व्यक्ति शीत से कष्ट पा रहा है, तथा मेरी ओर देख रहा है। तुम्हारा दिया हुआ सुन्दर वस्त्र मैंने उसे दे डाला।'

"यह व्यक्ति हंसे या रोए यह समझ भी नहीं पाया ?"[1]

हरिहर बाबा के शरीर को शीत अथवा ग्रीष्म का कोई बोध नहीं होता था। अपने मन की मौज में भयानक शीत में भी दिगंबर अवस्था में गंगा के उन्मुक्त घाटों पर वे प्रहर पर प्रहर व्यतीत कर डालते। इस दृश्य को देख कर एक बार एक धनी भक्त का हृदय विचलित हो उठा। वह तुरंत दौड़ कर चौक से एक मूल्यवान कम्बल खरीद कर ले आया, और उसने उससे यत्नपूर्वक बाबा के शरीर को ढ़क दिया।

पूर्व अभ्यास के अनुसार नित्य रात्रि के अंतिम प्रहर में हरिहर बाबा गंगा में गोता लगाते और काफी समय तक जल में डूबकी लगाते रहते। भक्त द्वारा प्रदत्त मूल्यवान कम्बल उस समय घाट पर ही पड़ा रहता। स्नान तथा तैरना समाप्त करने के बाद बाबा मस्ती में किसी दूसरे घाट पर जाकर निकलते एवं पूर्ववत् विवस्त्र हो जाते।

भक्त ने एक दिन कहा, "बाबा आप स्नान-तर्पण के लिए गंगा में उतरने से पहले मूल्यवान नया कम्बल किसी के जिम्मे क्यों नहीं रख जाते। ऐसा कर देने से उसके खो जाने का भय नहीं रहेगा।"

वैराग्यवान संन्यासी ने तुरत उत्तर दिया, 'मुझे इतना हिसाब तथा इतनी सतर्कता रखने का क्या प्रयोजन है ? अगर इसकी आवश्यकता समझते हो तो अपना यह मूल्यवान कम्बल, ठीक समय पर आकर तुम स्वयं उठा कर रख लिया करो। राम ने मेरे लिए कम्बल की व्यवस्था की है। आवश्यकता होने पर वे स्वयं ही उसे संभाल कर रखेंगे। इसके लिए मुझे पचड़े में पड़ने की क्या आवश्यकता है ?'

---

१ वाराणसी में हरिहर बाबा के आश्रम से प्राप्त विश्वनाथ बाबा द्वारा लिखित जीवनी की पाण्डुलिपि से उद्धृत।

काशी में ग्रीष्म का प्रखर ताण्डव आरंभ हो गया है। ज्येष्ठ की तीव्र ज्वाला में रास्ते में या घाट पर किसी के रुकने की क्षमता नहीं है। अनेक पथिक लू के ताप से मूर्छित हो रहे हैं। ऐसे समय में बाबा के भक्त विजयानन्द त्रिपाठी उनकी खोज खबर लेने आये हुए हैं। वहाँ का दृश्य देखकर वे विस्मय एवं आतंक से व्याप्त हो उठे।

त्रिपाठी जी ने बाबा के निकट जाकर व्यग्र स्वर में प्रश्न किया "बाबा असह्य ग्रीष्म में, आग के जैसे गरम इस प्रस्तर खण्ड पर आप किस तरह बैठे हुए हैं ? इस तरह इतना कष्ट सहन करने की क्या आवश्यकता है ?

स्थिर चित्त से हरिहर बाबा ने आँखें खोल कर उनकी ओर देखा। त्रिपाठी जी के दुबारा प्रश्न करने पर बाबा का शरीर कौतूहल से भर उठा। हँसते हुए उन्होंने कहा, "बेटा, तुम समझ नहीं पा रहे हो कि इससे मुझे कितनी सुविधा है। ग्रीष्म के माध्यम से अपनी सहन शक्ति बढ़ा लेने पर शीत काल में मैं किसी कष्ट का अनुभव नही करूंगा।"

त्रिपाठी जी को अब ध्यान आया कि कृच्छव्रती संन्यासिगण ऐसा तो करते ही हैं। साधारणतः प्रतिवर्ष फाल्गुन मास से ही उनकी तितिक्षामय तपस्या आरंभ होती है।

दोपहर का स्नान शेष कर के हरिहर बाबा गंगा के घाट पर बैठे हुए हैं। उन नग्न संन्यासी से अनेक लोग स्नेह एवं श्रद्धा करते हैं, तथा कोई-कोई पत्ते के दोने में उनको खिलाने के लिए खाद्य सामग्री भी ले जाते हैं। दुष्ट लड़कों का एक दल थोड़ी दूर पर खड़ा उनके इस भोजन पर्व को देख रहा था। घाट के जन-शून्य हो जाने पर इन कुचक्री लड़कों का एक दल सामने आया। हरिहर बाबा उस समय अर्ध चैतन्य अवस्था में थे। दुष्टों ने दोने में थोड़ी काक विष्ठा लाकर उनके मुख के सामने रखी। निर्लिप्त भाव से उन्होंने वह सब भी खा डाला। उसी दिन रात को दृष्टिगोचर हुआ कि लड़कों का दल भयानक रूप से कै और कालेरा से आक्रान्त हो गया।

अब वे सभी आतंकित हो उठे। क्या गंगा के घाट पर उस साधु के साथ उन लोगों ने अभद्र आचरण किया था उसी कारण इस काल व्याधि का उन पर आक्रमण हुआ है ?

सारी बातों को सुनने के बाद लड़कों के अभिभावक गण उसी समय नग्न संन्यासी के पास दौड़ते हुए आये। चरणों में गिर कर उन्होंने निवेदन किया, "बाबा, अबोध बालकों को आपका माहात्म्य क्या समझ में आयगा ? कृपया अबकी बार आप उन्हें क्षमा कर दें।"

उन्होंने उत्तर दिया, "मेरे साथ उन लोगों ने कोई अन्याय तो किया नहीं है, किया है तो प्रभु रामचन्द्र जी के साथ। भोजन के लिए जो भी कुछ लाकर देता है, इस शरीर के माध्यम से रामजी उसी को ग्रहण करते हैं। इसलिये, तुम लोग उन सभी के लिए उनसे ही कृपा की भिक्षा मांगो। राम नाम का कीर्तन करो। मेरे प्रभु अत्यन्त दयालु हैं। निश्चय ही वे अबोध बालकों को क्षमा प्रदान करके नीरोग करेंगे।"

महासाधक द्वारा निर्देशित राम नाम के कीर्तन के फलस्वरूप इन बालकों का दल उसी दिन संपूर्ण रूप से रोगमुक्त हो गया।

हरिहर बाबा की योग विभूति तथा आध्यात्मिक जीवन की ख्याति इसी समय से धीरे-धीरे प्रचारित होने लगी। बहुसंख्यक भक्त एवं मुमुक्षु इसी के बाद इन सर्वत्यागी, शक्तिधर संन्यासी के सान्निध्य में उपस्थित होने लगे तथा अध्यात्म जीवन के पथप्रदर्शक के रूप में उनका वरण करने लगे।

हरिहर बाबा के आचार्य जीवन का प्रधान वैशिष्ट्य था—अगणित नर-नारियों में उन्होंने राम नाम की उद्दीपना का जागरण किया एवं परम पथ का संधान दिया, परन्तु उन्होंने कभी भी किसी को दीक्षामंत्र का दान नहीं किया। राम नाम की महिमा प्रचार के माध्यम से ही वे एक वृहत् भक्त गोष्ठी का निर्माण कर गये हैं, तथा काशी धाम के अध्यात्म जीवन में नवीन भावतरंग तथा नवीन अनुप्रेरणा का संचार कर गये हैं।

बाबा का शरीर क्रमशः पुराना एवं अधिक कार्यक्षम नहीं रह गया है, यह देख कर विशिष्ट भक्तगण उद्विग्न हो उठे। सभी ने मिल कर यह निर्णय लिया कि उन्हें शौच के लिए तैर कर गंगा को आर-पार करने नहीं दिया जायगा। इस निमित उनके लिए एक वृहद्‌ाकार बजरे की व्यवस्था की गयी।

अब से बाबा ने भक्तों द्वारा प्रदत इस बजरे में ही आश्रय लिया और इसे नवीन आश्रम में परिवर्तित कर डाला। विश्वविद्यालय के निकटस्थ नगवा में इस बजरे पर वे अपना समय व्यतीत करने लगे। उनके साथ निवास करते, कुछेक अंतरंग भक्त एवं सेवक। ऊषा काल में उठ कर एक बार हरिहर बाबा नौका द्वारा गंगा के उस पार जाते तथा अपनी प्रातः क्रियाओं का समापन कर वापस चले आते।

यह बजरे वाला आश्रम पवित्र राम नाम का उद्‌गम स्थल था। दिन-रात यह भजन, कीर्तन एवं रामधुन के गायन से मुखरित रहता। वहाँ रामायण, योगवाशिष्ठ एवं भगवद्‌गीता की व्याख्या एवं भाषण से अध्यात्मरस का अपूर्व प्रवाह प्रवाहित होता रहता।

हरिहर बाबा के तैरते हुए आश्रम, इस बजरे के कारण नगवा में एक दिन उपद्रव हो गया। विश्वविद्यालय के कुछ दुष्ट प्रकृति छात्रों ने अनायास आकर नौका पर उपद्रव आरंभ कर दिया। उन्होंने बाबा के सेवकों के साथ गाली गलौज शुरु किया तथा उसके बाद पत्थर फेंक कर कई लोगों को आहत भी कर दिया।

हरिहर बाबा के क्रोध की सीमा नहीं रही। उन्होंने आदेश दिया। "यहाँ अब एक पल भी रुकने का प्रयोजन नहीं है। उत्तर की तरफ और आगे चल कर अस्सी घाट पर लंगर डालो।"

बाबा के आदेश का अविलम्ब पालन हुआ।

इस घटना की सूचना विश्वविद्यालय के कुलपति मदन मोहन मालवीय जी के पास पहुँची। छात्रों के अशोभन आचरण की बात सुन कर वे अत्यन्त व्यथित हुए।

तुरत मालवीय जी हरिहर बाबा के बजरे पर उपस्थित हुए। साथ में विश्वविद्यालय के कई अध्यापक तथा स्थानीय नेता गण भी थे। प्रणाम निवेदित करने के बाद मालवीय जी ने हाथ जोड़ कर कहा, "बालक अबोध हैं, आपके माहात्म्य का ज्ञान किस तरह होगा ? उन्होंने जो भी अपराध किया है, उसके लिए हम सभी आपके चरणों में भिक्षा की याचना करते हैं। आप दया करके फिर नगवा घाट पर विश्वविद्यालय के समीप, नौका वापस ले चलें।"

बाबा ने हँसते हुए कहा, "चंचल बालकों को रामजी ने पहले ही क्षमादान कर दिया है—मेरे मन में भी उसके लिए कोई उद्विग्नता नहीं है। परन्तु मेरे मन में एक प्रश्न उठ रहा है कि तरूणों की मतिगति अगर ऐसे निम्नस्तर की हो जाय तो उनके लिए इस विश्वविद्यालय की स्थापना का क्या प्रयोजन है ? इतने धन का व्यय करके उन्हें किस तरह की शिक्षा दी जा रही है ?"

मालवीय जी उच्च आदर्श एवं चरित्र वाले नेता थे। उन्होंने सविनय महात्मा की बात मान ली, तथा निवेदन किया, "हम लोग अपनी क्षमता के अनुसार ही शिक्षा का आयोजन करते हैं। जिस दोष की आपने चर्चा की, उसके निराकरण की चेष्टा हमलोग करेंगे। भगवत् कृपा और आपलोगों के आशीर्वाद से ही वह संभव होगी। परन्तु बाबा, हम लोगों के अनुरोध की रक्षा आपको करनी ही होगी। आप बजरे को यथा स्थान वापस ले चलें।"

"ऐसा संभव नहीं होगा, बेटा। अब से मैं इस पवित्र असी घाट पर ही रहूँगा। देखो, प्रभु रामचन्द्र जी का क्या ही अद्भुत कौशल है ! इन शिवरूपी छात्रों के माध्यम से मेरी नौका को पंचक्रोशी काशी की सीमा रेखा के अन्दर उन्होंने किस तरह ठेल दिया।"

इसके बाद मालवीय जी, हरिहर बाबा को श्रद्धा निवेदित करने और भी कई दिन आये। उनकी तीव्र लालसा हुई कि हरिहर बाबा की सेवा के लिए वे कुछ विशेष व्यवस्था करें। इस विषय में बातचीत होने पर, एक दिन बाबा ने कहा, "बेटा, प्रभु जी के दीनतम सेवक के रूप में मैं उनके चरणों में पड़ा हूँ। मेरी सेवा का तो कोई प्रयोजन नहीं है! अतः तुम इसके लिए यथार्थतः व्यग्र हो तो इस तुलसी घाट के जीर्णोद्धार की व्यवस्था करा डालो। श्री रामचन्द्रजी के श्रेष्ठ भक्त, गोस्वामी तुलसीदास जी का यह साधन पूत स्थान आज जीर्ण अवस्था में पड़ा हुआ है। इसके लिए कोई व्यवस्था कर डालो।"

बाबा के इस आदेश के पालन होने में विलम्ब नहीं हुआ। सेठों की सहायता से मालवीय जी ने तुलसीघाट एवं आश्रम का जीर्णोद्धार करा दिया।

हरिहर बाबा की ख्याति धीरे-धीरे चारों ओर व्याप्त होने लगी। अब उनका बजरा एक पवित्र पीठस्थान के रूप में परिणत हो उठा! मात्र काशी क्षेत्र के भक्त साधक गण ही नहीं, देश-देशान्तर के मुमुक्षु एवं अध्यात्मरस पिपासु गण यहाँ इन शक्तिधर महात्मा के पास एकत्रित होने लगे।

हरिहर बाबा थे स्वल्पभाषी, इसके अलावा प्रायः राम रस में विभोर होकर अंतर्मुखीन अवस्था में रहते। परन्तु दर्शनार्थी भक्तों का दल अवाक् होकर देखता कि महात्मा के क्षणमात्र के दर्शन एवं स्पर्शन से अन्तर में अपरूप रूपान्तर घटित हो जाता। शक्तिधर महापुरुष पलभर में ही नये-नये आधारों पर अध्यात्म साधना के अमोघ बीजों का वपन करते। उनकी कृपा के फलस्वरूप सैकड़ों मनुष्यों के लोकोत्तर जीवन का द्वार उन्मोचित हो उठता।

हरिहर बाबा का भासमान आश्रय निराश्रयों के लिये परमाश्रय था। जिस तरह रोग, शोक एवं दुःख से पीड़ित मनुष्य यहाँ हाजिर होते रहते, उसी तरह मुक्तिकामी साधकों का दल भी यहाँ जुटा रहता। इन सिद्ध महात्मा की मात्र एक बात से किंवा एक दोहे से किसी को शांति का प्रलेप मिल जाता तथा किसी-किसी के जीवन में मुमुक्षा की अग्नि प्रज्वलित हो उठती।

साधारण काशी वासी भक्तों के लिये उनका उपदेश बड़ा ही सहज एवं सरल था। सर्वदा उनके हृदय में उत्साह की उद्दीपना जगाकर महात्मा कहते "तुम लोगों का अब भय किस बात का है? तुमलोग खास शिवपुरी में निवास करते हो—ज्योतिर्मय महाधाम में। इस महाधाम में रह कर राम नाम का निरन्तर जाप करते जाओ। संसार चक्र के आवर्तन के माध्यम से इस नाम को जोर से पकड़े रहो। सारे अभाव विनष्ट हो जायेंगे।"

ध्याननिमीलित महात्मा के मृदु मधुर कण्ठ से साथ के भक्तों के लिये प्रायः ही उच्चारित होता :

असारे खलु संसारे सारयेतत् चतुष्ठयम् !
काश्यां वासः सतां सङ्गः गंगाम्भः शंभुपूजनम् ।।

धनी, निर्धन सभी के लिये हरिहर बाबा का द्वार सदा ही खुला रहता। नेपाल के महाराणा काशी आये हुए हैं। लोगों के मुँह से जीवन्मुक्त महापुरुष हरिहर बाबा की ख्याति सुनकर वे उनके असीघाट स्थित बजरे पर उपस्थित हुए। बाबा को प्रणाम निवेदन करने के बाद उन्होंने कहा "बाबा, मेरा सारा जीवन राजसिक मनोवृत्ति लेकर ही कट गया। अब उस पार की पुकार आ रही है। उस पार की कड़ी के लिए चित्त व्याकुल हो रहा है। जहाँ तक भक्तिधन का प्रश्न है, उसमें मैं निरा कंगाल हूँ। संसार के जाल में बद्ध रहते हुए उसे किस प्रकार लाभ करने की चेष्टा की जाय, इसे कृपया बताने की कृपा करें।"

"महाराज, राम नाम के सिवाय, परमवस्तु पाने के लिए, और कोई सहज मार्ग मुझे ज्ञात नहीं है। वाल्मीकि, वल्मीक स्तूप के भीतर से इस नाम साधन का दिग्दर्शन करा गये हैं। आपका संसार.वल्मीक भी साधन पथ में बाधक नहीं होगा। आप इस नाम-रस में मत्त हो पड़े।" हरिहर बाबा ने स्नेह पूर्ण स्वर में कहा।

"परन्तु बाबा, मेरे लिए राम नाम ग्रहण करने में एक विशेष

असुविधा है। मेरा परिवार शैव है; इस कारण अब शिव को छोड़कर राम को किस तरह इष्ट रूप में ग्रहण कर पाऊँगा ? इसके अलावा शिवोपासना छोड़कर राम नाम में सहज प्रवृत्ति होगी किस तरह ?"

"हरिहर भैया के पास शिव और राम में कोई भेद नहीं है। आप तो जानते ही हैं, शिवस्य हृदयं विष्णु: विष्णोश्च हृदयं शिवः। एक ही परम सत्ता मंगलमय शिवरूप एवं मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम रूप में सर्वत्र ओत प्रोत है। इस सृष्टि में सर्वत्र, सर्व वस्तुओं में जो सदा रमण करते हैं, वही राम सत्ता सभी के हृदयों में इसकी तरंगों का संचालन कर रहे हैं। थोड़ी व्याकुलता तथा थोड़ा भक्ति प्रेम पूर्वक पुकारने पर सहज ही उसका जवाब मिल जाता है। आप इस सहज मार्ग के द्वारा अग्रसर हों।"

बाबा के बजरे के सामने एक दिन किसी विख्यात सेठ की सुसज्जित पालकी आकर ठहरी। बाहर आये एक शीर्णदेह, रोग-वृद्ध जर्जर व्यक्ति। सभी ने धर पकड़ कर उन्हें बाबा के सम्मुख लाकर बिठा दिया।

रोगी पर एक दृष्टि डालकर हरिहर बाबा ने कहा "इनको इतना कष्ट देकर यहाँ क्यों खींच लाये हो ? तुम तो जानते हो कि राम नाम रूप औषधि छोड़कर मेरे पास और कुछ भी नहीं है। उसी का जाप इनसे करने को कहो।"

रोगी के आत्मीय स्वजनों ने निवेदन किया, 'बाबा, उस दवाई का भी प्रयोग करने में हमलोगों ने त्रुटि नहीं की। रोगी के सामने अनेक बार राम नाम कीर्तन किए जा चुके हैं, तथा रोगी ने स्वयं भी नाम जप किया है, परन्तु उससे कोई लाभ नहीं हुआ। अब, आपकी कृपा दृष्टि के अलावा अन्य कोई उपाय नहीं दीखता।"

बाबा की मुखमुद्रा रोषपूर्ण हो उठी। तिरस्कार के स्वर में वे कह उठे, "अरे कोई है, इसे मेरे सामने से हटा दो। जो राम नाम अमोघ है, तथा जो

मेरा एकमात्र संबल है, उससे भी दुःख तथा यन्त्रणा में कोई कमी नहीं आयी। तब तो इसके जैसा अभागा दुनियाँ में और कोई नहीं है। इसका कोई उपकार करना मेरे वश की बात नहीं है। इसे जल्दी ही यहाँ से बाहर ले जाओ।"

सेठ के साथी हताश होकर उसे वापस लेकर चले गये। उनका हृदय पश्चात्ताप से भर गया था। राम नाम सिद्ध महापुरुष के समीप 'राम नाम से कार्य नहीं हो सका', यह कहना ही अशोभन था, यह सब सोच-सोच कर उनके दुःख की सीमा नहीं थी।

विख्यात आचार्य, देश के नेता और राजे महराजे लोग बाबा के पास आते जाते रहते, तथा अपने दुःख एवं कष्ट की नाना समस्याओं के समाधान के लिए वे अलौकिक शक्तियों द्वारा सहायता की प्रार्थना करते। ऐसी ही समस्याओं को लेकर दीन हीन कंगाल तथा अछूत भी इन समदर्शी महापुरुष के समीप काफी संख्या में आते। मछुआ मंगलू बाबा का ऐसा ही एक दीन दरिद्र भक्त था। एक दिन गम्भीर रात्रि में चुप-चुप वह असी घाट स्थित बाबा के बजरे में उपस्थित हुआ। बाबा से उसे आवश्यक मन्त्रणा करनी थी। उनकी सहायता के अलावा इस विपत्ति में मंगलू का उद्धार करने वाला ही कौन है।

राम नाम कीर्तन समाप्त हो गया है। सारे दिन की भीड़ और कोलाहल के बाद हरिहर बाबा शय्या पर शयन के लिए प्रस्तुत हैं। ऐसे ही समय में बाबा का यह धीवर भक्त विषण्ण मन से उनके सम्मुख उपस्थित हुआ।

एकान्त में ले जाकर बाबा ने प्रश्न सूचक दृष्टि से मंगलू की ओर देखा। सरल विश्वास के साथ उसने अपने दुःख की बात बाबा से निवेदित की, "बाबा, ऋणदाताओं के चक्कर में पड़ गया हूँ। महाजन बड़ा उत्पात कर रहे हैं। सोचा था, कई दिनों तक गंगा में सारी रात

जाल डालूंगा। कुछ बड़ी मछलियाँ पकड़ लेने के बाद ऋण चुकता हो जायगा।"

"फिर वह कैसा चल रहा है" बाबा ने आत्मीयता भरे स्वर में धीवर भक्त से प्रश्न किया।

हताश स्वर में मंगलू ने उत्तर दिया, " नहीं बाबा—उसी के लिए आज आपके पास दौड़ा आया हूँ। पिछले कई दिनों से जाल में एक भी बड़ी मछली नहीं पड़ रही है। गंगा माई ने इस अभागे से नजर ही फेर ली है। बाबा, अबकी आप नहीं कह देंगे तो ऋण शोध करना तो दूर की बात, खाने के भी लाले पड़ जायँगे।"

मंगलू की समस्या सुनकर हरिहर बाबा उद्विग्न हो उठे। इस विपत्ति से परित्राण का उपाय क्या है ?

कुछ देर चुपचाप न जाने क्या सोचकर उन्होंने धीमे स्वर में कहा, "सुनो बेटा ! तुम्हें कोई भय नहीं है। राम नाम जप तो करते हो ? वैसे ही करते जाना और कल रात गंगा में जाल फेंकने से पहले गंगा माई की दोहाई देना तथा अनुनय विनय करना। गंगा माई सभी की माता हैं—पापी-तापी, दीन-दुःखी सबके लिए उनकी करुणा का अन्त नहीं है। तुम्हारी प्रार्थना वे निश्चय ही सुनेंगी। देखोगे, कल से ही जाल में काफी मछलियाँ पड़ जायगी।"

कई दिन बाद, धीवर हरिहर बाबा के निकट आकर उपस्थित हुआ। उसका मन उल्लास से भरा हुआ है। हाथ जोड़कर उसने निवेदन किया, "बाबा, आपकी कृपा से सब ठीक हो गया। गंगा माई ने मेरी प्रार्थना सुन ली है। आजकल जाल में नित्य काफी बड़ी मछलियाँ मिल जा रही हैं। मेरा देना प्रायः शेष हो आया है।"

बाबा अत्यन्त प्रसन्न हैं। हंसते हुए कहने लगे, "देखो मंगलू , राम नाम और गंगा माई—इन दोनों की कृपा और महिमा कितनी अपूर्व है ! दारिद्र्य तथा देह रोग से लेकर सारे भव रोगों को ये नाश करने वाले हैं। सावधान, इन दो का आश्रय कभी नहीं छोड़ना।"

अंतरंग भक्त शिष्यों के लिए हरिहर बाबा की यह कृपा लीला परम विस्मयकर थी। जिस शक्तिधर महात्मा की कृपा से क्षण भर में उच्च कोटि के साधकों के मुक्ति का द्वार उन्मुक्त हो जाता, वे दरिद्र मंगलू के जाल में मछलियों के अभाव की समस्या के समाधान करने के लिए तत्पर होने में देरी नहीं करते। समदर्शी ब्रह्मविद् महापुरुष के लिए ही यह संभव था।

सिद्ध पुरुष हरिहर बाबा के दीर्घ जीवन में योगविभूति की विस्मय-कर लीला बहुत बार देखी गई है। विशिष्ट भक्त एवं अनुरागी साधकों की व्यक्तिगत अभिज्ञता तथा प्रत्यक्ष दर्शन द्वारा इसके अनेक विवरण पाये जाते हैं।

हरिहर बाबा काशी के एक सिरे पर वीतराग बाबा के साधन कुटीर में निवास कर रहे हैं। चरम कृच्छ व्रत एवं एकाग्र साधना में दिन व्यतीत हो रहे हैं। प्रतिदिन रात के अन्तिम प्रहर में गंगा स्नान करते हैं और उसके बाद गंभीर तपस्या में डूब जाते हैं। एक दिन स्नान के समय में एक दुर्घटना घटित हो गयी। भावतन्मय साधक पाँव फिसल जाने के कारण नागफनी के कांटे के एक झुरमुट पर गिर पड़े। उनके साथ के लोगों ने उनको जल्दी उठाकर सेवा सुश्रूषा आरम्भ की।

थोड़ा स्वस्थ होने पर हरिहर बाबा को ज्ञात हुआ कि प्रवीण महात्मा वीतराग बाबा भी कुछ दिन पहले नदी तट वाले इस झुरमुट से आहत हो चुके हैं। रक्तस्राव भी काफी हो गया था। इस बात को सुनते ही बाबा क्रुद्ध हो उठे। "कह उठे, देखो जो काँटे का पेड़ वीतराग बाबा जैसे महापुरुष को क्षत-विक्षत कर सकता है, उसे काशी के गंगा तीर पर रहने का कोई अधिकार नहीं है। उसी समय से नागफनी का पेड़ इस क्षेत्र में दिखलायी नहीं पड़ता।"

वाक् सिद्ध साधक का यह वाक्य शीघ्र ही फलित हो उठा। परम विस्मय, कंटकाकीर्ण नागफनी का पेड़ काशी के गंगा तीर पर अब नहीं लगता।

कई वर्ष बाद की बात ! हरिहर बाबा उस समय तुलसी घाट पर रहते हुए कठोर तपस्या में लीन थे । इस अवधि में चारों ओर उनके योगविभूति की ख्याति भी थोड़ी-थोड़ी फैल चुकी थी । बीच-बीच में आर्त्त एवं मुमुक्षु नरनारी उनके चरणों का आश्रय लेते तथा दुःख और दहन से अपनी मुक्ति की भिक्षा मांगते ।

एक दिन गम्भीर रात्रि में एक वृक्ष के नीचे आसन बिछाकर हरिहर बाबा सोये हुए थे । अकस्मात एक आर्त्त के चीत्कार से उनकी निद्रा भंग हो गयी ।

उसी मुहल्ले की एक वृद्धा भक्त प्रायः ही भक्तिपूर्वक उनके पास आती जाती रहती । अनायास वह हरिहर बाबा के आसन के सामने आकर पछाड़ खा कर गिर पड़ी । हताश होकर वह बाबा से कहने लगी, "बाबा मैं एक महान संकट में पड़ गयी हूँ । आपकी कृपा के अलावा उद्धार का अन्य कोई मार्ग नहीं है । मेरा लड़का कलकत्ता में नौकरी करता है । अभी वहाँ से एक तार आया है कि वह कालेरा से मरणासन्न है । बाबा मैं दीन दरिद्र विधवा हूँ । यह पुत्र ही मेरा एक मात्र संबल है । आप कृपा करके उसके प्राणों की भिक्षा दीजिए ।"

माई, तुम इतनी उतावली क्यों हो रही हो ? सर्व विघ्नहर रामनाम जप करती रहो । उसी से सारी आपदाएँ कट जायँगी ।"—हरिहर बाबा ने शांत स्वर में उत्तर दिया ।

"नहीं बाबा मेरे मुख के राम नाम जप से कोई कार्य नहीं होगा ! विपदा में पड़ते ही उसका जप करती हूँ, परन्तु विपत्तियाँ कटती कहाँ हैं ? बाबा, आप अपने हाथ से मुझे बच्चे के लिए कोई औषधि दें, जिसे लेकर मैं आज ही कलकत्ता रवाना हो जाऊँ ।"

किसी किस्म की सात्वना अथवा आश्वासन वह स्त्री सुनने को तैयार नहीं थी । मात्र दोनों नेत्रों से अविरल अश्रुधारा बह रही थी, तथा हाथ जोड़ कर वह बार-बार विनती कर रही थी ।

असहाया नारी के क्रन्दन से महापुरुष का हृदय विगलित हो उठा

शांत स्वर में उन्होंने कहा, "माँ तुम इस तरह रोओ मत, शांत होओ। सामने ही सड़क के किनारे मोदी की दुकान है। वहाँ से मेरा नाम लेकर एक (सोहारा फूल) ले आओ। मैं तुम्हारे पुत्र की रोग मुक्ति के लिए औषधि दे देता हूँ।"

वृद्धा उसी समय दौड़कर [सोहारा] उठा लाई।

फल हाथ में पड़ने के बाद महापुरुष कुछ देर तक उलट फेर करते रहे, उसके बाद अस्फुट स्वर में बोल उठे—जय राम जय राम। साथ ही साथ साथ उसे गंगा की गर्भ में फेंक दिया।

अब करूणा पूर्ण दृष्टि से वृद्धा की ओर देखते हुए उन्होंने कहा, "जाओ माँ, अब तुम्हें कलकत्ता जाने की आवश्यकता नहीं है! लड़का स्वस्थ हो चुका है। कल ही तुझे सूचना मिल जायगी। इस समय घर जाकर पर-मानन्द पूर्वक राम-नाम के जप में लग जाओ।"

दूसरे ही दिन कलकत्ता से वृद्धा के घर में एक जरूरी तार आ गया—रोगी पूर्ण रूप से स्वस्थ हो चुका है, उसके माँ को अब आने की कोई आव-श्यकता नहीं है।

यह वृद्धा जितने वर्षों तक भी जीवित रही, प्रतिदिन प्रातः आकर हरिहर बाबा के दर्शन करती तथा शिव रूप में उनका स्तव एवं स्तुति करती।

एक बार एक मंदिर की ऊँची सीढ़ी से गिरकर हरिहर बाबा गम्भीर रूप से घायल हो गये। आघात के फलस्वरुप पैर की एक हड्डी टूट गयी। भक्तगण अत्यन्त चिंतित हो उठे। तुरत उन्हें हस्पताल पहुँचाया गया।

विख्यात सर्जनों को आशंका थी कि हरिहर बाबा के पैर की हड्डी दो-तीन टुकड़े हो गयी है। उसी क्षण क्लोरोफार्म का प्रयोग करके टूटे हुए पैर का अस्त्रोपचार सम्पन्न हुआ। अस्थि को ठीक से जोड़ने के बाद डाक्टर गण केबिन से बाहर आ गये हैं। इसी समय सेवा में नियुक्त नर्स भ्रुत स्वर में चिल्ला पड़ीं "यह क्या? रोगी कहाँ है? अभी तो उसे

मैंने बिछावन पर सोये हुए देखा और इसी अवधि में वह कहाँ अदृश्य हो गया ?"

डाक्टर लोग विस्मित होकर फिर केबिन में वापस घुसे। सचमुच रोगी की शय्या खाली पड़ी थी। क्लोरोफार्म के द्वारा बेहोश रोगी किस तरह थोड़े समय के ही व्यवधान में वाह्य ज्ञान लाभ कर सका एवं स्थान त्याग करने में सक्षम हो सका ? इस रहस्य को जान पाना उन लोगों में से किसी के लिए भी सम्भव नहीं हो सका।

सभी भक्तगण दौड़े हुए हरिहर बाबा के स्थान पर गये। उन्होंने विस्मय पूर्वक देखा कि बाबा परमानन्द पूर्वक बैठे भजन का अनुष्ठान कर रहे हैं। कौन कह सकता है कि उनके पैर की हड्डी टूटी हुई है तथा थोड़ी देर पहले ही उनका आपरेशन किया गया है।

एक भक्त ने विनीत स्वर में कहा, 'बाबा, यह क्या ठीक हुआ ? आपके पैर की हड्डी टूट गयी है। बड़े सर्जनों से आपरेशन भी कराया गया है, फिर इस तरह सभी को परेशानी में डाल कर हस्पताल से चले क्यों आये ?'

महापुरुष ने हँसते हुए कहा, "देखो, प्रारब्ध बहुत बलवान है। उसका विधान मानना होगा, इसलिए अपना पाँव तुड़वाना पड़ा और इसके अलावा डाक्टरों द्वारा चीड़फाड़ कराने में भी मैंने कसर नहीं रखी। इतने से ही प्रारब्ध का क्षय हो चुका है। इसीलिए हस्पताल के बन्द कमरे में चुप चाप सोये रहना अब सम्भव नहीं हो सका ! ऐसी दशा में अपने स्थान पर वापस आ गया हूँ।"

हरिहर बाबा के उस दिन के इस काण्ड को देखकर डाक्टर एवं भक्तगण दोनों के विस्मय की सीमा नहीं रही।

विश्वनाथ बाबा, हरिहर बाबा के स्नेहभाजन एवं अन्तरंग शिष्यों में से थे। लगातार लगभग पचीस वर्षों तक यह बंगाली साधक एकनिष्ठ भाव से अपने गुरु की देखभाल करते थे और निकटतम सेवक के रूप में प्रतिष्ठित थे। शक्तिधर गुरु की साधना कृपा एवं विभूति लीलाएँ वे अपनी आँखों से देख कर धन्य हो चुके हैं। गुरु के माहात्म्य के वर्णन के समय यदा-कदा

वे इन सब निगूढ़ तत्वों का अन्तरंग भक्त के समक्ष प्रकटन करते। उनकी एक बार की प्रत्यक्ष देखी हुई कहानी का' मैं अभी वर्णन करूंगा।

ग्रीष्म की प्रचण्ड ज्वाला से वाराणसी के नर-नारी विचलित हो उठे हैं। अहर्निश सभी आकुलता से वर्षा के आगमन की प्रतीक्षा कर रहे हैं। उसी घाट स्थित बजरे पर सन्ध्या-पूजा तथा आरती समाप्त हो चुकी है। विश्वनाथ बाबा ने गुरु महाराज से निवेदन किया, "बाबा, आपका शरीर बहुत स्वस्थ नहीं है। सारा दिन लू झुलसती रहती है। सोचता हूँ, थोड़ी देर के लिए आपको गंगा में घुमा लाउं। शरीर थोड़ा ठण्डा हो जायगा!"

बाबा की अनुमति मिल गयी। थोड़े अन्तरंग भक्तों के साथ नौका विहार शुरू हुआ। गंगा में कुछ देर घूमने-फिरने के बाद आकाश के एक कोने पर सघन काले मेघ दृष्टिगोचर हुए। क्षण भर में ही एक प्रचंड आंधी चल पड़ी।

विश्वनाथ बाबा को मन ही मन बड़ा पश्चात्ताप हुआ। अन्तर में, बड़ी ग्लानि हुई। गुरु महाराज स्वयं तो भ्रमण करने के इच्छुक नहीं थे, हठ करके उन्होंने ही उनको इस विपत्ति में लाकर रख दिया!

तुरत बाजरे के नाविकों को पुकार कर उन्होंने कहा।" अभी सब पाल समेट डालो। सावधान तूफान के वेग से बजरा उलट न जाय।"

अब तक हरिहर बाबा ध्यान निमीलित नेत्रों से बजरे के भीतरवाले कक्ष में बैठे हुए थे। शिष्य को घबराते हुए देखकर उन्होंने मौन भंग किया। शांत स्वर में उन्होंने कहा 'बेटा, इतना परेशान क्यों हो रहे हो? मैं जिस स्थान पर आसन लगाकर बैठा हुआ हूँ, तथा राम नाम की दिव्य शक्ति से जो स्थान आवेष्ठित है, वहाँ यह नैसर्गिक उत्पात क्या करेगा? कोई भय नहीं है। जो आंधी बढ़ती चली आ रही है वह हमलोगों के इस बजरे वाले आश्रम को बचाती हुई निकल जायगी वह इस स्थान की कोई भी क्षति नहीं करेगी।

विश्वनाथ बाबा के समक्ष एक अभूतपूर्व दृश्य दिखलाई पड़ा। उन्होंने देखा ऐरावत के जैसे गर्जन करती हुई आँधी तथा तूफान न जाने किस दैवी प्रेरणा से बजरे को किनारे छोड़ कर बगल से निकलने लगा। हरिहर बाबा उस समय नीरव निश्चल एवं ध्यानस्थ थे। प्रकृति की विभीषिका के नियन्त्रण के जिस अद्भुत ऐश्वर्य का महाराज ने उस दिन प्रदर्शन किया वह दीर्घकाल तक विश्वनाथ बाबा के स्मृति पटल से विस्मृत नहीं हो पायी।

मनुष्येत्तर प्राणियों पर भी हरिहर बाबा के योगैश्वर्य का प्रभाव अमोघ था। बनारस विश्वविद्यालय के डाक्टर अयोध्या सिंह ने इसका एक मनोरंजक वर्णन दिया है—

एक दिन नगवा क्षेत्र में काफी शोरगुल मच गया। काशी नरेश का एक वृद्ध हाथी मस्त हो गया है। रामनगर में चारों तरफ तोड़-फोड़ करने के बाद इस हस्ती पुंगम को यह ख्याल आया कि गंगा पार करके वह वाराणसी शहर में वावेला मचाते। उत्तेजित अवस्था में वह चिग्घाड़ता हुआ गंगा में कूद पड़ा और असी तथा तुलसी घाट की ओर तैरता हुआ बढ़ने लगा।

इसी घाट के एक कोने में हरिहर बाबा वृक्ष के तले अपने इष्ट के ध्यान में निमग्न बैठे हुए हैं। दोनों नेत्र निष्पलक हैं तथा वे बाह्य ज्ञान शून्य हैं। उन्मत्त हाथी चिग्घाड़ता हुआ बाबा के सामने पहुँच गया। उस प्रांगण के समस्त नरनारी पहले से ही भय त्रस्त होकर, बहुत दूर खिसक गये हैं। सभीत नेत्रों से वे इस खूनी हाथी तथा आत्मसमाहित साधु की ओर देख रहे हैं। वे यही सोच रहे हैं कि क्षण में ही अपने पैरों से रौंद कर यह बाबा की भव लीला समाप्त कर देगा।

किन्तु यह क्या, विस्मय जनक दृश्य उनके सम्मुख उपस्थित हो गया! हरिहर बाबा की ओर थोड़ा आगे जाते ही हाथी मानो किसी इन्द्रजाल से क्षण भर में ही शांत हो गया। अपनी सूंड़ को नीचे करके वह आज्ञाकारी भृत्य के जैसे खड़ा हो गया। नग्न साधक के प्रेम की भावना से मानो वह

चिर बन्दी हो चुका हो, तथा लगता है जैसी उसकी व्यक्तिगत सत्ता है ही नहीं।

उन्मत्त हाथी के इस आश्चर्यजनक रूपान्तर की स्मृति काफी दिनों तक काशी जन समाज पर अंकित थी।[1]

दीर्घ दिनों की कृच्छ्र एवं कटोर तपस्या के फलस्वरूप हरिहर बाबा का शरीर क्लान्त होता जा रहा है। वयस भी सौ के आसपास पहुँच चुकी है। अब वे यदा-कदा अपने अन्तरंग भक्त एवं शिष्यों के समक्ष लीला संवरण का इंगित देने लगे हैं।

एक दिन भक्तों ने कहा, "बाबा, आप इच्छामय, स्वतन्त्र एवं ईश्वर स्वरूप हैं। मात्र इच्छा कर देने ही से तो आप बहुत वर्षों तक हमलोगों के मध्य कल्याण के ज्योतिस्तम्भ के रूप में विराजमान रह सकते हैं।"[1]

"वह कैसे हो सकता है, बेटा रामजी के चरणों में मैंने अपनी सारी इच्छाएँ निवेदित जो कर डाली हैं। उसे क्या वापस लिया जा सकता है?" स्निग्ध एवं मधुर कण्ठ से महात्मा ने उत्तर दिया।

बाबा, आपके आश्रम में हम लोग परम शान्ति पूर्वक हैं, तथा हम सबमें निरापद होने का बोध है। आप हम सबको छोड़कर नहीं जायेंगे।" बेटा जीव सत्ता की बात छोड़कर रामजी के परम स्वरुप की बात सोचो। वे हैं सारी सृष्टि में ओतप्रोत। उस स्तर पर तुम्हारा और मेरा विच्छेद किसी काल में भी नहीं है।"

एक दिन अनन्य सेवकों को पुकार कर उन्होंने कहा, "वृक्ष बहुत जीर्ण एवं पुरातन हो गया है। अब इसको अधिक दिनों तक रखना ठीक नहीं है।"

दूसरे दिन ही उन्होंने सारी खाद्य सामग्रियों का परित्याग कर दिया। शरीर रक्षा के लिए उन्होंने स्वयं ही व्यवस्था दी—मात्र एक कमण्डलु पवित्र गंगाजल। सभी को आभास मिल गया कि यह महाप्राण का उद्योग पर्व है।

---

1 डाक्टर अयोध्या सिंह 'दि ग्लोरी आफ हरिहर बाबा'। पृ० १७।

अंततः १९४९ साल की पहली जुलाई तारीख को प्रतीक्षित लग्न आ पहुँचा। बाबा के इच्छानुसार अगणित भक्त, शिष्य एवं अनुरागियों के लिए दर्शन दान हेतु उनका कक्ष-द्वार उन्मुक्त कर दिया गया। उसके बाद ग्यारह बजे उनकी अन्तिम आरती शेष हो जाने के बाद उन्होंने सर्वदा के लिए अपना अन्तिम निश्वास त्याग किया।

लीला-संवरण की सूचना उसी समय दावानल की तरह वाराणसी एवं उसके निकवर्ती क्षेत्रों में फैल गयी। हजारों की संख्या में नर-नारी आकर हरिहर बाबा के पवित्र आश्रम को घेरकर एकत्रित होने लगे। सजल नेत्रों से वे अपने-अपने स्वतः स्फूर्त प्राणों का अर्घ्य निवेदित करने लगे!

पुष्पमाला-विभूषित एवं चन्दन-चर्चित शरीर एक प्रस्तर शिला पर स्थापित किया गया। सुसज्जित नौका पर लिटाकर भक्तगण उसे मणिकर्णिका घाट ले गये। वहाँ वेद-मन्त्र एवं रामधुन संगीत की तरंगों पर पेटिका का कल्लोलिनी गंगा के अभ्यन्तर में निक्षेप कर दिया गया।

वाराणसी की अध्यात्म पुरी में हरि-हर की जिस मिश्रित सत्ता को महासाधक हरिहर बाबा ने अपनी साधना से मूर्त कर दिया था, आज भी उसके लिए साधक जनों के आभार की सीमा नहीं है।

—०—

महात्मा सुन्दर नाथजी

योगीवर सुन्दर नाथजी का जिसने एक बार भी दर्शन किया है, उसके लिए उन्हें विस्मृत कर पाना संभव नहीं है। सुन्दर, सुदर्शन लम्बा पंजाबी शरीर, गौर कांति, बड़ी-बड़ी आंखें तथा खड़ी नाक यह है उनके गंभीर व्यक्तित्व की रूप-रेखा। इसके अलावा सबसे बड़ी विशिष्टता है उनकी दीर्घ जटाओं का भार। आसन पर ध्यानस्थ बैठने पर उनके शरीर का एक बहुत बड़ा हिस्सा, उसके विशाल जटा-जाल से ढक जाता।

सुन्दर नाथजी कठोरी साधक थे। जीवन का अधिकांश भाग उन्होंने जन-समाज से दूर रह कर ही व्यतीत किया था। उनके तपस्या स्थल दुर्गम पहाड़ तथा दुर्गम अरण्य ही थे।

नाथ योग पन्थ के एक विशिष्ट धारक तथा वाहक थे सुन्दर नाथजी। उन्होंने गुरु स्थान, गोरखपुर में काफी समय व्यतीत किया था। गोरखपुर आश्रम में ही रहते हुए ही, गुरु कृपा स्वरूप योगसिद्धि प्राप्त करने के बाद वे कठोरतम तपस्या के पथ पर बाहर निकल पड़े।

बाद में यह देखा जाता कि केदार खण्ड मे सन्निहित गुफाओं तथा बदरी अंचल में ऋषिगंगा के ऊपरी किनारों पर निर्जन कुटिया में वे दीर्घकाल तक ध्यान-जप एवं समाधि में निमग्न रहते। उनका प्रिय परिव्राजन क्षेत्र शतोपंथ था। इस महाप्रस्थान के क्षेत्र का पर्यटन वे दो एक वर्ष बाद कर आते थे।

समतल भूमि के मनुष्यों का संपर्क महात्मा सुन्दर नाथजी से अत्यन्त कम था। इसीलिए उनसे सम्बन्धित तथ्य सरलता पूर्वक ज्ञात नहीं हो सकते। एक बार बदरीनाथ के रावल साहेब किसी सुयोग से इन महायोगी के एक चित्र की रचना करवाई थी। उसी को आधार मान कर इम लोगों का यह स्केच तैयार कराया गया है।

लगभग पचास वर्ष पूर्व की कथा। ग्रीष्म काल था और बदरी नारायण का मंदिर भक्त-साधारण के दर्शनार्थ कुछ दिन पहले खोल दिया गया था। प्रतिदिन बड़ी संख्या में साधु-संन्यासी और भक्त दर्शनार्थियों का आना-जाना प्रारंभ हो गया है। ऐसे ही समय में महात्मा सुन्दर नाथजी अपने प्रिय तपस्यास्थल शतोपंथ का परिव्राजन कर बदरीनाथ धाम पहुँच गये हैं।

मन्दिर के अहाते के पास ही एक दुकान पर झोली उतारकर वे विश्राम करेंगे, इसी समय दुकानदार जल्दी-जल्दी उनके पास तेजी से आया।

हाथ जोड़ कर उसने सविनय निवेदन किया, "महात्मा जी, आज यात्रियों की भीड़ बहुत अधिक है तथा दुकान में स्थानाभाव है। इस कारण आपके लिए इस जगह पर स्थान मिलने की कोई व्यवस्था नहीं हो सकेगी।"

"अच्छी बात है" कहते हुए, प्रसन्न मुद्रा में सुन्दर नाथजी वहाँ से बाहर आ गये। उसके बाद थोड़ी दूर चल कर एक विशाल भवन के बरामदे में पहुँचे। झोली पास ही रखकर आसन पर बैठते ही रास्ते की भीड़ वहाँ जमा हो गयी। कानाफूसी प्रारंभ हुई,-दिव्य कांति जटा-जूट समन्वित ये कौन महात्मा हैं ?

दो चार गृहस्थ भक्तों ने आगे बढकर हाथ जोड़ कर निवेदन किया, "बाबा, अगर आप अनुमति दें, तो आपकी सेवा के लिए कुछ पूरी और हलवा की व्यवस्था की जाय। आज यात्रियों की भीड़

बहुत अधिक है, देरी होने से खाद्य वस्तुओं का मिलना कठिन हो जायगा।"

'भोजन का इन्तजाम नहीं करन होगा।" स्थिर कण्ठ से सुन्दर नाथजी ने कहा, "मेरी धुनी के वास्ते थोड़ा कुछ लकड़ी मंगाय दो। और कुछ नहीं।"

आदेश पालन में विशेष विलम्ब नहीं हुआ। उत्साही भक्तों ने उसी समय निकटस्थ दुकान से सूखी लकड़ी के एक ढेर का प्रबन्ध कर दिया।

धूनी प्रज्वलित होने पर सुन्दर नाथजी की मुखमुद्रा प्रसन्न हो उठी। इसी अवधि में भक्त तीर्थयात्रियों का एक दल तथा दर्शक मण्डली भी बाबा के अग्निकुण्ड को घेरकर बैठ चुकी है।

अब अनायास ही झंझट उठ खड़ा हुआ। पता नहीं कहाँ से रक्षकों एवं चौकीदारों के एक दल ने उपस्थित होकर बरामदे में गर्जन-तर्जन आरम्भ कर दिया।

"तुम लोगों ने यहाँ क्या तमाशा बना रखा है। यह क्या धर्मशाला या बाजार है, जो सभी यहाँ मौज से आग जलाकर बैठे हुए हो ?"

'मकान खाली पड़ा था, इसलिए महात्मा जी के लिए इस स्थान की व्यवस्था की गई। इससे हुआ क्या ?" एक शिक्षित तीर्थयात्री सज्जन ने प्रतिवाद किया।

रक्षकों के दल का नेता उत्तेजित हो कर फट पड़ा, 'जानते हो यह टिहरी के राजा साहेब का प्रासाद है। तुम लोगों की सांप के मुँह में हाथ डालने की इच्छा हो आयी है ? सभी के प्राण संकट में हैं।"

धूनी के सम्मुख आसन पर सुन्दर नाथजी, स्थिर बैठे हुए हैं। इस उत्तेजना एवं वादानुवाद के कारण अभी तक कोई भावान्तर नहीं हुआ है। स्थिर स्वर में, राज्य के चौकीदारों की ओर देखते हुए उन्होंने कहा, "हम को तो कम से कम एक रोज यहाँ ठहरना होगा, भाई।"

अब रक्षी के गले की आवाज अपनी चरम सीमा पर पहुँच गयी। उत्तेजित होकर उसने बोलना शुरु किया। "सुनिए, राजा साहेब और रानी जी अपने लाव लश्कर के साथ आज प्रातः ही यहाँ पहुँच जायेंगे, यह पहले से ही निश्चित है। कल सारे दिन-रात हमलोगों ने इस राज-भवन का कूड़ा-कर्कट साफ किया है तथा धोया-पोंछा है। थोड़ी देर पहले ही हमलोग दुकान पर भोजन करने चले गये थे और इसी अवधि में आपलोगों ने यह अनाधिकार प्रवेश कर लिया। महाराजा आते ही इस बरामदे में धूनी जलती हुई तथा कुछ निरर्थक लोगों को यहाँ बैठे हुए देखकर क्रोध से जल उठेंगे। उस समय किसी का सिर धड़ पर नहीं रहेगा।"

सुन्दर नाथजी के अधरों पर स्थित हास्य की रेखा फैल गयी। मधुर कण्ठ से उन्होंने कहा, "तुम्हारे राजा साहेब को मैं खुद ही बोल दूँगा, हम भी एक ठो महाराज हैं। भाई तुम डरो मत।"

"यह क्या पागलपन है। किसी भी मुहूर्त में राजा साहेब उपस्थित हो सकते है, तब क्या आप हम लोगों की रक्षा करेंगे ?"

कहते-कहते ही कुछ शोर गुल सुनाई पड़ा। टिहरी राज अपने दल बल के साथ उपस्थित हो गये हैं। क्षण भर बाद दिखाई पड़ा कि मन्दिर के पुजारी रावल साहेब राजा की अभ्यर्थना करके इस भवन की ओर लिये चले आ रहे हैं। साथ में रानी तथा दास दासियों का समूह है।

तंजाम के पास जाकर रक्षकों के नेता ने व्याकुल होकर सारी बातें कह सुनाई। सुनते ही रावल जी क्रोध से आग बबूला हो गये।

किन्तु टिहरी राज के इशारे से सभी को शांत रहना पड़ा। तंजाम से उतर कर उन्होंने धीरे स्वर में कहा, "तुम सभी चुप रहो। कौन महात्मा मेरे भवन पर अधिकार किए हुए हैं और क्यों किये हुए हैं, पहले मुझे जान तो लेने दो।"

राजा साहेब अपने दल बल के साथ बरामदे के पास जाकर खड़े हुए। हाथ जोड़कर नमस्कार करते हुए उन्होंने प्रश्न किया, "महाराज कहाँ से

आपका आगमन हुआ है ? आपका क्या परिचय है, क्या मैं जान सकता हूँ ? '

"परिव्राजन करता हुआ शतोपंथ से उतर रहा हूँ एक दिन यहाँ रुकने की इच्छा है। और मेरा परिचय ? उससे तो आपने मुझको सम्बोधित ही किया, राजा साहेब। आपने मुझे महाराज कहा है। फिर मैं एक महाराजा के अलावा और क्या हूँ।"

"अगर आप सचमुच महारज हैं, तो आपका राज्य कहाँ है, यह तो बताइये ! "मुस्कराते हुए टिहरी राज ने प्रश्न किया।

"ऊपर आकाश और नीचे जनपद, अरण्य पहाड़· पर्वत, सागर सभी जो परमात्मा द्वारा सृष्ट वस्तुएँ हैं, वे सभी मेरे राज्य हैं।"

राजा चतुर व्यक्ति है। क्षण भर में ही उन्होंने साधु के वक्तव्य के अन्तर्निहित तथ्य को समझ लिया। फिर भी मुस्कराते हुए उन्होंने प्रश्न किया "मैं एक राजा हूँ तथा मेरे साथ एक फौज भी है। आपने अपनी फौज कहाँ रख छोड़ी है ?"

"मेरी फौज तो सारी पृथ्वी में फैली हुई है। जहाँ मनुष्य के हृदय में परमात्मा के लिए भक्ति और प्रेम का आलोक प्रज्वलित है, वे सभी हमारी फौज में हैं।"

"किन्तु राज ऐश्वर्य ? वह कहाँ से आप दिखायेंगे महाराज ?" "ओठ दबा कर हंसते हुए टिहरी नरेश ने कहा।

"अब आप ही से एक प्रश्न करूँगा राजा साहेब," प्रसन्न स्वर में सुन्दर नाथजी ने कहा।

"ठीक तो है, आप प्रश्न करें।"

"ऐश्वर्यवान आप किसे कहते हैं ? जिसे इस संसार में कोई अभाव नहीं है, उसे ही तो ?"

"जी हाँ।"

"फिर देखिए, मुझे किसी वस्तु के लिए अभाव का बोध नहीं होता है, इसीलिए अभाव नहीं है। इसके अलावा, परमात्मा की सृष्टि के इस

अनन्त ऐश्वर्य को मैं अपना ही समझता हूँ। इसलिए राजा साहेब मैं आप से अधिक ऐश्वर्यवान हूँ।"

"यह तो स्वीकार करना ही होगा। मुझसे बहुत अधिक ऐश्वर्य है आपका।" टिहरी अधिपति ने नत शिर होकर हार मान ली।

अब तक भीड़ काफी जमा हो गयी थी। चारों ओर दर्शनार्थी एवं तीर्थयात्रियों के दल इकट्ठा हो गये थे।

सुन्दर नाथजी ने मुस्कराते हुए कहा, "राजा साहेब, असली बात यदि मैं कहूँ, तो यही कहना होगा कि ऐश्वर्यवान तो दूर की बात, आप तो एक अभावग्रस्त व्यक्ति हैं। तभी तो आप कितनी तरह के झमेलों से बराबर ग्रस्त रहते हैं। आपकी जो प्रियतमा महिषी हैं उनके गर्भ से कोई सन्तान आज तक नहीं हुई। इस कारण आपके तथा रानी जीके दुःख की कोई सीमा नहीं है। यह बात सत्य है या नहीं ?"

हाथ जोड़ कर एवं नतशिर होकर, राजा साहेब ने उत्तर दिया, "जी हाँ यह बिल्कुल सत्य है।"

धीरे स्वर में सुन्दर नाथजी ने फिर कहना आरम्भ किया, " आपके मन में और भी दुःख हैं। आपकी ये रानी जी असाध्य हृत्पिंड के वात रोग से ग्रस्त हैं। आजकल बीच-बीच में वे बिस्तर भी पकड़ लेती है। उनके जीवन में कोई रस नहीं है।

अब टिहरी राज धुनी के पास ही बैठ गये और कातर कण्ठ से उन्होंने निवेदन किया, "मैं समझ गया कि भगवान ने कृपा कर के ही आपको मेरे भवन पर लाकर रख दिया। आप प्रसन्न हों और मेरे और रानी जी की दुःसह व्याधि से रक्षा करें। हम दोनो बराबर आपके सेवक और सेविका होकर रहेंगे।"

"परमात्मा आप पर प्रसन्न हों, यही आशीर्वाद देता हूँ, राजा साहेब। विश्राम एवं स्नान-तर्पण शेष करके आप लोग बदरी विशाल की पूजा समाप्त करें, उसके बाद मेरे साथ आगे बात-चीत होगी। आप लोगों के दुःख-निवारण की दिशा में चेष्टा करूंगा।

संभव है, इसीलिए परमात्मा की इच्छा से मेरा यहाँ आगमन हुआ है।"

मंदिर से वापस आने पर राज-दम्पति ने सुन्दर नाथजी को प्रणाम निवेदित किया। उसी समय ज्वलन्त धूनी से एक चिमटा भस्म उठाते हुए योगिवर ने कहा, 'राजा साहेब, आप और रानी साहिबा इस पवित्र धूनी का भस्म खा डालें। रानी जी की दुश्चिकित्स्य व्याधि ठीक हो जायगी और दो वर्ष बाद आप लोगों को एक पुत्र लाभ भी होगा।"

राजा और रानी साहिबा आनन्द से विह्वल हो उठे। इस भस्म को गले में धारण कर वे महात्मा के चरणों में लोट पड़े।

अब शांत गम्भीर स्वर में सुन्दर नाथजी ने कहा, "राजा साहेब, परमात्मा की कृपा आपने पायी है। यह आपका सौभाग्य है। किन्तु दो जरूरी बातों का मैं आपको सदा स्मरण रखने को कहूँगा।"

"आदेश करें, महात्माजी।"

'आप इस अंचल के राजा हैं। केवल यही नहीं, पवित्र बदरीधाम के रख-रखाव का गुरु दायित्व भी आपके ऊपर है। आपके किए हुए पुण्य तथा पाप का प्रभाव स्वभावतः ही दूर प्रसारी है। इसलिए व्यक्तिगत जीवन में अबतक जो भी इन्द्रियगत अनाचार करते रहे हैं, उससे निवृत्त हो जांय। एक और गुरुतर कर्त्तव्य में भी आपसे त्रुटि होती रही है। इस पुण्य पीठ में परमात्मा की पूजा अनुष्ठित होती रहती है तथा सहस्र-सहस्त्र तीर्थ-यात्री यहाँ अपना भक्ति-अर्घ्य प्रदान करते हैं। परन्तु, इस पवित्र देवस्थान की पवित्रता की रक्षा यथा-योग्य रूप से नहीं हो पा रही है। इसके परिचालन में नाना त्रुटि एवं अनाचार दिखलाई पड़ रहे हैं। इन सभी को दूर करने की आप चेष्टा करें।"

टिहरी राज ने सिर झुकाकर अपनी स्वीकृति दी और महात्मा के आदेश के पालन का यथाशक्ति यत्न करेंगे।

दूसरे दिन प्रभात होने से पहले ही सुन्दर नाथजी उस स्थान से अन्तर्धान हो गये। इसके बाद इस अंचल के लोगों ने काफी दिन तक उनका कोई संधान नहीं पाया।

लगभग पांच वर्ष बाद, अपने प्रिय पुण्यभूमि शतोपंथ का परिव्राजन करके जिस दिन बदरीधाम में उनका आगमन हुआ, उस दिन मंदिर के रावल एवं राजपुरुषगण ने समारोह के साथ उनकी अभ्यर्थना की।

टिहरी के राजा तथा रानी साहेब को जो आशीर्वाद योगिवर ने दिया था, सुनने में आया, वह सफल हो गया था। राजा की प्रियतमा रानी दुस्साध्य व्याधि से मुक्त हो गयी थी। केवल इतना ही नहीं, उनकी गोद में एक सुलक्षण युक्त पुत्र भी आ गया था।

योगिवर के आगमन की बात सुनकर टिहरी के राजा और रानी, दोनों, आकर उनका दर्शन कर गये थे। मंदिर के पुजारी रावल भी उस समय उनके एक विशिष्ट भक्त के रूप में परिणत हो गये थे।

योगिवर सुन्दर नाथजी का सुन्दर चित्र आज भी बदरी धाम मन्दिर के आफिस में टंगा हुआ देखा जा सकता है। उसे रावल साहेब ने ही एक प्रसिद्ध चित्रशिल्पी द्वारा तैयार करवाया था।

एकबार बदरीनाथ धाम से थोड़ी दूर ऋषि-गंगा के उस पार एक निर्जन कुटिया में सुन्दर नाथजी अपने नव संकल्पित तपस्या का उद्यापन कर रहे थे। यहां के भुटिया के साधु लोगों की वयस बहुत अधिक है, तथा दिन-रात का अधिकांश भाग वे लोग ध्यान, भजन तथा योग में ही काट देते हैं। आहार के लिए भी बाहर जाने का उन्हें विशेष चाव नहीं है। इसीलिए काली कमली वाले सदाव्रत के कर्मचारी-गण आकर प्रतिदिन इन वृद्ध साधकों को दाल,

रोटी और शाक दे जाते हैं। परन्तु सुन्दर नाथजी सदाव्रत के आहार को ग्रहण नहीं करते हैं। "जरूरत नहीं" कहकर वे सारी वस्तुओं को हँसते हुए वापस कर देते हैं।

प्राय: एक मास बाद यह सूचना योगिवर के अनन्य भक्त मन्दिर पुजारी, रावल साहेब के कानों में पड़ी। जल्दी-जल्दी उस दिन वे प्रचुर खाद्य सामग्री लेकर सुन्दर नाथजी की कुटिया के सामने उपस्थित हुए। हाथ जोड़कर उन्होंने निवेदन किया, "बाबा, सुन रहा हूँ कि सदाव्रत द्वारा प्रदत्त कोई भी आहार्य सामग्री आप ग्रहण नहीं कर रहे हैं। इसलिए अपनी सेवा के लिए मुझे अनुमति दीजिए। दैनिक आहार मैं ही अपने आदमियों से नित्य भेज दिया करूँगा।"

"नहीं बेटा, उसकी जरूरत नहीं है", मृदु मधुर स्वर में सुन्दर नाथजी ने कहा। "कुछ दिन पूर्व परमात्मा का आदेश हुआ है—उसी समय से केवल कच्चा दूध और फल ही मेरा आहार हो गया है।"

"ठीक तो है, वही मैं रोज आपके लिए भेज दिया करूँगा।" रावल साहेब ने भक्ति पूर्वक उत्तर दिया।

इसी समय इस दुर्गम कुटिया के द्वार पर अपने किशोर पुत्र के साथ एक वृद्धा स्त्री आकर उपस्थित हुई। उसके हाथ में एक छोटे लोटे में दूध भरा हुआ था और दूसरे में दो पके केले थे। भक्ति पूर्वक सुन्दर नाथजी को प्रणाम करने के बाद लायी हुई वस्तुएँ उसने धूनी के पास रख दीं।

माता तथा पुत्र को योगिवर ने प्रसन्न हृदय से आशीर्वाद दिया। उसके बाद रावल साहेब की ओर देख कर मुस्कराते हुए कहा, "इस माई का नाम रुक्मिणी है, और उसका पुत्र है—रामभजन। ये दोनों ही बड़े पवित्रात्मा हैं। अब तक इन्होंने दुख और कष्ट भी प्रचुर मात्रा में पाया है। अब परमात्मा की कृपा से कुछ अच्छी अवस्था में है। इनका दिया

हुआ आहार बहुत ही शुद्ध है। एक दो मास, जब तक इस क्षेत्र में हूँ, उनके द्वारा लाया हुआ ही दूध और फल खाकर मैं काट दूंगा, यही स्थिर किया है।"

कौतूहल वश रावल साहेब बार-बार रुक्मिणी और उसके किशोर पुत्र की ओर दृष्टिपात कर रहे हैं। इनके प्रति योगिवर की कृपा का कोई अंत नहीं है, इसलिए उन्होंने सोचा कि वापस जाते समय उनसे परिचय प्राप्त करके इस कृपा का रहस्य ज्ञात करना होगा। सुन्दर नाथजी का भोजन समाप्त हो जाने पर सभी बदरीधाम वापस चले आ रहे हैं। इसी समय रावल ने रुक्मिणी से उसके योगीवर के साथ परिचय के सूत्र को जानने का प्रयास किया।

वृद्धा महिला की मुखाकृति तेजोद्दीप्त हो उठी। पुत्र की पीठ पर हाथ रखे हुए, रास्ता चलते चलते उसने सुन्दर नाथजी के कृपा लाभ की आश्चर्य-जनक कहानी आरंभ की।

रुक्मिणी का घर पाण्डुकेश्वर गाँव में है जो कि बदरीनाथ से लगभग बारह मील दूर है। उसके स्वामी बुधन सिंह की संपत्ति थी, पहाड़ के ढ़लान पर दो बीघा जमीन, जिसकी फसल से अति कष्ट पूर्वक उसके छोटे से संसार का निर्वाह होता। कई वर्ष पूर्व, बुधन सिंह आय में थोड़ी वृद्धि करने के लिए माना दर्रे के पार तिब्बत में व्यवसाय करने चला गया। उधर से वह वापस नहीं आ पाया। पहाड़ धँस जाने से उसका प्राणान्त हो गया। बालक पुत्र रामभजन के साथ रुक्मिणी बिलकुल बेसहारा हो गयी।

इन्हीं घोर विपत्ति के दिनों में योगिवर सुन्दरनाथ उसके पाण्डुकेश्वर स्थित घर में अतिथि हुए। उन्होंने रुक्मिणी को आश्वासन दिया, "माई, विपत्ति के कारण विभ्रान्त मत होओ। स्वामी की पवित्र स्मृति हृदय में रखो और अपने इस शोकार्त बालक का भरण पोषण करो। परमात्मा अवश्य ही उसकी सहायता करेंगे।"

सुन्दर नाथजी ने और भी निर्देश दिया, "माई, तुम इस बालक

के साथ खेत के कार्य किस तरह कर सकोगी ? जो कुछ भी जमीन तुम्हारे पास है, उसे बेच डालो और इस पैसे से दो मोदी की दुकान खोल डालो। गरमी के दिनों में दुकान बदरीनाथ में रखना और दूसरे मौसम में अपने गाँव में ही खरीद-फरोख्त करना। इस कार्य में तुम्हारा बालक पुत्र, रामभजन भी कुछ सहायता कर सकेगा।

महात्मा के इस आदेश को रुक्मिणी ने शिरोधार्य कर लिया। बच्चे को साथ लेकर दुकान चलाना आरम्भ कर दिया। पुत्र ने धीरे-धीरे किशोरावस्था में पदार्पण किया। अंततः वह भी व्यवसाय के कार्यों में विशेष पटु हो गया।

दो वर्ष पूर्व की बात। बीच-बीच में सुन्दर नाथजी जैसे इस क्षेत्र में आते थे, वैसे ही इस बार भी आये हैं। नदी के उस पार एक निर्जन कुटिया में उन्होंने अपना आसन जमाया है।

रुक्मिणी रोज ही पुत्र को साथ लेकर एक बार महात्मा को प्रणाम कर जाती है। उस दिन अकेले ही आयी है।

सुन्दर नाथजी ने शांत स्वर में प्रश्न किया, "माई, रामभजन को आज कहाँ छोड़ आई हो ?

"बाबा, वह दुकान के लिए सामान खरीदने जोशीमठ गया है। बदरीनाथ के लिए इस बार यात्रियों की खूब भीड़ है। आटा, आलू, नमक, चीनी किसी वस्तु की पूर्ति कर पाना संभव नहीं हो पा रहा है।"

क्षण भर में ही योगिवर की मुखमुद्रा गम्भीर हो गयी, तथा नयन-द्वय विस्फारित हो उठे। दाहिना हाथ ऊपर उठा कर अस्वाविक रूप से उच्च कण्ठ में वे चीत्कार कर उठे, "ठहर जाओ, ठहर जाओ डरो मत, बेटा। बस, बस।" विपत्ति में पड़े हुए, अदृश्यलोक के किसी आर्त भक्त को मानो वे वराभय दे रहे हों।

उसके बाद और कोई बात न कहकर पास में रखे हुए चिमटे से कई बार धूनी की आग को कुरेद दिया। इससे आग की गर्मी और तेज हो

गयी। सुन्दर नाथजी की उत्तेजित मुखमुद्रा धीरे-धीरे शांत हो गयी।

धूनी से थोड़ी ही दूरी पर रुक्मिणी विस्मित बैठी हुई है। बाबा की इस तरह की चंचलता तथा भाववैलक्षण्य उसने कभी नहीं देखा था।

अब उसके मुख की ओर देखते हुए सुन्दर नाथजी ने कहा, 'माई, तुम्हारे पुत्र राजभजन के लिए बड़ी मुश्किल में पड़ गया था। मैंने देखा कि जोशीमठ में भेड़ पर माल लादते समय उसका पैर फिसल गया और वह अलकनन्दा में गिर पड़ा। अलकनन्दा की तीव्र धारा उसे डुबोये हुए लिए चली जा रही है। उस भीषण धारा से उद्धार पाना किसी मनुष्य के वश की बात नहीं है। परमात्मा की कृपा से वह किनारे पर आने में सफल हो गया है। फिर भी वह अलकनंदा की तीव्र धारा के साथ लगभग तीन मील दक्षिण बहता हुआ चला गया है। एक देहाती आदमी के घर में उसने आश्रय पाया है, एवं अच्छी तरह है। माई, तुम अभी रवाना हो जाओ और उसे बदरीधाम ले आओ।"

पुत्र के विपत्ति की बात सुन कर रुक्मिणी अधीर हो उठी और उसके नयनों से आंसुओं की झड़ी लग गयी। असहाय-जैसी कुटिया के बीच में लोट पड़ी।

सारी विपत्ति कट गयी है माई। तुम्हारा पुत्र बिलकुल स्वस्थ है। जिसके घर पर वह है, वह उसको आग जलाकर सेवा सुश्रूषा कर रहा है, तथा गरम दूध उसे पीने के लिए दे रहा है।

अधिक देर न करके रुक्मिणी जोशीमठ की तरफ रवाना हो गयी, अपने आंख के तारे को खोजने।

रामभजन के मुख से उसके उद्धार की कहानी सुनकर रुक्मिणी विस्मय से चकित हो उठी।

पहाड़ के गड्ढे में गिरकर रामभजन असहाय अवस्था में नदी की तीव्र धारा में बहता चला जा रहा है। समझ रहा है कि इस विपत्ति से अब उद्धार की कोई आशा नहीं है। या तो धारा की भंवर में

कर वह नीचे चला जायगा अथवा किसी चट्टान से टकरा कर उसका शरीर चूर-चूर हो जायगा।

तुरत ही एक अलौकिक काण्ड हो गया। सहसा उसने सुन्दर नाथजी की अभय वाणी सुनी—"ठहर जाओ"।

क्षण भर में रामभजन के सम्मुख योगी का जटाजूट-मंडित मुखमंडल प्रकट हो गया। अवाक् होकर उसने देखा, उसके डूबते हुए शरीर को उन्होंने दीर्घ, सबल दो हाथों द्वारा उठा लिया और किनारे की मिट्टी पर लाकर रख दिया। उसके बाद क्या हुआ, उसे स्मरण नहीं है, क्योंकि वह संज्ञाहीन हो गया था।

होश में आने पर उसने देखा कि, उसने एक पहाड़ी परिवार के पास आश्रय पाया है। आग जलाकर, उस घर के सभी उसे सेंक दे रहे हैं, तथा सामने एक कटोरा गरम दूध रखा हुआ है।

रावल साहेब के सामने रुक्मिणी, सुन्दर नाथजी की इस कृपा-लीला का वर्णन कर रही है, और बीच-बीच में आंचल स अपनी आंखों की अश्रुधारा पोंछती जा रही है। "रावल साहेब, कोई कहता है ये बड़े योगी हैं, कोई कहता है ये मनुष्य नहीं देवता हैं। मैं केवल इन्हें पिता नाम से ही जानती हूँ। पिता जिस तरह स्वाभाविक भाव से अपनी पुत्री को स्नेह करता है, इन्होंने भी मुझे वही दिया है।"

विपुल योगैश्वर्य के अधिकारी, इन शक्तिधर महापुरुष का अंतर अपार स्नेह और प्रेम से परिपूर्ण था। ईश्वरमुखीन कोई भी व्यक्ति जो उनके संपर्क में आता, वह इस अपरूप स्नेह और प्रेम के स्पर्श का लाभ करता।

बंधुवर विनायक मुखर्ज्ये महाशय एक बार अपने परिचित एक उच्चकोटि के साधु से पता लगाकर सुन्दर नाथजी के समक्ष उपस्थित हुए थे। योगिवर उस समय उत्तरकाशी से थोड़ी दूर एक निर्जन कुटिया में वास कर रहे थे।

मुखुज्ये महाशय ईश्वर-अनुसंधानी व्यक्ति हैं, और जीवन में बहुत से मत और मार्ग के साधु-सन्यासियों के संपर्क में आये हैं। सुन्दर नाथ जी को भक्ति-पूर्वक प्रणाम करने के बाद उन्होंने बताना आरंभ किया कि कहाँ और किन साधु का उन्होंने दर्शन किया था और कौन-कौन से आध्यात्मिक प्रसंगों का उनके मुख से श्रवण किया था।

चरमक खिसकर गृहस्थ भक्त ने कुटिया के भीतर पड़े हुए लकड़ियों को इकट्टा कर के जला दिया। सुन्दर नाथजी, आनन्द पूर्वक उसके द्वारा लायी हुई वस्तुओं से खीर तैयार करने के लिए बैठ गये।

खीर तैयार हो जाने पर उन्होंने, स्नेहमयी माता जैसे, सबका सब मुखुज्ये महाशय को भोजन करा दिया। उनके मुख पर परम तृप्ति का भाव प्रस्फुटित हो रहा था।

अप्रत्याशित आदर एवं स्नेह पाकर मुखुज्य महाशय कृतार्थ हो उठे। अब और साहसी होकर अपने सम्पर्क में आये हुए साधु संतों के जीवन दर्शन के विषय में तर्क-वितर्क आरंभ कर दिया।

अर्धनिमीलित नेत्रों से दो मिनट तक बात सुनने के बाद सुन्दर नाथजी शांत स्वर में बोल उठे, 'बस, बस, ठहर जाओ।'

अनायास बाधा पड़ने पर मुखुज्ये महाशय बिलकुल चुप हो गये। मुस्कराते हुए अब जो महात्मा ने कहा उसका सारांश, "बेटा इतनी कहानी और इतना तर्क व विचार लेकर तुम अपना माथा खराब क्यों करते हो? मानव जीवन अमूल्य है। कितने संचित पुण्यों के कारण तुमने यह जन्म पाया है। क्यों, परमात्मा का लाभ करूंगा, ऐसा कह कर नहीं पाया है? फिर व्यर्थ समय क्यों नष्ट कर रहे हो। अब एक भी क्षण व्यर्थ मत जाने दो, बेटा। हाँ, मैं कहता हूँ, आज ही, अभी तुम इस कुटिया में एक तरफ बैठ जाओ। प्राण की चिंता छोड़, ध्यान और जप करो। फिर कलकत्ते के कोलाहल और अविद्या के संसार वापस जाने का कोई प्रयोजन नहीं है।"

"यह तो बाबा, आप ठीक ही कहते हैं, फिर भी आप जानते हैं,

कलकत्ता में अभी कुछ कार्य शेष है। अबकी बार जाकर सारे कार्य शेष करके फिर वापस आकर आपके चरणों में बैठूंगा।" मृदु स्वर में मुखुज्ये महाशय ने धीरे-धीरे निवेदन किया।

"नहीं--नहीं बेटा! मानव जीवन का एक भी क्षण तुम व्यर्थ मत करो। तुम यह कपड़ा और कुर्त्ता पहने ही गंगा में स्नान कर आओ और उसके बाद दृढ़ता से जप और ध्यान लगाओ। जो तुम्हें पीछे खींच रहा है, उसका सर्वदा के लिए त्याग कर दो। जिसके ज्ञान से जीवन सफल होता है, उसी परमात्मा के ध्यान में गोता लगा डालो!"

घर-संसार का दायित्व और व्यावहारिक जीवन के नानाविध कार्यों का स्मरण बार-बार मुखज्ये महाशय को हो रहा है। इसके साथ ही महात्मा भी लगातार छेड़ रहे हैं।

अत: में काफी परेशानी के बाद सुन्दर नाथजी के उस प्रेमपूर्ण आह्वान से पिण्ड छुड़ाकर, बाहर आकर उन्होंने सांस ली। इतने आदर सत्कार के बाद खीर खिलाकर महात्मा उन्हें घेर कर अपने पास ही रखना चाहते हैं, यह मुखुज्ये महाशय उस समय पूरी तरह समझ नहीं पाये। जीवन की संध्या में योगिवर सुन्दर नाथजी के इस आंतरिक आमंत्रण की चर्चा करते ही, मैं देखता, मुखुज्ये महाशय के दोनों नेत्र आनंद से अश्रु सजल हो उठते।

मुखुज्ये महाशय के पूर्व परिचित, मनीष मजूमदार नामक कलकत्ते के ही एक शिक्षित व्यक्ति उसबार सुन्दर नाथजी का माहात्म्य सुन कर उनकी कुटिया के सामने उपस्थित हुए। साष्टांग प्रणाम निवेदन करने के बाद उन्होंने कहा, बाबा, मेरे ऊपर कृपा कीजिए। आपके चरणों के नीचे आश्रय की भिक्षा मांगता हूँ।"

योगिवर अबतक अपनी ही बात में कुछ तन्मय थे। फिर आगंतुक की ओर दृष्टिपात करते ही तीक्ष्ण स्वर में बोल उठे, "तुम इधर काहे आया? हिमालय में तुम्हारा क्या काम है?"

मजूमदार महाशय उस समय रो उठे। नयनाश्रुओं की झड़ी लग गयी। हाथ जोड़कर उन्होंने निवेदन किया, "बाबा मैं बड़ा ही दुःखी हूँ इसीलिए आपके आश्रय की भिक्षा माँग रहा हूँ।"

इसके उत्तर में योगिवर ने जो कहा, उसका सारांश, दुखी—और अभागे तो तुम निश्चय ही हो। किन्तु तुम्हारा यह दुर्भाग्य लाम्पट्य और इन्द्रियगत दोषों के कारण हुआ है।

"बाबा, आपकी सारी बातें अक्षरशः सत्य हैं। परन्तु क्या मेरे उद्धार का कोई उपाय नहीं है? आपके जैसे महात्मा भी क्या मेरा उद्धार नहीं कर पायेंगे? फिर मैं जाऊँ कहाँ?" बात खतम करके मजुमदार फूट-फूट कर रो पड़े।

यही मनीष मजुमदार कलकत्ता के विख्यात, धनी स्वर्णकार के घर पर गृह शिक्षक थे। गृहस्वामिनी कुछ वर्ष पूर्व विधवा हो गयी थी। इस समय घर की अपार धन-संपत्ति एवं परिचालना का भार, सब कुछ, उन्हीं के कन्धों पर था। उमर लगभग चालीस थी, फिर भी उनके रूप तथा यौवन में अभी उतार नहीं आया था। तरुण सुदर्शन गृह शिक्षक मनीष मजुमदार के प्रति वे धीरे-धीरे आकृष्ट हो गयीं। साथ ही साथ मनीष के इन्द्रिय लालसा की अग्नि भी तीव्र वेग से प्रदीप्त हो उठी।

इसके बाद एक दिन निविड़-रात्रि में सबसे गुपचुप, इन्दुमती अपने निजी एक लाख के ऊपर के गहनों के साथ अपने प्रेमी मनीष के साथ कलकत्ता से भाग गयीं।

काफी जगहों पर घूमने-फिरने के बाद अंततः वे लोग हरिद्वार के एक घनी आबादी वाले क्षेत्र में किराए का मकान लेकर रहने लगे।

परन्तु इन कुछेक वर्षों में उन दोनों का शारीरिक आकर्षण काफी हद तक फीका पड़ गया था। विशेषकर इन्दुमती अपने बाल बच्चों के पास, कलकत्ता वापस जाने के के लिए, परेशान हो उठीं।

उसका अवसर भी अकस्मात् मिल गया। किसी कार्य से वे उस दिन

हरिद्वार के बाजार में गयी थीं। अनायास ही अपने एक घनिष्ट आत्मीय से उनका वहाँ साक्षात्कार हो गया। बाल-बच्चों का समाचर सुनकर पुरानी स्मृतियाँ उनके मन में फिर जग गयीं। इसके अलावा उन्होंने यह भी सुना कि उनकी लड़की अब सयानी हो गयी है, और घर के लोगों ने उसका विवाह भी पक्का कर डाला है।

अब इन्दुमती, मनीष को बराबर के लिए छोड़ कर, अपने घर कलकत्ता, वापस चली गयीं। घर पर, यही प्रचार कर दिया कि इन कुछेक वर्षों में वे सारे भारत के तीर्थ दर्शन करने के लिए निकल गयी थीं। अब कन्या के विवाह में अपना योगदान देने के लिए जल्दी-जल्दी अपने घर आ गयी हैं। आत्मीय और बन्धु-बान्धवों ने उस समय इस बात पर विश्वास तो नहीं किया, फिर भी जो हो, इसके बाद इन्दुमती ने पूरी लगन के साथ अपने कारबार में ध्यान देना शुरू कर दिया।

प्रेमिका द्वारा, इस तरह परित्यक्त होने पर मनीष मजुमदार का जीवन और भी अशांत हो उठा। कलकत्ता के रास्ते तो बन्द हो ही चुके थे। हरिद्वार वास करने में भी नाना समस्याएँ थीं। इन्दुमती के गहनों को बेच देने से मिले अवशिष्ट रुपयों से, उनसे संभवतः दो चार मास खर्च चल जायगा परन्तु, उसके बाद ?

मनीष मजुमदार परेशान हो उठे, और वे नाना तरह के चारित्रिक बुराइयों के शिकार होने लगे।

कुछ मास बाद, हाथ में की सारी रकम खर्च हो जाने पर, उन्होंने शरीर पर गैरिक वस्त्र धारण कर लिया और हिमालय के नाना तीर्थों के पर्यटन हेतु निकल पड़े। सदाव्रत में मिली दाल-रोटी से उनकी जीवन रक्षा हो जाती थी। इन्हीं दिनों में अकस्मात् अपने पुराने मित्र विनायक मुखुर्ज्ये के साथ उनका साक्षात्कार हो गया। उनके मुख से महात्मा सुन्दर नाथजी के योगैश्वर्य की बात सुनकर सीधे यहाँ आकर उनके चरणों में शरण लेना चाहते हैं।

चितातुर होकर मनीष मजुमदार बिलकुल फूट पड़े हैं और आकुल हो गये हैं। योगिवर सुन्दर नाथजी के हृदय में अब कृपा का संचार हुआ। शांत मधुर स्वर में उन्होंने कहा, "बेटा, तुम्हारे लाम्पट्य से मैं घृणा करता हूँ, तुमसे नहीं। मैं चाहता हूँ कि तुम अपने पूर्व स्वभाव एवं आचरण का त्याग करके परमात्मा के तपस्या में रत हो जाओ। किन्तु बेटा, तुम्हारा पूर्व जन्म का संस्कार बार-बार तुम्हारे पथ में बाधक हो रहा है।"

"आप कृपा करके इसे मिटाने का विधान कर दें।" सजल नेत्रों से मनीष मजुमदार ने अनुरोध किया।

"बेटा, देख तो रहे हो, मेरा कोई एक स्थायी स्थान नहीं है। अपनी इच्छानुसार, हिमालय के इस शिव स्थान के पर्वत-कन्दरों में मैं घूमता-फिरता हूँ और तपस्या करता हूँ। तुम्हारा भार लेने का समय मुझे कहाँ है?"

"तो फिर क्या मेरा उद्धार नहीं होगा?"

"अच्छा बेटा! तुमको मैं दो निर्देश दे रहा हूँ। तुम उनका पालन करने का यत्न करो। नित्य एक लाख बार प्रभु शिवजी का नाम जप करके ही तुम भिक्षा ग्रहण करने के लिए निकलोगे और दूसरी बात, कभी भी हिमालय की गोद छोड़कर नीचे के अंचलों में या समतल भूमि पर नहीं उतरोगे। तुम्हारी इन्द्रिय लालसा का पुंजीभूत संस्कार अभी भी रह गया है। देवतात्मा हिमालय की गोद छोड़कर नीचे उतरते ही तुम फंस जाओगे। उसके बाद तुम्हारे उद्धार की कोई आशा नहीं रह जायगी।"

बाद में सुना, मनीष मजुमदार, इस निर्देश का पालन नहीं कर पाये। घटना क्रम से किसी कार्य के सिलसिले में उन्हें हरिद्वार जाना पड़ गया। वापस आते समय वे देहरादून में कई दिन तक रुक गये। इसी समय वे एक सुन्दर पहाड़ी रमणी के प्रति आकृष्ट हो गये, और उनका पतन हो गया। उसके बाद कई महीने तक पैरालिसिस से पीड़ित रहने के बाद कनखल के अस्पताल में उन्होंने शरीर छोड़ दिया।

एक जिज्ञासु भक्त ने सुन्दर नाथजी से प्रश्न किया था। "बाबा, आपलोगों का परमात्मा बड़े ही कठोर प्रकृति का है। व्यावहारिक जीवन में मैंने कई बार स्वयं देखा है, कितने ही निरपराध व्यक्ति दैव के विधान से पीड़ित होते और कितने की दुष्ट और पापी मनुष्य, सभी को अंगूठा दिखाकर जीवन का उपभोग करते हैं और मजा लूटते हैं। इस विधान में न्यायनीति और निरपेक्षता कहाँ है?"

योगिवर ने मुस्कराते हुए कहा "तुम्हारे इस दर्शन को उलट करके देखो, तभी तुमको प्रश्न का जवाब मिल जायगा।"

"आपकी बात का गूढ़ार्थ ठीक से समझ नहीं पा रहा हूँ, बाबा। कृपया जरा समझाकर कहें।"

बाबा, तुमने जो विशद व्याख्या दी उसका सारांश हुआ : जीवन में सभी कुछ तुमने भ्रान्त भाव से ही देखा है, खण्ड-खण्ड करके। अपनी दृष्टिभंगी को तुम उलट दो और जीवन का अखंड भाव से दर्शन करना सीखो। ऐसा होने पर तुम क्या पाओगे? जो एक और अखंड वस्तु हैं; जो भूमा है, जो सत्-चित्-आनन्दमय है, वे ही जीव के हृदय में वास कर रहे हैं। सुख दुःख सब कुछ अंततः वे ही तो भोग कर रहे हैं। तुम्हारे हृदय का दुःख और ताप असल में वही तो अपने को वहीं स्थापित रख कर स्वयं ले रहे हैं।

एक बार और किसी भक्त ने सुन्दर नाथजी से प्रश्न किया था। "बाबा, आपके योगविभूतियों की अनेक लीलाएँ मैंने स्वयं देखी हैं, तथा अनेक सुनी भी हैं। इन सब अलौकिक और अस्वाभाविक शक्तियों का असल रहस्य क्या है, उसे थोड़ा समझा दें।

योगिवर ने मुस्करा कर उत्तर दिया, "बेटा, योगशक्ति को अस्वाभाविक और रहस्य क्यों समझ रहे हो? दरअसल योग, युक्त होना ही तो स्वाभाविक बात है। परमात्मा के साथ योग वही तो असल है, वियोग अथवा विच्युति वही नकल होता है, वह तुम्हारा अपना बनाया हुआ है। तुम निर्मोह हो, योग युक्त हो तो देखोगे कि तुम्हारा जीवन स्वभाव में अवस्थित है। तब योग

विभूति या योगैश्वर्य को बाहर की वस्तु किंवा अस्वाभाविक और अलौकिक तुम नहीं समझोगे।"

साधु-संत जमातों मे मैंने खबर पायी है कि १९५' साल के बाद महात्मा सुन्दर नाथजी को उत्तराखण्ड के तीर्थक्षेत्र में फिर लोगों ने पहले जैसा नहीं देखा। अनेक लोगों की धारणा है, कि सतोपंथ के पास की किसी गुफा में वे तपस्यारत हैं—अथवा अपने को उन्होंने परमात्मा की महासत्ता में विलीन कर दिया है।

□□

फरसी बाबा

महात्मा पीताम्बर दास हरिद्वार, कनखल एवं ऋषीकेश के क्षेत्रों में एक सर्वजन प्रिय तथा सर्व जन श्रद्धेय सिद्ध पुरुष थे। बीसवीं सदी के प्रथम चरण में वृन्दावन से हरिद्वार आये, कुछेक वर्षों में ही अपने दिव्य प्रेम तथा आनंद और कृपा देकर सारी साधु मंडली, अखाड़े और भक्त समाज का हृदय जीत लिया।

सर्वदा हास्योज्वल ये महापुरुष जहाँ और जब भी जाते उनके चारों ओर आनन्द की स्रोत बह उठती। रसः वैसः—परब्रह्म रस या आनंद स्वरुप हैं, इसी परम तत्व के धारक तथा वाहक थे पीताम्बर दास।

"वाहवा, वाहवा, क्या चमत्कारी ये सृष्टि भगवान का। वाहवा-वाहवा—देखो कितना आनन्द हो जाते हो।"—भक्त, साधु-संतो को देखते ही हाथ ऊपर उठा कर उपरोक्त बातें कहते हुए वे चीख पड़ते। उनके चारो ओर उल्लास से मतवाले मनुष्यों की भीड़ जम जाती।

इसके अलावा सज्जन और भक्त सेठ लोग कोई-कोई कहते, "आओ बाबा, मेरे गद्दी में आओ और आनन्द चिलम चढ़ाओ।"

कोई—कोई उलाहना देते हुए कहते, "बाबा, तुम गद्दी वाले सेठ लोगों से अधिक स्नेह रखते हो, हम लोगों जैसे गरीबों के लिए तुम्हारे हृदय में स्थान नहीं है। ऐसा नहीं होगा; तुमको हम लोगों के साथ ही, इस पेड़ के नीचे बैठना होगा। एक पर एक चिलम चढ़ाना होगा। हम लोग तुम्हारे साथ आनन्द करेंगे और तुम्हारे श्री मुख से किशन जी की लीला कथा सुनेंगे।"

अपनी इच्छानुसार एक-एक दिन एक-एक दल का आमंत्रण स्वीकार करते, बाबा महाराज। उनको घेर कर उस समय रास्ते के किनारे वट वृक्ष के नीचे आनन्द की हाट जम जाती। फिर स्वेच्छाचारी पक्षी जैसे कब बाबा महाराज वहाँ से छूट कर रास्ते के मोड़ से अदृश्य हो जाते, इसका कोई ठिकाना नहीं था।

फरसी की बड़ी नलकी मे धीरे-धीरे गड़क-गड़क शब्द के साथ तम्बाकू सेवन यह महात्मा पीताम्बर दासजी के लिए विशेष आनन्द की बात थी। उनके विशिष्ट भक्तगण इसीलिए तम्बाकू सेवन व्यवस्था पहले ही से करके रखते थे। फरसी की नलकी मुँह में रखे हुए तम्बाकू का धुंआ छोड़ते-छोड़ते वे अध्यात्म राज्य के नाना गुह्य तत्वों का वर्णन करते। अनेक बार फरसी की निगाली मुँह में रखे हुए नाना अलौकिक काण्ड भी वे कर डालते। एक बार की एक विशेष घटना के बाद ही पीताम्बर दासजी का नया नाम 'फरसी बाबा, चारों ओर व्याप्त हो गया, तथा हरिद्वार के निकटवर्ती क्षेत्रों में आजीवन वे इसी नाम से विख्यात थे।

पीताम्बर दास बाबा उस समय भीमगोडा और सप्तधारा के बीच में एक निर्जन स्थान पर एक साधारण सी कुटिया में निवास कर रहे थे। दिन में दो-एक बार वे हरिद्वार आकर अपने भक्त और गुणग्राही जनों के बीच अपनी बैठक जमा जाते।

उस दिन भी बाबा आये हुए हैं। बाजार के समीपवर्ती रास्ते में लाला मोती चंद की गद्दी के लोग आनन्द पूर्वक उनको घेर कर खड़े हो गये और उन्हें यत्न पूर्वक लाकर अपने गद्दी घर में बैठाया।

गद्दी के परिचालक ने हाथ जोड़ कर निवेदन किया, "बाबा, कल दिल्ली से शुद्ध सुगन्धित अंवरी तम्बाकू आया है। आज उसी को हुक्के में चढ़ा कर आपको पिलाऊंगा। कृपा करके थोड़ा बैठिये।"

बाबा, इस आमंत्रण से बहुत प्रसन्न हैं' गद्दी के एक तरफ

आराम से बैठ गये। धीरे-धीरे आस-पास की दुकानों से भी कुछ लोग आकर हाजिर हो गये।

दिल्ली के लाला मोतीचंद बाबा के पुराने भक्त हैं। उनसे भी अधिक श्रद्धा तथा भक्ति उनकी स्त्री यमुना बाई की है। महिला को कोई संतान वगैरह नहीं है। इसी कारण पूजा-पाठ एवं तीर्थ परिव्राजन में ही वर्ष के अधिक समय तक वे व्यस्त रहती हैं। उन्हीं की इच्छा और प्रेरणा से लाला मोतीचंद सेठ प्रतिवर्ष लाखों रुपये तीर्थ विग्रह और साधु संतों की सेवा तथा जन-कल्याण में दान कर देते हैं।

भक्तिमती यमुना बाई ने बाबा महाराज से बहुत दिन पहले ही कृष्ण मंत्र की दीक्षा ली है। उनके स्वामी लाला मोतीचंद भी इन सिद्ध महापुरुष की श्रद्धा-भक्ति करते हैं और उन्हें अपना एक अभिभावक ही मानते हैं। हरिद्वार की उनकी यह गद्दी व्यापार में मुनाफे के लिए स्थापित नहीं की गयी है। प्रधानतः इसके माध्यम से यमुना बाई का एक सदाव्रत चलता रहता है। यहीं साधु—सज्जन तथा दरिद्रों के लिए राह खर्चा, खाद्य पदार्थ, कम्बल, लोटा, कमण्डलु इत्यादि वितरित होता रहता है। गद्दी के परिचालक ने उत्साह पूर्वक बाबा के लिए अलग रखी हुई फरसी में जल भर कर सामने लाकर रख दिया। चिलम में अम्बरी तम्बाकू चढ़ा कर आग लगाने के बाद फरसी की निगाली उन्होंने बाबा के हाथ में पकड़ा दी।

गद्दी के एक किनारे टेढ़े होकर लेटे हुए बाबा महाराज अर्धनिमीलित नेत्रों से निश्चिन्तता पूर्वक यह नया आया हुआ सुगन्धित तम्बाकू उपभोग कर रहे हैं।

गड़क-गड़क कश पर कश चल रहा है और चिलम से धुएं की खुशबू निकल रही है।

बाबा बड़े मौज में हैं। ऐसा सुयोग पाकर साधुओं और गरीब गृहस्थों के एक दल ने उनके पास अपना आवेदन शुरू किया, 'बाबा, हरिद्वार में चैत्र संक्रांति का स्नान आ रहा है। किन्तु गद्दी के मुनीमजी

से यही ज्ञात हुआ है कि हम लोगों के लोटा, कम्बल इत्यादि के वितरण की कोई व्यवस्था अभी तक नहीं हुई है। कृपया आप हम लोगों की तरफ से इन लोगों को ताकीद कीजिए।"

"हम क्या जानें? पकड़ो यमुनाबाई को।"

"विपत्ति तो यही है, बाबा, यमुना बहिन अभी तक यहाँ नहीं आ सकी हैं।" स्थानीय प्रार्थी साधु, सन्यासी एवं जन साधारण सेठजी की पत्नी को यमुना बहिन ही कहकर पुकारने के अभ्यस्त हैं।

बाबा लेटे हुए हैं और तम्बाकू पीने में मशगूल हैं, पता नहीं क्यों, वे अकस्मात् चौकन्ने हो गये। हाथ से फरसी की निगाली गिर पड़ी।

अपने मन से ही बड़बड़ कर रहे हैं "नहीं-नहीं मोतीचन्द, आगे मत बढ़ो मत बढ़ो...आह यह क्या किया?"

साथ ही साथ घर के सभी लोगों ने अवाक् एवं विस्मित होकर देखा—क्षणभर में ही बाबा अंतर्ध्यान हो गये हैं। केवल वे ही नहीं, उनकी प्रिय अम्बरी तम्बाकू वाली फरसी भी गायब है। वह भी आश्चर्य जनक रूप से गद्दी से अदृश्य हो गयी है।

इस अद्भुत काण्ड को देखकर, बाबा के भक्त, दर्शनार्थी गण हतबुद्धि हो उठे हैं। किसी के मुख से कोई बात नहीं निकल रही है, सभी एक दूसरे की ओर देख रहे हैं।

प्राय: दस मिनट के बाद एक और अद्भुत काण्ड दिखलायी पड़ा। बाबा फिर अपने स्थान पर उपस्थित हो गये हैं। परन्तु उनकी प्रिय फरसी उनके साथ नहीं है। पता नहीं वह कहाँ गायब हो गयी है।

बाबा का सदा प्रफुल्ल मुख न जाने क्यों कुछ गंभीर हो उठा है। गद्दी से मसनद का सहारा लेकर अपने आप धीमे स्वर में बोलते जा रहे हैं। "मोतीचन्द बेवकूफ के माफिक चलेंगे, और झूठमूठ हमको दिल्ली तक दौड़ना पड़ेगा।"

सभी अवाक् हैं। इस बात का अर्थ किसी के लिए समझ पाना संभव नहीं है। गद्दी का मुनीम बाबा का अनन्य भक्त है। वह समझ पा रहा है कि यह बाबा का एक विशिष्टतम अलौकिक काण्ड है। गद्दी के मालिक लाला मोतीचन्द को किसी भूल, भ्रान्ति या विपत्ति से उद्धार करने के लिए ही बाबा को इस तरह दौड़ना पड़ा था।

मुनीम ने प्रश्न किया, "बाबा, आपने फरसी को कहाँ गायब कर दिया। उसे हम लोगों ने केवल आपके व्यवहार के लिए ही गद्दी पर अलग ही रख दिया था। वह फरसी कहाँ गई ?"

"हम तो गृहस्थ नहीं। हरेक चीज संभालने में हमारा क्या काम।"

"नहीं बाबा, तुम्हारी निजी फरसी, तुम कहाँ फेंक आये; इसी की चिंता में मैं पड़ा हूँ।"

"उसके लिए फिकर मत करो", मुस्कुराते हुए बाबा ने उत्तर दिया, "यमुनाबाई खुद आ जायगी फरसी लेकर।"

सभी सोच कर आश्चर्य-चकित हैं। उस जलती हुई फरसी को इन्द्रजाल जैसे, और इतने लोगों के सामने बाबा ने गायब कर दिया, एवं वह किस तरह और कैसे दिल्ली में यमुना बहन के पास पहुँच जायगी ?

हरिद्वार के आकाश में संध्या का अंधकार फैलता जा रहा है। "अभी मैं कुटिया में जाऊँगा, बहुत देरी हो गयी।" यह कहते हुए बाबा महाराज जल्दी से अपने सप्तधारा स्थित कुटिया की ओर निकल पड़े।

लगभग एक सप्ताह बाद यमुनाबाई और लाला मोतीचन्द दिल्ली से आ गये। साथ में सदाव्रत के लिए प्रचुर मात्रा में घी, आटा, चीनी और साधुओं के लिए वस्त्र, लोटा और कमण्डलु इत्यादि लेकर आये।

साधु और दरिद्र गृहस्थ-गण आकर अपनी प्रिय यमुना बहन

को घेरकर आदर-पूर्वक खड़े हो गये और बार-बार "यह दो, वह दो" कहते हुए अपने प्रयोजन की वस्तुओं को मांगने लगे।

सभी को देख रही हूँ, किन्तु हमारे बाबा महाराज कहाँ हैं? गद्दी के मुनीम से यमुना बाई ने आग्रह पूर्वक प्रश्न किया।

"बाबा तो सात दिन पूर्व इस गद्दी पर बैठे हुए एक अद्भुत काण्ड कर गये, उसके बाद तो उनसे फिर भेंट नहीं हुई। यहाँ बैठे फरसी से तम्बाकू पी रहे थे, अनायास अपने आप धीमे स्वर में लाला जी की बात कह उठे, तथा कुछ क्षणों के लिए अदृश्य हो गये। उसके बाद जब वापस आये तो फरसी साथ नहीं थी।"

"बाबा की वह फरसी अब तुम लोग नहीं पा सकोगे। मैंने उसे संभाल कर दिल्ली में अपने घर के पूजा घर में रख दिया है।"

इसके बाद यमुना बहिन गद्दी पर एकत्रित साधु और दरिद्र गण के सामने, भाव-छलछल नयनों से बाबा की योग-विभूति और कृपा लीला की कथा का वर्णन करने लगीं।

दिल्ली में सेठ मोतीचंद के प्रासाद-स्वरूप भवन के पास ही एक विस्तीर्ण बगीचा है। सात दिन पहले संध्या से कुछ पूर्व यमुना बाई और उनके स्वामी मोतीचंद बगीचे में टहल रहे हैं। अकस्मात्, इसी समय बगीचे के अन्दर ही एक झाड़ी की तरफ मोतीचन्द जी बढ़ गये। एक गुच्छा सुन्दर फूल खिला हुआ था, जिसे वे स्वयं तोड़ना चाहते थे।

गुच्छे के पास जाते ही न जाने कौन अन्तरीक्ष से धीमे स्वर में बोल उठा, "मत जाओ, वहाँ खतरा है।"

यह क्या कोई दैवी कण्ठ स्वर है, या मोतीचन्द के अपने मन की भ्रान्ति है? बगीचे के शाखा-पल्लव हवा से झूल रहे हैं, संभव है, यह उसीका शब्द हो।

लाला मोतीचन्द झाड़ी के भीतर खड़े होकर उत्साह पूर्वक फूल तोड़ रहे हैं, इसी समय एक विशाल काला गेहुँअन साँप ने फन उठा कर उनके

हाथ पर डँस लिया। एक तो यह विषधर सर्प तथा इसके अलावा थोड़ी देर पहले बड़े पेड़ की एक सूखी डाली भी उसके ऊपर गिर चुकी है। साँप क्रुद्ध हो उठा है, ठीक इसी समय झाड़ी में लाला मोतीचन्द को देखकर उसने उनके हाथ पर एक प्राणांतक दंश कर दिया है।

"क्या हुआ, क्या हुआ" कहती हुई, भयभीत, यमुना बाई आगे बढ़ आयीं। उन्होंने देखा कि एक उग्र गेहुअन साँप उनके बगल से ही बाहर निकल रहा है, तथा उसके दंश से पीड़ित लाला मोतीचंद डर से जमीन पर पड़े हुए छटपटा रहे हैं।

भय एवं शोक से आकुल यमुना बाई जोर-जोर से क्रन्दन करने लगीं। बगीचा काफी बड़ा था और माली तथा दरवान वहाँ से काफी दूर पर थे।

इसी समय पास वाली ऊँची दीवार से धम से एक जलती हुई फरसी, चिलम के साथ वहाँ गिरी। दूसरे ही क्षण, अपार योगविभूति संपन्न बाबा महाराज जमीन पर लोटते हुए मोतीचंद के सम्मुख आकर बैठ गये।

घुटने के बल बैठकर, हाथ में पकड़ी हुई कोई बनौषधि, बाबा महाराज ने यत्नपूर्वक मोतीचंद के सर्प दंश वाले स्थान पर लगा दी। उसके बाद स्नेह पूर्ण नयनों से यमुना बाई की ओर देखते हुए उन्होंने कहा, "माई, अब तुमको कोई चिंता नहीं है। अभी, इसको घर ले जाओ, थोड़ा सा गरम दूध तो पिलाओ।" साथ ही साथ बाबा महाराज, वहाँ से अंतर्ध्यान हो गये। केवल दीवार के पास पड़ी उनकी सुन्दर फरसी मात्र वहाँ रह गयी।

प्राय: आध घंटे बाद मोतीचंद का पूर्ण वाह्य ज्ञान लौट आया, और वे आँख खोलकर देखने लगे।

उनके मुँह से इस हिंस्र गेहुँअन साँप का वर्णन सुनकर घर के सभी लोग कई गैस बत्ती लेकर निकल पड़े। घर के दरवान और

नौकर-चाकर ने हाथ में बल्लम और लाठी लेकर उस झाड़ी को घेर लिया। काफी परेशानी के बाद वह भयानक सर्प मारा गया।

हरिद्वार की गद्दी पर बैठी हुई, पूर्व घटित सारी घटना का यमुना बाई ने सविस्तार वर्णन किया। उनके दोनों चक्षुओं से पुलकाश्रु झड़ रहे थे।

उसके बादे गद्दी के मुनीम की ओर देखकर, उन्होंने मुस्कराते हुए कहा, "तुम लोग इस गद्दी पर बाबा के व्यवहार के लिए जो फरसी पृथक करके रखते थे, वह बाबा की कृपा से या बाबा की भूल से ही कहो, दिल्ली में स्थानांतरित हो गयी है। उस फरसी का स्थान इस समय मेरे पूजा घर में है। तुम लोग आज ही बाबा के लिए एक दूसरी सुन्दर फरसी खरीद लाओ। प्रचुर मात्रा में सुगन्धित अंबरी तम्बाकू मैं दिल्ली से खरीद कर ले आई हूं। वह सारा बाबा के लिए यत्नपूर्वक रख दो।

इस घटना के बाद, सारे हरिद्वार और ऋषीकेश क्षेत्र में महात्मा पीताम्बर दासजी, फरसी बाबा के नाम से परिचित हो उठे।

हरिद्वार से कुछेक मील दूर एक अति साधारण एवं निर्जन कुटिया में फरसी बाबा रहते थे। त्याग, तितिक्षा और तपस्या की धूनी सर्वदा उनके यहां जलती रहती। उनके भक्त मण्डली में राज-रजवाड़ों और सेठों की संख्या प्रचुर थी। परन्तु, इन महाशक्तिधर एवं सर्वत्यागी साधु को कोई कभी भी किसी मठ या मण्डली गठन करने पर राजी नहीं कर पाया। धनी, निर्धन, ब्राह्मण शूद्र सभी के लिए वे सर्वदा एक प्रियतम सखा एवं रहस्यमय व्यक्ति के रूप में ही थे। ये समदर्शी, सिद्धमहापुरुष सर्वदा अपने मन के मौज में जनारण्य किंवा गंगा तीर पर रास्ते एवं पर्वतों पर बराबर घूमते रहते। दर्शनार्थियों तथा भक्तों को देखते ही सोल्लास उच्च स्वर से बोल उठते "वाहवा, वाहवा देखलो मेरे गिरिधारी किशन जी की चतुराई, और देखलो मेरे परमात्मा की लीला।" हँसते, गाते एवं नाचते नाचते, सभी को अनायास

वे अपने अंक में भर लेते, आशीर्वाद देते और मन के द्वार खुले रहने पर अध्यात्म जीवन का पथ-निर्देश अनपेक्षित रूप से कर देते।

हरिद्वार एवं कनखल में स्थायी तथा अस्थायी मठ मण्डलियों की कोई गिनती नहीं है। इनमें प्रमुख नाम हैं निर्वाणी, निरंजनी जूना आखाड़ा, वैरागी रामाइत, निम्बार्क, उदासी एवं अन्य बहुत से संप्रदाय। आश्चर्य की बात है कि फरसी बाबा के प्रति इन सभी मठ-मण्डलियों के साधुगण आंतरिक श्रद्धा एवं प्रेम रखते। वे भी रास्ते पर निकलते ही, उन सभी को साथ लेकर आनन्द करते।

सभी जानते कि फरसी बाबा अपने उद्भट चाल-चलन, नृत्य-गीत तथा हो-हुल्लड़ से मनुष्य को कितना भी धोखे में रखने की चेष्टा क्यों न करें, असल में वे एक ब्रह्म-विद तथा जीवन-मुक्त पुरुष हैं। इसी कारण वे समदर्शिता, प्रेम और आनन्द से सदा ही भरे रहते हैं।

फरसी बाबा के भक्त यमुना बाई, मोतीचन्द तथा अन्यान्य सेठ लोग, हरिद्वार आकर नाना पर्वों पर दान-ध्यान करते तथा भंडारा इत्यादि देते रहते। इसलिए इस क्षेत्र के साधु लोग उनको कई बार आकर पकड़ते। कोई एक जोड़ा कम्बल चाहता तो कोई लोटा-कमण्डल या वस्त्रादि चाहता। सभी एक ही बात कहते—"बाबा, तुम यमुना बाई को मेरी तरफ से कह दो।"

फरसी बाबा जोर से उत्तर देते, "ये गृहस्थी के बारे में हम क्या जानें? तुम्हारे सेठ और राजा-रानी की हम क्यों परवाह करें? हट जाओ हमारे सामने से।"

कोई-कोई कह उठते, "बाबा, अबकी बार यहाँ काफी जाड़ा पड़ रहा है और देख रहा हूँ कि तुम्हारे शरीर पर एक गरम अंगरखा भी नहीं है। भरतपुर के राजा सदल-बल अबकी आये हुए हैं। सुन रहा हूँ कि तुम्हारा दर्शन करने के लिए तथा तुम्हारी कृपा पाने के लिए तुम्हारी काफी तलाश कर

रहे हैं। अच्छा ही है. अब की तुमको निश्चित रूप से सुन्दर कश्मीरी शाल भेंट में मिलेगी।"

अम्बरी तम्बाकू का धुआं छोड़ते-छोड़ते फरसी बाबा सहज कण्ठ में उत्तर देते, "राजा आया, सेठ आया, बहुत अच्छा। ब्रह्मकुण्ड में स्नान करो और अपने घर लौट जाओ। मेरे साथ भेंट करने की क्या जरूरत ? वे सब अगर मेरे पास आवेंगे तो मारेंग एक चिमटा।"

फरसी छोड़ कर वे झटपट उठ जाते और रास्ते पर निकल पड़ते। अंत-रंग साधुगण तथा भक्त इन मुक्त पुरुष के साथ हँसी करते हुए यही भय दिखाना शुरू करते, "बाबा, तुम जो कुछ भी क्यों न कहो, अबकी राजा लोगों की दी हुई शाल तथा दुशाली तुमको लेना ही होगा।"

भक्त लोग जानते कि शाल और दुशालों की भेंट बहुत बार फरसी बाबा को मिलती थी, परन्तु हर बार थोड़ी देर बाद ही वे अनायास रास्ते पर खड़े किसी साधु या भिखारी के शरीर पर उसे डालकर खिसक जाते।

उच्च कोटि के साधु-संन्यासी तथा साधारण भक्त गृहस्थ सभी इन सदानन्दमय महापुरुष की कृपा एवं दिशानिर्देश लाभ कर धन्य होते। जिस तरह वे मुक्ति प्रयासी अभिज्ञ साधकों को निगूढ़ क्रियादि का निर्देश दे देते, उसी तरह सद् एवं जिज्ञासु गृहस्थों को भी वे साधारण, सहज कल्याणमय पथ का दिग्दर्शन करा देते।

एक बार एक वैरागी अखाड़े के साधुओं द्वारा प्रदत्त तम्बाकू का सेवन करते फरसी बाबा आनन्द पूर्वक नाना प्रसंगों पर बातचीत कर रहे हैं। तीर्थ-यात्री भक्त गृहस्थों का एक दल भी कौतूहल पूर्वक उनको चारों ओर से घेर कर खड़ा है। एक भक्त ने प्रश्न किया, "साधन-भजन के लिए चेष्टा करता हूँ, इष्ट को भी कितना पुकारता हूँ परन्तु, मन ही तो किसी तरह वश में नहीं आता है। फिर क्या मेरा कुछ भी नहीं होगा ?"

"क्यों नहीं होगा, वेटा, गीता पढ़े हो तो ?"

"जी हाँ।"

"कृष्ण जी स्वयं ही तो अर्जुन को अपने मुखारविन्द से कह गए हैं—अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते । मन तो सर्वदा ही चंचल है . आसानी से वश में नहीं आता। इसको वश में लाने के लिए वैराग्य तथा तथा नियमित अभ्यास की आवश्यकता है।"

"इन दोनों के लिए ही प्रयास करता हूँ, परन्तु मेरी चेष्टाएँ व्यर्थ हो रही हैं। आसन पर वैठते ही मन नाना निरर्थक विषयों को लेकर हाजिर हो जाता है। इसके बाद प्रभु जी का स्मरण एवं ध्यान संभव नहीं हो पाता।"

शांति पूर्वक जिज्ञासु व्यक्ति की ओर कुछ देर तक दृष्टिपात करने के वाद फरसी वावा, कोमल स्वर में वोल उठे, "वेटा मन है इन्द्रियों का अधिपति। यह इसका स्वभाव ही है—और इसका कार्य ही है संकल्प और विकल्प । सुख और भोग के लिए केवल यह एक-एक विषय का ग्रहण और त्याग करता रहता है।"

"यह संकल्प और विकल्प जायगा किस तरह ?"

"वेटा, जब तक भोग की आकांक्षा नहीं की जाती है, यह संकल्प और विकल्प दूर नहीं होता। सुख प्राप्ति की कल्पना मात्र मनुष्य के भोग की आकांक्षा को बढ़ाती रहती है। इसी सुख प्राप्ति की कल्पना के मूल पर ही आघात करना होगा।"

"इसका उपाय?"

"इसे भी तो तुम्हारे कृष्ण जी ने गीता में बार-वार कह ही दिया है। उन्होंने फल की आकांक्षा का त्याग करने को कहा है। सभी कार्य तुम करोगे भोग भी करोगे परन्तु, सदा अनाशक्त होकर ही करोगे। भोजन-शयन, संसार के सभी कर्तव्य ठीक से करोगे, परन्तु प्रत्येक कार्य करते समय आंतरिक रूप से यही सोचते हुए करोगे—यह सभी कार्य मैं केवल ईश्वर की प्रीति के

लिए ही कर रहा हूँ। उनका ही होकर मैं यह कार्य कर रहा हूँ—मेरा कोई अधिकार नहीं है। तुम अपने सारे कार्यों का उत्सर्ग भगवत् सेवा व रूप में ही कर दो। तुम देखोगे कि कार्यों का बंधन क्रमशः ढीला पड़ता जा रहा, और परमप्रभु कृष्ण जी की ज्योतिमय छटा तुम्हारी तरफ बढ़ती चली आ रही है।"

भक्त गृहस्थ ने मुस्कराते हुए कहा, "बाबा, आप जो कुछ भी कहें, मेरे जैसे क्षुद्र मनुष्य की क्षुद्र चेष्टाओं द्वारा सफलता पाना कठिन है।" अपना मस्तक उन्होंने आगे बढ़ाते हुए कहा, "बाबा आप मेरे माथे का स्पर्श करके आशीर्वाद दें, तभी संभव है प्रभु जी की कृपा कभी हो जाय।"

फरसी की निगाली को एक ओर रख कर बाबा ने हँसते हुए कहा, "अपने को चतुर समझ कर माथा तो खूब बढ़ा रहे हो। किन्तु पूछता हूँ कि यदि सचमुच संकल्प करके ब्रह्म रंध्र स्पर्श कर दूँ, तब यह स्त्री, पुत्र, कन्या और संसार कहाँ रह पायगा? नंगे होकर उन्मत्तता पूर्वक थेई-थेई करते हुए नाचने लगोगे, तब!"

इसके बाद प्रसन्न हृदय से सिर हिलाते-हिलाते शांत कण्ठ से फरसी बाबा ने कहा, "बेटा, त्याग और वैराग्य का अभ्यास करते हुए धीरे-धीरे एक-एक संकल्प और सुख भोग की आकांक्षा को छोड़ो और प्रभुजी की ओर बढ़ो। मन में द्विधा या अनुताप को स्थान मत दो—वे तो तुम्हारी ही अपेक्षा में तुम्हारी बाट निहार रहे हैं। इसके अलावा, उनका और कार्य ही क्या है बताओ?"

फरसी बाबा एक दिन ब्रह्मकुण्ड के पास ही चौड़ी सीढ़ी पर अपनी मजलिस जमाए हुए हैं। कुछेक भक्त उनके लिए सुगन्धित अम्बरी तम्बाकू लेकर उपस्थित हैं और बीच-बीच में उसे चिलम पर भरते चले जा रहे हैं।

इसी समय एक शिक्षित बंगाली भक्त ने बाबा से प्रश्न किया, "बाबा, अभी पिछले दिनों ही हरिद्वार में काफी समारोह के साथ कुम्भ मेला समाप्त हुआ। सुनता हूँ कि इस समय अनेक बड़े-बड़े साधु महात्मा

तथा ऐसे ऐसे ब्रह्मविद् पुरुष जो कि लय-प्रलय करने में सक्षम हैं, यहाँ आये थे क्या यह सत्य है ?"

"हाँ, हाँ, वे लोग जरुर आये थे।" फरसी की नलकी हाथ से नीचे करते हुए बाबा महराज ने गंभीर स्वर में उत्तर दिया।

'परन्तु, बाबा हम लोग उन्हें तो संपर्क करने या पहचानने में भी असमर्थ रहे।'

इसके उत्तर में बाबा, ने जो कहा, उसका सारांश :

"ब्रह्मविदों को छोड़ कर; और किसी के लिए इन सब महात्माओं को पहचान पाना दुष्कर है। यदि वे अपनी ही इच्छा से कृपा कर तुम्हारी पकड़ में नहीं आवें तो तुम विषय कीट जो कि गलीज़ में पड़े हुए हो—उन्हें पहचानने का सौभाग्य, तुम्हारा होगा किस तरह ?"

बंगाली भक्त प्रखर बुद्धि के एवं तार्किक हैं तथा अपनी शिक्षा-दीक्षा के ऊपर उनकी यथेष्ट आस्था है। मुस्कराते हुए उन्होंने कहा, 'बाबा सूर्य क्या कभी अपने तेज को छिपा सकता है ? जो ब्रह्मज्ञ पुरुष हैं, उनके भीतर से ब्रह्मतेज तो बाहर फूट पड़ेगा ही।'

गंभीर स्वर में बाबा ने कहा, 'यह भी जान रखो कि कि ऐसे भी थोड़े महात्मा हैं, जो कि अनायास ही ब्रह्मज्योति एवं ब्रह्मशक्ति के संहरण करने की भी शक्ति रखते हैं। सहज और साधारण भाव से उनके जन समाज में रहने पर भी किसी के लिए उन्हें पहचान पाना संभव नहीं है।'

"आप जो भी कहें बाबा आपकी बात मैं पूरी तरह मानने को तैयार नहीं हूँ। ब्रह्मविद ब्रह्मैव भवति—उनके तेज आच्छादन करने पर भी जिज्ञासु मनुष्य की दृष्टि में कुछ तो अवश्य दिखलाई पडेगा" नव्य शिक्षित भक्त, आत्मविश्वास के स्वर में बोल उठे।

अब फरसी बाबा और भी गंभीर और विरक्त हो उठे। उन्होंने कहा, "सारा जीवन जो तुमने अर्जन किया है, वह है अविद्या। विद्या, जो मनुष्य को

ज्योतिष्मान करती है, उसका तुमने स्पर्श भी नहीं पाया है। प्रकृत ब्रह्मविद् पुरुष को पहचानने की शक्ति तुम पाओगे कहां से।'

फरसी की नलकी से एक जोरदार कश खींच कर काफी धुंआ उड़ाने के बाद बाबा, करवट होकर सो गये। इसके बाद इन तार्किक पुरुष से एक पर एक प्रश्न करने लगे।

"बेटा, तुम तो सिपाहियों के हिसाब वाले दफ्तर में कार्य करते हो?"

"हाँ, बाबा मैं मिलिटरी एकाउन्टस् में कार्य करता हूँ।"

'दो साल पूर्व तुम मेरठ, बदली होकर आये हो।'

'सत्य ही कह रहे हैं, बाबा।'

'जब तुम कलकत्ता में थे, तो यह सोच भी नहीं पाये थे कि अनायास यहाँ बदली हो जायगी। और यह भी नहीं जानते थे कि आफिस में तुम्हारा एक विरोधी गुट है जिसने तुम्हें विविध उपाय करके यहाँ भिजवाया है। और यहाँ एक कड़े बदमिजाज साहब के हाथ में पड़ कर परेशान हो रहे हो। ऐसा ही है न?'

'जी हाँ।' भद्र पुरुष ने भयभीत होकर उत्तर दिया।

'देखो, तुमने ख्याति के साथ अपना कार्य किया है। कार्य में तुम भी अत्यन्त दक्ष हो फिर भी इतने सारे तथ्य तुम अपनी विद्या-बुद्धि से समझ भी नहीं पाये।'

थोड़ा ठहर कर तम्बाकू का एक कश खींचकर फरसी बाबा ने फिर प्रश्न शुरु किया "बेटा तुम्हारे पत्नी की मृत्यु पाँच वर्ष पूर्व हुई है। उससे पहले उसने दो वर्ष तक कर्कट रोग से भीषण रूप से आक्रान्त होकर अपार कष्ट झेला। यह सत्य है क्या?'

'हाँ बाबा, आपकी बात अक्षरशः सत्य है। मैं तो अंत तक इस रोग का संधान नहीं पा सका। इसके अलावा कलकत्ता के बड़े-बड़े डाक्टर भी इस कालव्याधि की बात नहीं समझ पाये।'

तार्किक भक्त अबतक हतवाक हो चुके थे। हाथ जोड़ कर उन्होंने स्वीकार किया, 'वावा, आपकी बात बिलकुल सत्य है।'

फरसी वावा, फिर वोल उठे 'वेटा तुमने इस जीवन में कितना कष्ट पाया है। हाँ, तुम्हारी एक शिक्षिता कन्या भी तो थी ?'

'जी हाँ'—भक्त ने धीरे से उत्तर दिया।

'पिछले साल, वह भी अपने एक पुराने सहपाठी के साथ कहीं भाग गयी है न ?'

'यह बात भी सत्य है बाबा।'

'यह बात भी सत्य है, कि इस लड़की ने कलकत्ता में रहते हुए ही कई वर्ष पहले से ही इस लड़के के साथ घनिष्ठता स्थापित कर ली थी। तुमने साधारण रूप से संदेह अवश्य किया था, किन्तु इस बात को तुमने कोई विशेष महत्व नहीं दिया था। पिता को जैसे होना चाहिए, सतर्क भी नहीं हुए।'

'वावा, आप अन्तर्यामी हैं, भगवान स्वरूप हैं। इसीलिए आप से कोई बात छिपी हुई नहीं है।'

अव कोमल और स्नेह पूर्ण स्वर में फरसी वावा ने वोलना प्रारंभ किया, 'वेटा, तुम देख तो रहे हो कि तुम्हारे द्वारा गृहीत सारी विद्या ही अविद्या है। उसने तुम्हें कभी भी ज्ञान के आलोक का स्पर्श भी नहीं दिया। इसी कारण तुम्हारे अपने आसपास जो घटा है या घटता जा रहा है, उसका जानना तुम्हारे लिए संभव नहीं हो सका। फिर वता तो वेटा, तू किस तरह ब्रह्मविद् पुरुषों को पहचान सकेगा ? जो सच्चिदानंद परम सत्ता के स्वरूप हैं तथा विभूति हैं, उन्हें पहचान पाना क्या सहज है वेटा ?'

भक्त महोदय ने फिर प्रसंग को चालू रखते हुए जिज्ञासा की, 'फिर वावा किस रूप में और किस तरह आते हैं और किस तरह मनुष्य का कल्याण करते हैं, कृपया मुझे थोड़ा समझा कर कहें।'

तम्बाकू की नलकी एक ओर रखकर, वावा उठ कर बैठ गये।

उन्होंने कहना आरम्भ किया, 'सुरा पान किये हुए तुमने अनेक लोगों को देखा होगा। वे सभी एक-दो पात्र पान करने के बाद ही अपना होश हवास खोते हैं। निरर्थक बकझक शुरू करते हैं और उसके बाद उल्टी कर डालते हैं। थोड़े मद्यप ऐसे हैं जो पांच-दस पात्र पीने के बाद भी स्थिरता पूर्वक बैठे रह जाते हैं। यही समझो, ईश्वर का प्रेम, शक्ति या ज्ञान लाभ के बाद भी इसी तरह का क्रम देखा जाता है। कोई-कोई थोड़ा सा भगवत् रस पाने के बाद अत्यधिक अधीर हो उठते हैं। आँख चढ़ जाती है, और बाह्य-ज्ञान नहीं रह जाता। इसके अलावा, ऐसे भी ईश्वर प्रेम में मतवाले महा-पुरुष हैं, जो सर्वदा ही सहज समाधि में रहते हैं। ईश्वरीय प्रेम शक्ति; प्रज्ञा को सहज रूप में धारण करने की उनमें क्षमता होती है। इससे भी उच्च कोटि के लोग हैं, वे ब्रह्म स्वरूप होकर ब्रह्म जैसे ही हो जाते हैं। उनके लिए सभी सहज एवं स्वाभाविक है—ऐसे समर्थ हैं वे लोग 'स्वाभाविकी ज्ञानबलं क्रिया च' वाली बात ऐसे ही ब्रह्मविदों के विषय में ही है।"

दो-एक भक्तों ने हाथ जोड़ कर निवेदन किया, 'फिर बाबा, यदि हम लोगों को पहचान पायें तथा इनका पुण्यमय सानिध्य पा जायँ तो इससे ही अपना जीवन सार्थक कर ले सकते हैं।

'यह तुम लोगों से कैसे संभव होगा। 'फरसी बाबा ने मुस्कराते हुए उत्तर दिया। केवल ब्रह्मविद ही ब्रह्मविद् को पहचान सकेगा। इसके अलावा, साधारण मनुष्य के पास अनेक बार उन्माद ग्रस्त के रूप में रहते हैं। किसी किसी महात्मा को पिशाचवत् आचरण करते भी कभी-कभी देखा जा सकता है! ये लोग स्वेच्छामय तथा स्वतन्त्र पुरुष हैं। कोई-कोई रास्ते पर भिखारी, मोची या अन्य रूपों में भी रह लेते हैं। ये यदि कभी स्वयं ही कृपा करें, तभी तुम इनका सान्निध्य पा सकते हो।'

'वावा, इनके इस तरह से रहने पर संसार का या मानव समाज का क्या कल्याण हो सकता है कृपया हम लोगों को थोड़ा समझायें।'

'वेटा, यवनिका के पीछे से विश्वसृष्टि का कल्याण यही लोग तो करते हैं। इन्हीं के हाथ में तो परम प्रभु का अमृत कुण्ड सुरक्षित है। प्रयोजन के अनुसार यही तो अधिकारी भाग्यवान को उसका वितरण करते हैं।' दिव्योज्ज्वल नेत्रों से भक्त तथा जिज्ञासुओं को फरसी वावा ने आश्वासन दिया।

हरिद्वार एवं उत्तर खण्ड के साधु सन्तों के समाज में तथा सज्जन, भक्त, गृहथों के समाज में १९४२ साल तक, सदा प्रसन्न मूर्ति ब्रह्मस्वरूप इन महात्मा को दिव्य आनन्द का रस वितरण करते देखा गया। उसके वाद कव और कहाँ वे अन्तर्ध्यान हो गये इसका पता किसी को नहीं चल सका।

ब्रह्मानन्द मय एक हवा की लहर जैसे फरसी वावा हरिद्वार के क्षेत्र में आविर्भाव हुआ था। उसी लहर जैसे ही उन्होने अपने को जन जीवन से अलग कर दिया।

—**—

मौनी दिगम्बर जी

पूर्व जन्म के संस्कार एवं प्राक्तन मनुष्य के जीवन प्रवाह को संचालित करते हैं एवं सामयिक रूप से स्तंभित कर देते हैं। फिर अनायास नवीनतर दिव्य चेतना के उन्मेष एवं महत्तर जन्म के लिए खंडित कर देते हैं। दर्शन के दृष्टि कोण से बात काफी साधारण-सी है, किन्तु उसका दर्शन पाना एवं अनासक्त होकर उसे जीवन में रूपान्तरित कर देना अत्यन्त कठिन है। किन्तु, इस कठिन कार्य को सहज करते हुए मैंने अपने बन्धु एवं सहपाठी पुरन्दर चौधरी के जीवन में देखा था।

बाल्यकाल से ही पुरन्दर के मन में साधुसंग की आकांक्षा थी। यौवन काल में वह आकांक्षा और प्रबल हो उठी। सहसा एक दिन देखा गया कि वे कालेज से अन्तर्धान हो गये हैं। प्रायः पांच वर्ष बाद हठात् एक दिन उनसे कलकत्ता में ही मुलाकात हो गयी। ज्ञात हुआ प्रयाग में उन्होंने एक योगिराज से दीक्षा ली है एवं गुरु के आदेश से गत एक वर्ष से काली क्षेत्र कलकत्ता के ही एक एकांत स्थान में गंगा के किनारे रहते हुए साधन एवं भजन करते हैं।

उनके गुप्त वासस्थान पर मैं प्रायः ही जाया करता एवं उनकी साधना में निष्ठा देख कर अवाक् हो जाता था। उनके चक्षुओं तथा मुख की दिव्योज्ज्वल आभा देखकर अनायास ही आकृष्ट हो जाता। गुरुकृपा-स्वरूप उनके जीवन में जो दिव्य ज्योति के निर्झर का प्रवाह

हो रहा है उसमें मुझे लेश-मात्र भी संदेह नहीं था। वे सदा एक ही स्वर्गीय आनन्द के धरातल पर विचरण करते रहते।

पुरन्दर के साथ पुराने बंधुत्व का संपर्क क्रमशः और प्रगाढ़ होता जा रहा था। अपने काम-काजी जीवन में जब कभी भी अवसर मिलता, मैं प्रायः ही उसके पास जाता रहता। वह भी जैसे एक अज्ञात तथा अबोध आकर्षण से मेरे बालीगंज स्थित फ्लैट में आता-जाता रहता और बीच-बीच में एक दो दिन रुक भी जाता।

पुरन्दर के साधनामय दिव्य जीवन की बात मैं विस्मित तथा अवाक् होकर सुनता। सबसे अधिक तो विस्मित होता उसकी यत्नपूर्वक लिखी हुई दैनन्दिनी का पाठ करके। पुरन्दर के नयनों के समक्ष उसके गुरुदेव, महायोगी त्रयम्बक बाबा को केन्द्र करके मानो ज्योतिर्मय लोकों का द्वार खुल गया था।

इसी ज्योतिर्मय लोक की बहुत विचित्र अविश्वसनीय बातों को वह प्रतिदिन अपनी दैनन्दिनी में लिखता रहता। उसे पढ़ने तथा उसमें उल्लिखित सारे गूढ़ एवं गोपन तथ्यों को जानने का अधिकार उसने बिना किसी द्विधा के मुझे दे दिया था।

पुरन्दर कहता, इस दैनन्दिनी को और अधिक दिनों तक रखने का कोई प्रयोजन नहीं है। इस विषय में जिस दिन भी गुरु का आदेश आ जायगा, उसी दिन वह उसे गंगा के गर्भ में विसर्जित कर देगा।

सिद्ध जीवन एवं सूक्ष्म लोक के बहुत से आश्चर्यजनक तथ्य पुरन्दर की इस दैनन्दिनी में भरे पड़े थे। यह सब पढ़कर मेरे तरुण जीवन में एक विस्मयकर दिव्य आनन्द का प्रवाह आ गया था। कभी भी वह यह सब गंगा के प्रवाह में विसर्जित कर देगा, उस भय से, उसमें से थोड़े थोड़े 'नोट्स' मैंने अपने लिए उस समय संग्रह करके रखा था, तथा इससे उपकृत भी हुआ

था। दिव्य लोक तथा आनन्दलोक का एक गभीनतर स्तर मानो मेरे सम्मुख उन्मोचित हो उठा था।

मेरे तरुण जीवन में इस दिनलिपि के कल्याणकर योगदान के अलावा एक अन्य अवदान भी था पुरन्दर चौधरी का। भारत के साधु महात्माओं के बहु-वन्दित योगीश्वर महाराज के साथ मेरा परिचय कराकर उसने मुझे सदा के लिए ऋणी बना दिया था। साधना तथा सिद्धि का तत्व एवं भारतीय साधु-महात्माओं की कहानी तथा माहात्म्य, जो कुछ भी मैं जानता हूँ, वह इन योगीश्वर जी की कृपा से ही है।

इस ग्रन्थ में जिन महात्मा की कहानी मैं कहने जा रहा हुँ, वह पुरन्दर चौधरी की डायरी से ही उद्धृत है। यह कहानी शुद्ध एक कहानी मात्र ही नहीं है, जीव-जीवन से शिव जीवन में प्रवेश का सत्य इसमें उद्घृत है। चैतन्यमय जीवन में जो सिद्ध पुरुष सत्य साक्षात करके धन्य हो गये हैं, उनका विवरण इसमें हैं। पुरन्दर द्वारा लिखित अपूर्व विवरण के सूत्र से मैं अपनी भाषा में अध्यात्मरस-पिपासु रसिकजनों के सम्मुख यहाँ निवेदक करता हूं :

—सभी वस्तुओं की शुरुआत का एक आरम्भ होता है, जैसे अंकुर के उद्गम में पूर्व मिट्टी के नीचे बीज की उपस्थिति है। मौनी दिगम्बर जी के इस विवरण के मूल में भी वैसी ही एक अंतराल-चारी सोतधारा गोपन है। उसका प्रकाश एक दिव्य कृपाभिषिक्त घटना के माध्यम से हुआ था। लौकिक एवं अलौकिक की सीमारेखा पर इसे अपनी चक्षुओं के सामने घटते हुए देखा था।

माघ मास था तथा पवित्र शिवचतुर्दशी की अंधकारमय रात्रि थी। निबिड़ अँधकार मानों तीव्र शीत में अमरकंटक पर्वत के अँचल में और तीव्रतर हो उठा है।

इसी पर्वत के हृदय को चीरती हुई निकलती है नर्मदा की पवित्र जल

धारा के स्रोत। इसी उद्गमस्रोत के कुण्ड के किनारे नर्मदा माई की प्रतिमा एवं स्वयंभूलिङ्ग विराजित है। सहस्त्रों पुण्य लोभातुर नरनारी प्रति वर्ष इन दिनों यहाँ एकत्रित होते हैं। अबकी बार भी अनेक दलों में यहाँ एकत्रित हैं, कुण्ड जल में स्नान एवं तर्पण के उपरान्त सभी नर्मदा माई को श्रद्धा निवेदन कर रहे हैं तथा अपने अन्तर के उद्गार प्रकट कर रहे हैं।

साधु महात्माओं की विराट् जमात इस महा पुण्यमय तीर्थ पर जमी हुई हैं। इस जमात में आप विशाल भारत के नाना साधु समाजों को देख सकते हैं। आप देखेंगे धुनी जलाये हुये योगी, वेदान्तिक एवं परमहंस से आरंभ करके उदासी, नागा, नाथपंथी, वैष्णव और अघोरियों के दल बैठे हुए हैं।

तामसी रात्रि ने दिग् दिगन्त में अपना आंचल फैला दिया है। विन्ध्य गिरि की उपत्यका, अरण्य एवं विस्तीर्ण प्रदेश शूचीभेद्य अंधकार से ढक गयी है। ऊपर आकाश में ताराओं का मण्डल टिमटिमा रहा है। दूर पहाड़ पर पेन्ड्रा रोड नामक पहाड़ी कस्बे में जगह-जगह जलती हुई रोशनी से दीपावली का भान होता है। यह दीपावली मानो नर्मदा माई का अर्ध्य हो।

रात्रि अभी अधिक नहीं हुई है। धुनी की अग्नि को घेरकर साधु संन्यासियों का ध्यान एवं जप चल रहा है। गांजा, भांग एवं चरस का धुआँ अविराम उड़ रहा है। हजारों तन्द्रित नयनों में भोर के प्रकाश की प्रतीक्षा दृष्टिगोचर हो रही है। प्रभात होते ही सभी देवी के चरणों में पुष्पांजलि अर्पण करके नर्मदा की परिक्रमा में निकल पड़ेंगे।

परिक्रमा के उपरान्त साधु-सन्त एवं गृहस्थ नरनारी, सभी अपने आश्रमों घरों को—अपने चिर अभ्यस्त जीवन के बीच वापस चले जायेंगे।

सहसा सिद्धनाथ जी के उच्च एवं उत्फुल्ल कण्ठ से सुनाई पड़ा, 'माई जी की पूजा समाप्त हो गयी । अभी परिक्रमा शुरू होगी। जल्दी से डेरा-डंडा उठाओ, डेरा-डंडा उठाओ।"

सबमे अधिक शोरगुल कर रहे हैं बाबा के चेला, प्रौढ़ एवं सदा हास्योज्ज्वल सिद्धनाथ जी।

त्रयम्बक बाबा का ध्यान तथा जप समाप्त हो गया है। धुनी छोड़कर वे खड़े हो गये हैं। सेवक सिद्धनाथ जी के पास एक मुहूर्त का भी समय नहीं है। चटपट उन्होने गुरुजी का व्याघ्राम्बर एवं झोली उठा लिया है। नर्मदा जी के विग्रह एवं कुण्ड के स्पर्श के उपरान्त बहुप्रतीक्षित पदयात्रा का आरंभ हुआ।

नर्मदा के तट की यात्रा करने के बाद सभी को यहाँ के विग्रह के चरणों में पुनः वापस आना होगा।

किसी समय इलाहाबाद के उस पार झूसी के बालुकामय तट पर त्रयम्बक बाबा पर्णकुटी बनाकर निवास करते थे। शिक्षित एवं अशिक्षित बहुत से लोग इन्हें एक शक्तिमान महापुरुष समझते थे तथा श्रद्धा पूर्वक इनके पास आते जाते थे। मेरे साथ भी इनका बहुत पहले परिचय हुआ था। कैसे उनके स्नेह-स्पर्श का लाभ प्राप्त हुआ था, यह ध्यान नहीं, किन्तु अवसर मिलते ही उनके पास चला जाता था। अब की बार वे नर्मदा की परिक्रमा में निकले हैं, सुनते ही साथ हो जाने का लोभ हो आया। बिलासपुर में एक कार्य था, इस कारण व्यवस्था भी आसानी से हो गयी। रीवा राज्य एवं अमरकंटक काफी पास ही हैं। कुछ दिनों के अन्दर ही मैं इस जमात के साथ हो गया।

नर्मदा के उद्गम से क्षीण जलधारा नीचे बहती हुई चलती है। सर्दियों में यह जलधारा गुप्त ही रहती है और इसका खोज निकालना बड़ा कठिन होता है। इसी के साथ पहाड़ के वक्ष-स्थल से उतर कर मील पर मील स्निग्ध हरित् क्षेत्र का प्रसार है। नर्मदा की अन्तःसलिला धारा इसको स्निग्ध प्राणरसों से पुष्ट करती है। हरी घास का एक सुन्दर गलीचा बिछाकर मानों अबोध बालकों का निरंतर आह्वान करती है।

अमरकंटक से उतरता जा रहा हूँ। इसी समय गंगाधर चटर्जी के साथ सहसा साक्षात् हुआ। ऐसे समय में तथा इस परिवेश में मुलाकात होने पर आश्चर्य चकित हो उठा। पास के एक बड़े वृक्ष के पास खड़े हैं। साहेबी सूट पहने हुए हैं तथा शरीर पर अभिजात्य वर्ग की स्पष्ट छाप है। मुँह में तिरछी पकड़ी हुई टोबैको पाइप पड़ी है।

कौतूहलपूर्वक वे चिमटाधारी, नग्न, अर्धनग्न एवं भस्म भभूत रमाये हुए साधु-सन्यासियों के दल को देख रहे हैं। पहले जैसे ही आज भी उनके पतले होठों पर वक्र हँसी है। नाम लेकर पुकारते ही दौड़ कर आये।

गंगाधर बाल्यकाल के मेरे घनिष्ट बंधु हैं। प्रवासी बंगालियों के बीच उनके परिवार की काफी प्रतिष्ठा है एवं गणमान्य पुरुषों से परिचय भी काफी है।

काफी दिनों से उनसे साक्षात् नहीं हुआ था। सुना था, विलायत से बैरिस्टर होकर वापस आये हैं और इलाहाबाद हाईकोर्ट में काफी अच्छी तरह अपनी धाक जमा ली है।

दोनों हाथ बढ़ाकर गंगाधर ने मुझे सस्नेह पकड़ लिया।

विस्मय पूर्वक, उसने स्मरण दिलाया—"कितने दिनों के बाद मुलाकात हुई, बता तो! तुम्हारी कोई खबर भी नहीं पा सका। सोचा था, बिलकुल 'कलकतिया' हो गये होगे। फिर, यहाँ, इस वेश में क्या कर रहे हो? कंधे पर एक झोला झुलाते हुए तथा हाथ में इतना बड़ा चिमटा और शबल लिए ठक-ठक करते हुए कहाँ जा रहे हो?

हँस कर कहा, "नर्मदा की परिक्रमा में। हाथ का चिमटा, यह मेरा नहीं है, त्रयम्बक बाबा महाराज का है। चिमटा छोड़कर चलने का कोई उपाय नहीं है, कारण रात में धुनी की अग्नि इसी से प्रज्वलित करनी होती है एवं दिन में शिष्य तथा सेवक लोग चिमटा तथा शबल से ही कंद-मूल खोज कर निकालते हैं तथा खोद कर बाहर करते हैं।

"वे करें, इसमें मुझे कोई आपत्ति नहीं है, किन्तु, तुम किस तरह इन लोगों के साथ जुट गये हो ? साधु होओगे क्या ?"

भाई ऐसा भाग्य तो मेरा नहीं हुआ है। फिर भी अब की बार इस तीर्थ यात्रा का लोभ नहीं छोड़ पाया। इसके अलावा, पता नहीं कैसे नर्मदा माई ने इस बार बहुत अधिक आकर्षण किया है। किन्तु अमरकंटक के इस कंटकवन में तू कौन-सी बैरिस्टरी कर रहा है, बताओ ?"

"एक बंधु अस्वस्थ है, पेन्ड्रा रोड के सैनेटोरियम में रह रहा है। उसे ही देखने इधर आया था। सुना परिक्रमा के लिये अमरकंटक में साधुओं की विशाल जमात इकट्ठी हुई है—तथा मेला लगा हुआ है। कौतूहल जाग्रत हुआ, इसी कारण एक जीप लेकर निकल पड़ा। पहाड़ के नीचे तक काम करने के लिए एक गाड़ी का रास्ता इन दिनों तैयार हुआ है उसी से तो आ सका।"

'समझता हूँ कि अब पेन्ड्रा रोड वापस चले जाओगे ?"

"बात तो ऐसी ही थी। फिर भी यहाँ की सारी बातें देख-सुन कर सहसा एक विचार मन में उठा है। इन सभी के साथ पर्यटन में निकल पड़ने में क्या बुराई है ?'

" ऐसा कैसे संभव है रे ? सुनता हूं तुम्हारी प्रैक्टिस काफी बढ़ी हुई है इतने दिनों की परिक्रमा से क्या क्षति नहीं होगी ? इसके अलावा बिना सूचना दिये—सहसा दो-तीन मास के लिए निकल पड़ोगे ? घर में स्त्री, पुत्र भी तो रहते हैं। वे तो आशंका में मर जायँगे। नहीं भाई, यह बात उचित नहीं है। देखता हूँ बाल्यकाल की लापरवाही तुम्हारे अन्दर रह ही गई है। संसार की बाधा, संसारी लोगों को माननी ही पड़ती है रे ?"

नहीं रे—ये सब कोई बाधाएँ मेरे साथ नहीं हैं। है तो केवल अपने मन की ही बाधा। देखो व्यवसाय के प्रसार पर मैंने कोई ध्यान नहीं दिया—वह तो

अपने आप ही बढ़ गया। तुम तो जानते ही हो, मेरे पिता तथा पितामह काफी दूरदर्शी थे। अपने खा-पीकर भी मेरे लिए काफी कुछ छोड़ गये हैं। मुझे परिश्रम करने की बहुत आवश्यकता नहीं है। इसके अलावा मैं भी कम बुद्धिमान नहीं हूँ, इसका प्रमाण भी है—अर्थात् विवाह भी अबतक नहीं किया है।'

"कुछ भी हो, इतना कष्ट क्यों सहेगा, बता तो ?"

'नहीं भाई मैंने निश्चय कर ही लिया है। तुम्हारे साथ ही निकल पड़ूँगा एक नवीन प्रेरणा से कौतूहल जग उठा है, शुद्ध मात्र कौतूहल। तुम्हारे धर्म लाइन, की बात इसमें कुछ नहीं है। मात्र अरण्य जीवन का स्वाद एक बार देखूँगा। अपने बाबा महाराज से चटपट अनुमति ले ले भाई।"

गंगाधर हमलोगों के साथ ही पदयात्रा में मस्त था। रास्ता चलने के दुर्वार नशे ने मानो उसे ग्रस लिया है तथा उसके साथ ही नर्मदा के बालुका-मय तट तथा जल—धारा के प्रति भी उसका एक अहैतुकी अनुराग भी बढ़ गया है।

चलते-चलते उस दिन मण्डली के सभी चन्दोनी के विख्यात मन्दिर के सामने उपस्थित हुए। श्वेत संगमरमर का एक विशाल शिवविग्रह वहाँ स्थापित है। इस स्थान के साथ बहुत से सिद्ध-साधकों की स्मृतियां जुड़ी हुई हैं। नर्मदा के घाट पर स्नान करके विल्वपत्र लेकर सभी पूजा-अर्चना समाप्त कर रहे हैं।

अकस्मात् गंगाधर के मन में नजाने क्या एक विचार आया, मुझसे कहा, अच्छा नर्मदा के जल के ऊपर मन में बहुत लोभ क्यों हो रहा है बता तो ? इच्छा हो रही है कि किनारा पकड़कर परिक्रमा न करके जलधार में ही शरीर भिंगाता हुआ चलूँ। आज से रास्ते में जब भी इच्छा होगी बार-बार स्नान करुँगा।'

विज्ञ अभिभावक के रूप से मैंने उसे जबाब दिया, "ऐसा तो करोगे,

मैंने समझा, परन्तु इतने कपड़े तुम्हारे पास कहाँ है ? देख रहा हूँ, कोट-शर्ट तथा ट्राउजर ही तुम्हारे एक मात्र संबल हैं। केवल पथ चलना तथा स्थान परिवर्तन ही तो करना है। यह सब सुखाओगे कब ?"

"उसका डर नहीं है—शरीर पर ही सुखा लूंगा"—गंगाधर ने अनायास ही कह दिया।

"अरे इतनी वीरता दिखाने की आवश्यकता नहीं है। एक दम से इतना सह नहीं पाओगे। मैं तो यही कहूंगा पेन्ड्रा रोड के अपने होटल में वापस चला जा। अभी भी हम लोग बहुत दूर नहीं आये हैं।"

जैसी उसने बात की वैसा ही कार्य भी किया। नित्य रास्ता चलते हुए बीच-बीच में विश्राम के समय गंगाधर नर्मदा की गोद में डुबकी लगा लेता था। उल्लास पूर्वक तैरता, तथा दुष्ट वालक के सदृश अपने साथियों पर जल के छींटे देता। जल से निकल कर पक्षियों की तरह मात्र शरीर को फटकार देता। वस्त्रों का थोड़ा जल मिट्टी में गिर पड़ता, बाकी उसके शरीर पर ही सूखता रहता। केवल धूप और हवा से।

इस स्नान से उसके हृदय में अपूर्व आनन्द था। चेहरे से ही खुशी टपकती थी। हाथ के 'टुबैको पाईप' को उसने अवहेलना पूर्वक जल में ही विसर्जित कर दिया है।

साधुओं की जयध्वनि में अब तक गंगाधर को योगदान देते हुए नहीं देखा था। कब सुयोग पाते ही वह परम उत्साह पूर्वक चिल्ला उठता है—"नर्मदा माई की जय"।

ऐसी ही दशा में काफी दिन बीत चुके हैं, तथा गंगाधर में अद्भुत रूपान्तर हो गया है। गले की नेकटाई पता नहीं कब गायब हो चुकी है। शरीर के ऊपर पड़ा कीमती कोट पता नहीं कब जलधारा में विसर्जित हो गया है—उसे कोई सुध नहीं है। मात्र गंदा 'ट्राउजर' पहने वह महा आनन्द में परिक्रमा में चल रहा है।

खंभात की खाड़ी में पहुँच कर नर्मदा ने अपनी पवित्र जल धारा, सागर में विसर्जित कर दी है। नदी के मुहाने पर स्नान तथा तर्पण समाप्त करके, उस पार जाकर साधुओं की जमात फिर अमरकंटक के उद्गम स्थान की ओर वापस चली।

इतना लम्बा रास्ता इन लोगों के साथ पैदल ही तय करता चला जा रहा हूँ। मन में उत्साह के उद्दीपन में लेशमात्र की भी कमी नहीं है, फिर शरीर कुछ क्लान्त-सा हो गया है।

किन्तु, सभी गंगाधर को देखकर विस्मित हो रहे हैं। धनी घर का लड़का है जिसका सारा जीवन ऐश्वर्य में ही बीता है। संभवतः उसने अपने सारे जीवन में भी इस पद-परिक्रमा जितना रास्ता नहीं तय किया होगा। उसके शरीर तथा मन में एक अपूर्व भाव का उद्दीपन एवं अपूर्व शक्ति दृष्टिगोचर हो रही है। नर्मदा के घाट-घाट पर वह स्नान करता जा रहा है, तथा मुख से अविराम भजन तथा स्तुति गाता चल रहा है। धूसर केश तथा बढ़ी हुई दाढ़ी। शरीर पर मात्र एक ट्राउजर ही सहारा था परन्तु वह भी स्नान करते-करते सड़ कर क्षत-विक्षत हो गया है, जिससे लज्जा निवारण भी संभव नहीं है। उसकी ऐसी अद्भुत अवस्था क्यों ? इसे क्या कहा जायगा ? दिव्य भाव का आवेश, या वायुरोग ? परिक्रमा-रत सभी साधु संतों ने उसका नवीन नामकरण किया है—दिगम्बर जी। वस्त्रों की दृष्टि से—एकदम नंगा !

त्रयम्बक बाबा से कुछ भी कहने का सहास नहीं हुआ। सिद्धनाथ जी को बुलाकर मैंने कहा, "क्यों आपके साधु जमात के साथ के कारण गंगाधर अब पागल ही हो जायगा ?"

"मारूँगा एक चिमटा।"—सिद्धनाथ जी ने कृत्रिम कोप दर्शाते हुए कहा—"अरे पागल तो तुम हो। जैसा आनन्द गंगाधर जी के जीवन में आया है वह किसी को मिलना बड़ा कठिन है। सब हमारी नर्मदा माई की कृपा और लीला है। बड़ा भाग्य है तुम्हारे दोस्त का। पवित्र धारा में स्नान करते-करते ही देवी की कृपा मिल गयी।"

सिद्धनाथ जी का यही सबसे बड़ा दोष है कि वकझक के अलावा अन्य कोई बात कभी नहीं बोलते। उनका कण्ठस्वर त्रयम्बक बाबा के कानों में पड़ा। आगे बढ़ कर उन्होंने हमारी बातचीत सुनी। हँसते हुए उन्होंने कहा, "बाबा सिद्धनाथ की बात अक्षरशः सत्य है। गंगाधर के जीवन में नर्मदा माई की कृपा का अवतरण हो गया है। उसका सारा अन्तर ध्यानावस्थित हो गया है। ऐसा लगता है कि अपने इस मित्र को केन्द्र करके और भी बहुत सी बातें देखोगे। बाबा, सभी परमात्मा की इच्छा है।"

अमरकंटक पहाड़ के शिखर पर वह साधु जमात वापस आ गयी है। उनकी यह पुण्य परिक्रमा पूर्ण हो चुकी है। नर्मदा माई के छोटे तुषार शुभ्र मन्दिर के चतुर्दिक एक आनन्द का पारावार है। उस दिन धर्मप्राण धनकुवेर सेठ वृजलाल का भंडारा मध्याह्न में चल रहा है। पूरी, कचौड़ी, लड्डू, मालपूआ के भोजन से साधुओं की मंडली में सरगर्मी है।

अपराह्न में त्रयम्बक बाबा ने मुझे पास बुलाया। मन्दिर के पिछवाड़े आँवले के वन में उन्होंने डेरा डाल रखा है। पास ही कम्बल पर गंगाधर अर्धबाह्य अवस्था में सोया हुआ है।

उसकी ओर अंगुली से इशारा करते हुए त्रयम्बक बाबा ने कहा, "बाबा, अपने मित्र को साथ लेकर तुम उसे यथा स्थान उसके घर पर पहुँचा आओ। चिन्ता की कोई बात नहीं है, उसे उन्माद नहीं हुआ है। फिर भी, वह बिलकुल ही बदल गया है, यह कथन सत्य है। संसारी मनुष्यों के साथ अब उसका निर्वाह नहीं हो सकेगा। अब वह बिलकुल मौनी है, सदा ध्यान के गंभीर सागर में डूबा रहेगा।"

"ऐसा क्यों बाबा? क्या पुराना गंगाधर हमें वापस नहीं मिल पायेगा? वह अपने आत्मीय, परिजन एवं बन्धु-बान्धवों के बीच क्या अब से वह अपरिचित तथा दुरुह ही बना रहेगा?"

"इसमें ग्लानि की क्या बात है बाबा? मनुष्य को जब अपने स्वरूप का बोध हो जाता है, तब उसके लिए अन्य सारी वस्तुएँ निरर्थक हो जाती हैं। याद रखो गंगाधर दिव्य आनन्द का स्वाद ले रहा है।

अगर यह सत्य है तो तुम्हें उसके लिए दुःख क्यों है ?"—सहज भाव में त्रयम्बक बाबा ने उत्तर दिया।

"फिर उसे इलाहाबाद तक पहुँचा देना होगा ?"

"नहीं, वहाँ का वातावरण इन दिनों उसके लिए सह्य नहीं होगा। उसे गाँव वाले घर पर ही छोड़ आओ।"

"वह तो गाजीपुर अंचल के पौड़ी ग्राम में है। उसी काफी दिनों से परित्यक्त घर में ?"

"हाँ, एकान्त तथा शांत वातावरण न होने से तो इस समय उसका काम नहीं चलेगा। उसे वहीं छोड़ आओ बाबा।"

गंगाधर को साथ लेकर सिद्धनाथ जी तथा मैं पौड़ी ग्राम पहुँचे। पहले से ही तार दे दिया था। स्टेट के मुनीम एवं दूर के एक रिश्तेदार के हवाले कर हम लोग वापस आये, उस समय भी वह अर्धोन्माद की अवस्था में ही था। शरीर पर मात्र ट्राउजर का ही एक हिस्सा था, वह भी कुछ दिन पहले उसने छोड़ दिया था, अब एकदम नंगा ही था।

सिद्धनाथ जी का आदेश था, इसलिए उसीदिन वापस आना पड़ा। साधु वचनों से मैंने अपने बाल्यबन्धु गंगाधर से विदा ली। किन्तु वह स्वयं मौन था। इसके अलावा उसके चेहरे से भी कोई भाव प्रकट नहीं हुआ। निर्मोह जीवन के एक उत्तुंग शिखर पर वह आसीन है। विस्फारित नयन द्वय से वह निर्निमेष देखता ही जा रहा है। उज्ज्वल एवं प्रदीप्त दो नेत्र ही मानों उसके सारे शरीर पर छा गये हैं। किसका प्रकाश उस दृष्टि में आलोकित हो रहा है ? कौन जानता है ?

कलकत्ता वापस आकर, अपने व्यक्तिगत कार्यों में व्यस्त हो गया। इच्छा होने पर भी गंगाधर को देख आने का सुयोग नहीं पा रहा था। फिर भी, उसके घर के मुनीम से बीच-बीच में समाचार लेता रहता था।

गाँव के पैतृक निवास पर जाने के बाद से गंगाधर ने फिर स्थान त्याग नहीं किया। घर के पास स्थित बेल के पेड़ के नीचे ही उसका आसन था। उसी आसन पर बैठ कर सारा दिन तथा रात ध्यान में ही व्यतीत करता था। शीतकाल तथा ग्रीष्म दोनों समय में नंगा ही रहता था। मुँह से कोई शब्द भी नही निकलता था, बिलकुल मौनी। गाँव के नर नारियों में वह दिगम्बर जी के नाम से ही परिचित हो उठा था। स्टेट के मुनीम ने और भी लिखा था, उसके जीवन में विस्मयकर विभूतियों का प्रकाश भी अवतरित हो गया था। उसके आशीर्वाद से बहुत लोगों के कठिन रोगों का भी निवारण हो रहा है। घर के प्रांगण में तथा आस पास आर्त भक्तों की भीड़ का अन्त नही है।

बहुत वर्षों से गंगाधर से साक्षात्कार नहीं हुआ है, परन्तु क्या भूल पा रहा हूँ? उसकी स्मृति मेरे मानस पट पर दिन प्रतिदिन और भी उज्ज्वल होती जा रही है। वह मुख तथा नेत्र, तथा नाटकीय रूपान्तर की स्मृति क्या भूल पाना सहज है?

अकस्मात् कलकत्ता में ही सिद्धनाथ जी का एक जरूरी तार मिला। गौहाटी से भेजा गया था। त्रयम्बक बाबा का एक जरूरी आदेश था—अविलम्ब मुझे गंगाधर के गाजीपुर जिला स्थित गाँव में जाना होगा। वहाँ से उसे लेकर बाबा के अनन्य भक्त हिरण्य सखेल के गौहाटी वाले बंगले पर पहुँचाना होगा।

नंगे भावाविष्ट साधक गंगाधर के शरीर पर चादर ओढ़ाकर किसी तरह उसे साथ लेकर गौहाटी पहुँचा।

बंगले पर पहुँचकर विश्राम या देरी करने का आदेश नहीं था। सिद्धनाथ जी पहले से नदी के घाट पर नाव लेकर प्रस्तुत थे। थोड़ा हँस कर उन्होंने मेरी अभ्यर्थना की।

तरंग विक्षुब्ध ब्रह्मपुत्र नदी के बीच में अपरूप महिमा के साथ स्थित है—शैवतीर्थ उमानन्द भैरव का स्थान। नौका छूटने के कुछ देर बाद उस

स्थान पर जा लगी। त्रयम्बक बाबा अपनी आनन्द घन मूर्त्ति लिए पहले से ही घाट के सामने उपस्थित थे। परम स्नेह से उन्होंने हाथ बढ़ाकर गंगाधर के भावकंपित शरीर को पकड़ लिया।

पहाड़ के ऊपर क्षुदायतन मंदिर है। कुछ कदम आगे जाने के बाद मन्दिर के गर्भ में स्थित एक अंधेरी कोठरी में उतरना पड़ता है। त्रयम्बक बाबा गंगाधर का हाथ पकड़ कर चल रहे हैं। वह भी निर्वाक मंत्र मुग्ध जैसे चला जा रहा है।

गर्भ मन्दिर में प्रवेश करने के साथ-साथ गंगाधर के कण्ठ से एक भीम भैरव हुंकार सुनाई पड़ा। मौनी ने मानो अपनी अनुभूति की भाषा खोज ली है। दोनों हाथ ऊपर की ओर उठाकर वह स्तम्भित खड़ा है। दोनों नेत्र शिव नेत्र जैसे उद्दीप्त हैं तथा सारे शरीर में प्रवल स्पन्दन है। मुंह से 'बम-बम' का गंभीर घोष निकल रहा है। सामने ही एक व्याघ्र-चर्मासन बिछाया हुआ है। त्रयम्बक बाबा ने उसे आसन पर बिठा दिया।

कुछ ही क्षणों में मंदिर के गर्भ में एक परम प्रशांति का वातावरण छा गया। गंगाधर धीरे-धीरे ध्यान के अतल सागर में निमग्न हो गया। उसके चेहरे से दिव्य ज्योति की आभा फूट रही है। मानो समग्र चेतना भास्वर होकर निष्कल दीपशिखा जैसी जल उठी है।

मेरे मनोलोक पर एक के बाद एक विस्मय का धक्का पड़ रहा है। कितने आश्चर्य की बात है कि सारी दैवी घटनाएं मेरे बंधुवर गंगाधर को केन्द्र कर के चल रही हैं।

मंदिर से बाहर आकर मैंने सिद्धनाथ जी की शरण ली। प्रश्न किया, "भाई, मामला क्या है, सारी बातें खोलकर बताइये। अकस्मात यह आपका टेलीग्राम कैसे? क्यों इतनी जल्दीबाजी करके इतने दूर से गंगाधर को ले आया गया? भक्त आकर इस तरह समाधिस्त क्यों हुआ? इसका रहस्य क्या है?"

सिद्धनाथ जी सबलप्राण तथा सदानन्दमय पुरुष हैं। आधा बंगला तथा आधी हिन्दी में उन्होंने अबतक की सारी बातें विस्तार पूर्वक खोलकर बताईं।

पूर्वी हिमालय के नाना अंचलों में घूमकर कुछ दिन हुए, सभी उमानन्द भैरव पहुंचे हैं। यहाँ के मंदिर-गर्भ में घुसते ही त्रयम्बक बाबा ध्यानस्थ हो गये। महापुरुष की दृष्टि के समक्ष एक अलौकिक दृश्यपट का अनावरण हो उठा। उन्होंने अपने गंगाधर की ज्योतिर्मण्डित मूर्ति को देखा। उसकी पीठ दीर्घ जटाओं से लदी हुई हैं, तथा दोनों चक्षुओं से योगसिद्धि की दिव्य द्युति निकल रही है, तथा पूरे स्थान से अस्फुट ओंकार नाद ध्वनित हो रहा है! आकाश में, हवा में तथा ब्रह्मपुत्र के उर्मिकल्लोल में भी निरन्तर गंगाधर के कठ की अपरूप ध्वनि ऊँ ऊँ ऊँ निरन्तर तरंगित हो रही है।

शक्तिधर योगी त्रयम्बक बाबा की दृष्टि निमेष मात्र में गंगाधर के अपने ग्राम स्थित साधन आसन की ओर प्रसारित हो गयी—इस दृष्टि ने उसके वर्तमान एवं पूर्व जन्म के जीवन क्षेत्र का भी भेदन कर लिया।

गंभीर स्वर में महापुरुष ने कहा, "अरे, यहीं इसी स्थान पर—इसी आनन्द भैरव मंदिर में ही गंगाधर की साधना (अतीत की) का अपना स्थान है। यहीं की भूमि में, आकाश तथा वायु में उसने अपने पूर्व जन्म के अष्ट सिद्धियों का ऐश्वर्य रख छोड़ा है। पूर्व जन्म के सिद्ध आसन पर वह सदा ही प्रणव मंत्र का उच्चारण करता था। वही मंत्र, वही स्पन्दन अभी भी यहाँ अविरत तरंगित होता रहा है। अब की शीघ्र ही उसे बुला लो। यहीं बैठ कर उसके इस जीवन के सारे अभीष्ट का लाभ हो।"

कमंडल से थोड़ा जल लेकर घर-घर करते हुए गले को सिंचित करने के बाद सिद्धनाथ जी ने हंसकर कहा, "अरे बाबा, इसलिए ही तो हमने तुमको तार भेजा और इतना काण्ड यहाँ हो रहा है।"

गंगाधर की यह गंभीर ध्यानावस्था एवं समाधि, महासमाधि के रूप में परिणत हो गयी। ब्रह्म रंध्र के पथ से प्राणवायु का उत्क्रमण हो गया।

प्रभात सूर्य के स्वर्णलोक में ब्रह्मपुत्र उस दिन झिलमिला रही थी परन्तु उसके हृदय में यह कैसा विक्षोभ है ? यह किस अशांति का आलोड़न है ? एक के बाद एक तरंग शैलद्वीप उमानन्द भैरव के कठिन शिलास्तूप पर उन्मतता की अवस्था में बार-बार टकरा रही हैं।

नीरव तथा नतशिर कई आदमियों ने मिलकर गंगाधर की देह को नीचे उतार लिया है। उसे पुष्प तथा चंदन से सजाकर नदी की धार में विसर्जित कर दिया है।

फेनिल जलधारा के आवर्त में एक मुहूर्त में ही न जाने शव देह कहाँ अदृश्य हो गया।

मेरे दोनों नेत्र अश्रु सजल हो उठे हैं। मानस में एक मर्मान्तक पीड़ा उमड़ आयी है। तथा एक के बाद एक प्रश्न मन में उठ रहे हैं।

गंभीर रात्रि में निःशब्द धीरे-धीरे त्रयम्बक बाबा के पास आकर बैठ गया। आशादण्ड का सहारा लेकर महापुरुष बैठे हुए हैं। वे तन्द्राच्छन्न हैं या ध्यानाविष्ठ समझ नहीं पाया। मेरी ओर न देखते हुए धीमे स्वर में उन्होंने कहा, "बैठो। कोई प्रश्न है ?"

जल्दी से पास बैठते हुए मैंने कहा, "जी, है।"

कुछ समय नीरवता में ही कट गया। बात आगे बढ़ाते हुए मैंने कहा, गंगाधर का मामला जितना ही दुखान्त हैं वैसे ही रहस्यमय है।"

नहीं बाबा, उसका यह तिरोधान विषाद का विषय तो नहीं है, वरन् महा आनन्द का हैं।"

चौंक कर प्रश्न सूचक दृष्टि से मैंने उनकी ओर देखा।

त्रयम्बक बाबा कहते रहे, 'थोड़ा शांतिपूर्वक विचार करो, वित्तवान बैरिस्टर का जीवन यापन करते हुए तथा अपने को सदा भोग विलास में डुबाये रखने से क्या उसका सचमुच कोई लाभ होता ? आत्मिक

जीवन की पूर्णता तो नहीं घटती। यही होता कि यह जन्म एक पालतू विलायती कुत्ते जैसे आराम से बिताता। यह क्या काम्य है ?"

उतर में मैंने संक्षेप में कहा, "जी, ऐसा तो नहीं ही है।"

"मानव साधना का श्रेष्ठ फल, आत्मज्ञान लाभ तथा ब्रह्मानन्द की प्राप्ति होती है। इस फल की प्राप्ति न होने पर मानव जीवन वन्ध्या एवं निष्फला होकर ही रहेगी। बाबा, जीव को शिवत्व प्राप्त करना होगा— ब्रह्मज्ञान का अधिकारी होना होगा। यह परम सौभाग्य प्रत्येक मनुष्य के भाग्य लेख में लिखा है। जन्म जन्मान्तर के त्याग-तितिक्षा एवं तपस्या की भित्ति पर वह इस भाग्य लेख को रूपान्तरित करने के सतत प्रयास में है। गंगाधर के जीवन में इसी साफल्य का प्रकटन हुआ था। इसी कारण परमानन्द पूर्वक ब्रह्म सागर में विलीन हो गया। फिर इसमें दुःख का क्या प्रयोजन है, बताओ तो बाबा ? विगत जीवन के साधना से जो कुछ प्राप्ति हुई थी, इस बार वह पूर्ण हो उठा।"

मैंने जिज्ञासा की, "एक बात बार-बार मन में उठती है! नर्मदा के जल में किस अलौकिक शक्ति का बीज है, यह तो मैं नहीं जानता, परन्तु यह बात तो सत्य ही है कि उसी का पवित्र स्पर्श पाकर ही गंगाधर का यह अद्भुत रूपान्तर हुआ था। सोच रहा हूँ, यह अद्भुत काण्ड किस तरह संभव हुआ ?"

"असल बात क्या है, जानते हो, बाबा, मनुष्य की मुक्ति प्रधानतः उसके प्रारब्ध के खण्डन के ऊपर निर्भर करती है। पुण्य लग्न एवं पुण्य स्थान का प्रभाव भी कुछ कम नहीं है। गंगाधर के सम्बन्ध में देखा गया, उसका प्रारब्ध शेष हो आया था। पुण्य सलिला नर्मदा के स्नान तथा तर्पण से उसके जीवन में मानो एक सहारा मात्र मिल गया। तामसी निद्रा शेष हो गयी।

उसका जीवन एक आत्मिक ज्योति से उद्भासित हो गया। उसके बाद उसका सारा अभीष्ट सिद्ध हो गया।"

मैंने प्रश्न किया; "फिर क्या समझूँ इस तीर्थ के स्पर्श से ही गंगाधर के अन्दर यह आश्चर्य जनक रूपान्तर हुआ ?"

"बाबा, यह बात तो माननी ही पड़ेगी कि मनुष्य के अध्यात्म-रूपान्तर का सब से बड़ा कारण उसके पूर्व जन्म की साधना और संस्कार तथा इस जन्म की गुरु कृपा है। किन्तु यह संस्कार और गुरुकृपा एक विशेष लग्न तथा एक विशेष भूमि पर ही सक्रिय हो उठता है। अमरकंटक तथा नर्मदा तट पर उस दिन इसे प्रत्यक्ष देखा गया।"

"अबतक यही सोचता था, कि तीर्थ माहात्म्य शुद्ध भावुक भक्तों की कल्पना मात्र है। देवस्थान या कोई भूमि विशेष ऐसा जाग्रत हो सकता है या ऐसे इन्द्रजाल की सृष्टि कर सकता है, ऐसा मैंने कभी विश्वास नहीं किया था। अब भी यह आश्चर्य जनक ही लग रहा है, कि किस तरह यह संभव होता हैं।"

आशादण्ड को आसन पर रख कर मेरी ओर उन्मुख होकर त्र्यम्बक बाबा बैठ गये। शांत स्वर में उन्होंने कहा, "इस में आश्चर्य की कोई बात नहीं है। तीर्थभूमि मात्र भूमि नहीं है, वह तो जाग्रत तपस्या लोक है। युग युगान्तर से बहुत से सिद्ध-साधक इस भूमि पर मंत्रों का उच्चारण करते रहे हैं। इससे प्रत्येक धूलिकण, आकाश तथा वायु चैतन्यमय हो उठता है। ब्रह्मज्ञ पुरुषों का स्पन्दन, तथा उनकी तपस्या द्वारा प्रदीप्त ताप वहाँ बराबर रहता हैं। जो स्थान स्वयं ही चैतन्यमय है, वह मुक्तिकामी मनुष्यों का चैतन्य क्यों नहीं जगा सकेगा ? उन्मुक्त मन से एवं श्रद्धा पूर्वक मुमुक्षु होकर वहाँ तपस्या पर बैठो। स्वयं अनुभव करोगे कि सारी सत्ता पर दिव्य आनन्द की तरंग खेलती मिलेगी

मैंने प्रश्न किया, "मंत्रों की वह शक्ति, वह गूंज, तपस्या का वह स्पन्दन तथा ताप किस तरह युग-युग से अव्याहत रहता है ?"

"क्यों, क्या तुम्हारे आधुनिक पदार्थ विज्ञान में क्या यह नहीं बताया कि सृष्टि के किसी भी उपकरण का पूर्णतया लय कभी नहीं होता ? वस्तु का रूपान्तर होता है, सूक्ष्म से सूक्ष्मतर हो जाता है, परन्तु उसका अस्तित्व तो रह ही जाता है।"

"जी हाँ, यह बात तो ठीक है।"

"तपस्या का ताप भी इसी प्रकार चिर अक्षय रहता है। इस देश के तीर्थ तथा सिद्ध पीठों में यह ताप चिर विराजमान है। तुम्हारे भीतर की प्रस्तुति ठीक होने पर इसका प्रभाव सक्रिय हो उठता है। तुमने स्वयं भी तो नर्मदा माई के पीठस्थान, अमरकंटक का प्रभाव देख लिया। गंगाधर के जीवन में चैतन्य के प्रकाश का अवतरण हो गया—जैव जीवन से निकल कर वह एक मुहूर्त में शैव जीवन के द्वार पर आ उपस्थित हुआ। यहाँ आकर भी तुमने प्रत्यक्ष देखा है किस तरह गंगाधर ने अपने पूर्व जीवन के साधना के सूक्ष्म स्पन्दन को ढूँढ़ लिया—इतनी लम्बी अवधि के बाद। उमानन्द भैरव के जाग्रत पीठ पर उसकी पूर्व संचित साधना, उसके लिए ही, उसकी अपेक्षा में थी। यहाँ पहुँचते ही गंगाधर को अपना ताप एवं स्पन्दन पहचान लेने में एक मुहूर्त का भी विलम्ब नहीं हुआ। उसके भीतर ही डूब कर उसने अपनी परम मुक्ति का वह साधन कर लिया।"

सहज भाव से त्रयम्बक बाबा ने सूक्ष्म लोक के इस अपूर्व तथ्य की प्रस्तुति की और उसके बाद बिलकुल मौन हो गये।

पहाड़ पर तथा नदी के तट पर स्थित वन में अंधकार फैल गया है। भीमभैरव गर्जन के साथ उत्ताल ब्रह्मपुत्र इस शैलपीठ पर बार-बार थपड़े दे रही है। सिर के ऊपर का आकाश मानो एक सीमाहीन अतलस्पर्शी पारावार बना हुआ।

नीरवता भंग करते हुए मैंने निवेदन किया, "आपके मुख से जन्मान्तर के संस्कार, गुरुकृपा तथा सिद्धपीठ की महिमा सुनकर आज मैंने एक नवीन दिगंत का संधान पा लिया है। सोच रहा हूँ, अब देरी न करके परिव्राजन के लिए बाहर निकल पड़ूँ।"

"अभी नहीं। दो वर्ष बाद ही हरिद्वार में पूर्ण कुम्भ का पर्व आ रहा है। उस अवधि तक प्रतीक्षा करो।"

साईं बाबा

सोलह वर्ष की उम्र का एक तरुण फकीर। वस्त्र के नाम पर, धूल में सना, फटा चिथड़ा और सिर को ढंकनेवाली एक छोटी-सी चादर। फिर भी, चेहरे पर अपूर्व प्रसन्नता की रौनक फैल रही है। दोनों आँखें स्वप्नमयी, भाव-विभोर, जैसे किसी रहस्य की गंभीरता में डूबी जा रही है। भीड़ से दूर-दूर भागते रहनेवाले, ये फकीर निर्जन एकान्त में बैठे रहते हैं।

अहमदाबाद अंचल के शिरडी गाँव में इनको आये अभी बहुत दिन नहीं हुए। यहाँ वे कहाँ से आये—इसका पता किसी को नहीं है, कोई जानना भी नहीं चाहता। घूमन्तू, घर-निकाले पागल से संपर्क बढ़ाने से किसी को लाभ ही क्या ?

गाँव का एक हिस्सा जंगली पेड़ों पर और झाड़ियों से भरा है। इस अरण्य-खण्ड के कोने में नीम का एक पुराना विशाल वृक्ष खड़ा है। इसी बूढ़े वृक्ष के विशाल तने के खोखले भाग में—कोटर में, फकीर साहब एक दिन, अचानक बस गये।

दिन भर जहाँ-तहाँ, स्वेच्छानुसार, घूमते रहते हैं। भीख माँगने का स्वभाव तो इन्हें मिला ही नहीं। हाँ, बिना माँगे भी रोटी के एकाध टुकड़े मिल ही जाते हैं। फकीर के पेट के लिए इतना ही बहुत है। दिन बीत जाने पर वे अपने कोटर—निवास में, साधन भजन करने के लिए लौट आते हैं।

इस तरह वर्ष-पर-वर्ष बीतते गये और तरुण फकीर के शरीर और चेहरे पर उम्र के चिह्न पड़ते रहे। इसी क्रम में एक और परिवर्तन हुआ :

फकीर ने अब नीम को छोड़कर मस्जिद में अपना आसन डाल लिया है। इस लम्बे अर्से में गाँव के लोगों से घनिष्ठता भले ही न हुई, पर जान-पहचान तो हो ही जाती है।

अचानक सन् १८७२ ई० के एक विशेष दिन, इस नवीन साधक का एक नवीनतर रूप लोगों की दृष्टि में प्रकट हो गया।

मस्जिद में और भी कई विरागी, संसार-त्यागी पुरुष आकर रहने लगे हैं। गाँव के श्रद्धालुओं और आलसी फक्कड़ों की जमात से यह बात छिपी नहीं रही। धीरे-धीरे उनका दल मस्जिद के प्रांगण में जुड़ने लगा। धर्मकथा और ग्रामकथा की चौकड़ी चलती और पहर-के-पहर अनजाने ही बीत जाते। फिर गाँजे और तम्बाकू की दौड़ भी चलने लगी और उससे छुट्टी पाकर कभी-कभी, आधी रात गये गाँववाले अपने घर लौट पाते।

उस रात को जुड़ी मण्डली की भी यही हालत होनेवाली थी। फकीर को घेर कर लोक-मण्डली जुड़ती ही जा रही थी।

तरुण साधक के चेहरे पर आज एक अपूर्व भावमयता थी, आँखों में एक अनोखी रौनक थी। सभी को साथ लगाये वे धर्मकथा में मस्त थे। एक-से-एक सिद्ध की एक-से-एक बढ़कर चमत्कार—कथा लोग सुनते-सुनाते जा रहे हैं। सुननेवालों और सुनानेवालों में आज जैसे कोई थकते ही नहीं। सच तो यह है कि आज किसी को थकने का होश ही नहीं रह गया है।

धीरे-धीरे रात भींग आई। कमरे के कोने में एक पुराना चिराग जल रहा है, पर उसमें, अब और जलने के लिए तेल नहीं रह गया है। चिराग की रोशनी फकफका कर कुम्हलाती जा रही है।

फकीर के भीतर का दरवाजा, पता नहीं, आज क्योंकर खुल गया है। लोक-मण्डली के बीच चलनेवाली धर्मचर्चा स्थगित की जाय, ऐसा वह अभी नहीं चाहते। आसन से उठकर, देखने से पता चला कि मिट्टी का तेल चुक गया

है। जाने भी दीजये, कमरे में पानी तो हई है। लोटा उठाकर चिराग में उन्होंने भरपूर जल उड़ेल दिया। धर्मचर्चा थमते-थमते, फिर पूरे वेग में चल पड़ी। पर सुननेवालों का ध्यान पानी से जलनेवाले दिये ने अपनी ओर खींच ही लिया।

उस रात जब, दिया तेल के अभाव में, बुझने लगता, फकीर के लोटे के जल से उसके अभाव की पूर्ति हो जाती और कुम्हिलाती हुई रोशनी उज्जवल से उज्ज्वलतर होकर फैल जाती।

इस प्रकार पूरी रात बीत गई।

उस रात की वह अनहोनी घटना ग्रामवासियों को आश्चर्यित नहीं करती तो कैसे ? पता नहीं किस अलौकिक शक्ति से, जल तेल की तरह दिये में जलने लगता है। इस नये साधक की तो विचित्र सिद्धि है !

दूसरे दिन शिरडी गाँव में जहाँ-तहाँ यही चर्चा सुनाई पड़ने लगी। लोग अब उस फकीर को बड़ी ऊँची निगाह से देखने लगे। श्रद्धा और संभ्रम के साथ घर-घर में उनकी दिव्य शक्ति की कथा कही सुनी जाने लगी।

पता नहीं इस तरुण साधक ने कौन-सी साधना की है, यह भी पता नहीं कि उसका मुरसेद या गुरु कौन है। कोई नहीं जानता कि पानी से चिराग जलानेवाला यह महापुरुष साधना की किस सतह पर पहुँचा हुआ है। किन्तु उसकी अलौकिक शक्ति की कथा, साधना की सफलता की चमत्कारी कथा पर जन साधारण का सहज विश्वास हो गया है। इस फकीर का वहाँ आ जाना उनलोगों के लिए बहुत बड़ा सहारा बन गया है। दुःख-दुर्भाग्य के आ जाने पर वहाँ के नरनारीगण उसी के पास आकर आँसू बहाते हैं और उसके आश्वासन वचन से सन्तोष और शान्ति प्राप्त करते हैं। संकट से त्राण पाने के लिए उसी के पास प्रार्थना की जाती है।

तरुण साधक के पास एक धुनी सदा ही जलती रहती है। रोग, शोक, आन्तरिक व्यथा या आँसू के साथ, वहाँ आश्रय पाने के लिए जो कोई भी

जाता है, उसे धुनी से निकाल कर एक मुट्ठी राख दे दी जाती है। आर्त और दुःखियों की पीड़ा को हरने वाली रामवाण औषधि......मुष्टि योग है, बस यही एक मुट्ठी भस्म। भाग्यवान् ही इसे पा सकते हैं।

दीनों के आश्रयदाता, दुखियों के त्राता, यही तरुण फकीर धीरे-धीरे, जनसाधारण के बीच साईं बाबा के नाम से प्रसिद्ध हो जाते हैं। केवल शिरडी नाम की इस नगण्य गंवई में ही नहीं, संपूर्ण महाराष्ट्र में इस शक्तिधर महापुरुष का यश फैल जाता है और अन्त में समग्र दक्षिण भारत में उनकी अलौकिक शक्ति की कथा प्रचलित हो जाती है। हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, पारसी, समस्त धार्मिक मतों की अनुयायी जनमण्डली, इस महापुरुष की ओर आकृष्ट हो गई है।

इनके भक्त के रूप में एकत्र हुए, नाना साहेब चन्दोरकर, चिटनीस, कीर्त्तनकार दास-गनु जैसे विख्यात साधक। भगवान् बाल गंगाधर तिलक से लेकर देश के राजे-रजवाड़े और अंग्रेजी सरकार के यूरोपीय शासक गण तक साईं बाबा के दर्शनार्थी बनकर वहाँ उपस्थित होते।

नीम की वृक्ष-कन्दरा में निवास करनेवाले उस फकीर के जीवन-रंगमंच में अचानक पट-परिवर्तन हो आया। अब उसमें नये अभिनेयत्व का आरंभ हुआ है।

फटे कपड़ेवाले भिक्षुक फकीर को ढूँढ़ पाना अब बड़ा ही कठिन हो गया है। अब वे हो गये हैं सर्वजन वरेण्य, सभी के परम आश्रय—साईं बाबा। राजा की भाँति वे दरबार लगाकर बैठ रहते हैं। गरीबी से भरे इस दरबार में दूर-दूर से सहस्रों स्त्री पुरुषों की मण्डली नित्य ही आती है। दक्षिणा, नजराना, और भेंट का स्तूप साईं बाबा के सामने सुबह से शाम तक लगा ही रहता है।

विशेष उत्सव के दिन तो जुलूस और जशन की और भी कमी नहीं रहती। समारोह के साथ साईं बाबा को चाँदी की पालकी पर

बिठाया जाता है और जड़ीदार झालड़ से युक्त छत्र और चवँर लेकर भक्तों का दल साथ-साथ चलता है। किन्तु इस ऐश्वर्य और आडम्बर के भीतर, साईं बाबा के त्याग-तितिक्षामय जीवन का पूर्वक्रम जारी है। वैराग्य की दीपशिखा के अकम्पित आलोक में शक्तिमान् सिद्धपुरुष एकान्त भाव से इस समय भी सहज समाधि में डूबे रहते हैं।

प्रतिदिन, भोर होते ही उनके निवास-कक्ष का दरवाजा दर्शनार्थियों के लिए खोल दिया जाता है। अकिंचन फकीर के अनुरूप ही उनकी नित्यचर्या है। खोजने पर उनके पास में ताँबे का एक धेला भी नहीं मिलेगा। फिर भी सामने, गलीचे पर दर्शनार्थियों द्वारा चढ़ाई गई भेंट की मुद्राराशि और दुर्लभ खाद्यपदार्थ का अम्बार दिखाई देता है। बाबा समुपस्थित जन-मण्डली के बीच इस चढ़ावे के एक-एक कण को प्रत्येक दिन बँटवा देते हैं।

दिन ढलने पर लँगोट मात्र पहने, बाबा आहार की खोज में मस्जिद से प्रति दिन एक बार के लिए बाहर, गाँव में निकलते हैं। किसी गृहस्थ के दरवाजे पर जाकर सूखी रोटी के दो टुकड़े वे माँग लाते हैं। यही उनके भोजन का एकमात्र साधन है—भिक्षा से प्राप्त रूखा-सूखा अन्न।

दिन-प्रति-दिन सैकड़ों दर्शनार्थी इस मामूली से गाँव में क्योंकर आया करते हैं? इस पागल साधक के पास भीड़ लगाने से उन्हें क्या लाभ? क्या कारण है कि इस नग्नप्राय फकीर के सामने दर्शन मात्र से, विद्या-बुद्धि, पदमर्यादा और धन-ऐश्वर्य की गरिमा भूमि पर लोटने लगती है?

कारण इतना ही है कि लोगों को पता चल गया है कि यह रहस्यमय फकीर जैसे कृपालु हैं, वैसे ही महान् शक्तिधर हैं।

कमरे में एक तरफ साईं बाबा उँगठकर बैठे रहते हैं। सामने एक पुराना गलीचा बिछा दिया जाता है। इस गलीचे पर बैठ जाने के

साथ ही दर्शनार्थी के अन्तर का आवेदन बाबा को ज्ञात हो जाता है। वे उसके दुःख, शोक और आकांक्षा को जैसे जड़ से ही छिन्न कर देते हैं।

उनकी सतत् जाग्रत दृष्टि अलौकिक और सर्वगामिनी है। पल भर में वह दर्शनार्थी के अन्तर में दूर तक गहरे पैठ जाती है। जीवन के भले-छिपे रहस्य को वे अन्तरतम से निकालकर क्षण भर में बाहर ला देते हैं।

चकित होकर लोग सोचते हैं इस अन्तर्यामी महापुरुष के लिए तो कुछ भी अज्ञात नहीं है!

केवल दूर तक जानेवाली निगाह ही नहीं, इनके पास विश्वव्यापिनी शक्ति भी है। शरण में आये हुए प्रार्थीगण आँखों में आंसू भरकर अपनी कातर प्रार्थना निवेदित करते हैं और बाबा के हृदय में करुणा का ज्वार उमड़ आता है; उनके मुख से आशीर्वाणी निकल पड़ती है। इसके साथ ही प्रार्थी की प्रार्थना पूर्ण हो जाती है। असम्भव संभव हो जाता है!

बाबा का आशीर्वचन स्थान, काल, पात्र का विवेचन नहीं करता; उसे धर्म, समाज, संप्रदाय की भी अपेक्षा नहीं रहती। शक्तिमान् सिद्ध पुरुष की कृपा की मंगलधारा दिग्-विदिग् को सींचती स्वभावतः बह चलती है।

करुणा की इस बाढ—शक्ति के इस गतिवेग को कोई अस्वीकार नहीं कर पाता। आगन्तुक व्यक्ति की विद्वता और मनीषा की विशिष्टता मुहूर्त मात्र में उसे जवाब दे देती है। पागल फकीर के आगे सभी सामान्य रूप से आत्मसमर्पण कर कृतार्थता पाते हैं।

साईं बाबा के नाम और माहात्म्य के प्रचार के पीछे पागल हो उठनेवालों में अग्रणी थे नारायण गोविन्द चन्दोरकर। उन्हें लोग नाना साहब के नाम से पुकारते थे।

एक सम्भ्रान्त और धर्मनिष्ठ महाराष्ट्रीय ब्राह्मण वंश में नाना साहब का जन्म हुआ था। वे आरम्भ से ही कर्मठ और मेधावी थे।

सरकारी नौकरी में लगे रहकर वे शनैः शनैः राजस्व विभाग के ऊँचे ओहदे पर जा पहुंचे थे।

सन् १८८७ ईस्वी की घटना है। उस दिन नाना साहेब किसी आवश्यक सरकारी कार्य से कोपार नामक गाँव में आकर ठहर गये थे। शिरडी के किसी कर्मचारी ने सहसा उनसे निवेदन किया—'हुजूर, हमारे गाँव के साई बाबा ने आपको याद किया है ? उन्होंने कहा है कि एकबार जाकर उनसे मिल आवें।'

नाना साहब को इस बात पर हँसी आ गई। उन्होंने मुँह बनाकर कहा, 'उनका नाम तो अब तक कभी सुना नहीं, भेंट भी नहीं हुई, फिर वे मुझे किस तरह बुला बैठे ? मुझसे उनका मतलब क्या है ? मुझे उनसे कोई काम नहीं है, यह कह देना क्या आवश्यक है ?'

कहना न होगा कि जो व्यक्ति साई बाबा का सन्देश लेकर आया था, चुपचाप बैरंग वापस लौट गया।

इसके बाद फिर दो बार साई बाबा की बुलाहट आई। अन्त में तीसरी बुलाहट के बाद, नाना साहब को शिरडी जाना ही पड़ा।

प्रणाम करने के बाद उन्होंने फकीर से पूछा, 'बाबा मुझे बुलाने के लिए बड़ी ताकीद की गई। कृपया बताया जाय कि मैं कौन-सी सेवा करूँ।'

उत्तर मिला 'नाना' इस पृथ्वी पर अनगिनत लोग रहते हैं। पर उनमें से किसी को मैं इस प्रकार कहाँ बुलाया करता हूँ ? तुम्हारे साथ मेरे जन्म-जन्मान्तर का सम्बन्ध है। यह सत्य है कि इस प्रसंग में तुम्हारे लिए तथ्य को जान सकना सरल नहीं है, किन्तु मुझे तो सब कुछ मालूम है। समय मिल जाने पर बीच-बीच में मिलते रहना।'

नाना साहब के मन को झटका सा लगा। आधुनिक शिक्षाप्रणाली के सहारे वे शिक्षित हुए थे. सरकारी नौकरी की दृष्टि से उनके ओहदे की इज्जत भी बड़ी ही थी। किन्तु इस फकीर ने तो उनके साथ बड़ा विलक्षण

वर्ताव किया है। यह तो ऐसा ही रहा, जैसे इनसे उनको कभी का अत्यन्त पुराना परिचय रहा हो।

तो, इन दोनों का नाता पिछले जन्म का ही है ? यह कैसी अनोखी बात है ? फकीर की यह बात उन्हें कई दिनों तक रह रहकर याद आती रही। फिर साईं बाबा की स्नेहोज्ज्वल मूर्त्ति, प्रसन्न, मधुर दृष्टि नाना साहब को खींचकर बार-बार शिरडी ले जाती।

शनैः शनैः साईं बाबा से उनका परिचय घनिष्टतर होता गया। अपने आध्यात्मिक पथ-प्रदर्शक और अभिभावक के रूप में उन्होंने साईं बाबा का वरण कर लिया।

कुछ दिन बीत जाने के बाद की घटना है। नाना साहब किसी साथी को संग में लेकर कार्य विशेष के कारण हरिश्चन्द्र पहाड़ को गये। गर्मी के दिन थे। सूखे पथरीले पहाड़ पर पानी मिलना बड़ा ही कठिन था। दोपहर की तेज धूप की भीषण ऊमस और भी प्रचण्ड हो चली थी। ऐसा लगता था कि प्यास के मारे कलेजा फट जायगा। थके-मांदे नाना साहब के लिए अब एक डेग चलना भी कठिन था। साथी ने जल के लिए कोई कम दौड़-धूप न की। पर पीने का पानी मिलना संभव नहीं हुआ।

हारकर दोनों बैठे रहे। इसी समय वहाँ एक पहाड़ी भील पहुँचा। नाना साहब ने आकुल होकर कहा —'भाई, प्यास के मारे जान जा रही है। क्या कहीं पानी मिल सकता है ?'

भील मुसकरा कर बोला—'बस, इसी पानी के बिना मरे जा रहे हो ? भाई वह तो यहीं पर है। जहाँ बैठे हो वहाँ का पत्थर हटाकर देखो न, तले में पानी-ही-पानी रहता है।'

दोनों ने मिलकर पत्थर के टुकड़े को अलग ढकेल दिया। सच ही तो, कितना निर्मल जल है ? दोनों ने चकित होकर देखा—भील ने ठीक ही कहा था। इस पत्थर के तले होकर निर्मल जल की एक पतली

धारा झल-झलाती बह रही है। अंजुली में भरकर नानासाहब ने इच्छा भर पानी पिया, तब कहीं जान में जान आई।

इस घटना के कुछ ही दिन बाद वे शिरडी आये। उन्हें देखते ही, कुछ-कुछ मुस्कराते हुए साईबाबा ने पूछा—'क्यों जी नाना उस दिन पहाड़ पर पानी मिल गया था न? देखो, भगवान् की कृपा से पत्थर के तले में भी पानी मिल जाता है और यों कुआं खोदने पर भी नहीं निकलता है।'

पास में बैठे भक्तों ने नानासाहब को बतलाया कि कई दिन पहले, दोपहर के समय, साई बाबा आप-ही-आप बोल रहे थे—'क्या किया जाय? पानी के बिना नाना की जान जा रही है?'

पर उस दिन का प्रलाप, उस समय, भक्तों की समझ में नहीं आया। वे एक दूसरे का मुँह ताक कर रह गये थे। नानासाहब के मुँह से पूरा वृतान्त सुन लेने के बाद ही उनकी समझ में उस दिन की पूरी बात आई। बाबा का उस दिन का कथन निरा प्रलाप नहीं था। वे तो हरिश्चन्द्र पहाड़ पर प्यास से विकल नाना साहब के लिए जल की, सचमुच, व्यवस्था कर रहे थे!

खास-खास भक्तों को साई बाबा आप ही अपने पास बुला लेते। संसार और परमार्थ—दोनों ही दृष्टि से उनके कल्याण का दायित्व वे अपने ऊपर ले लेते थे। धीरे-धीरे उन भक्त-साधकों का जीवन बाबा के ही प्रति केन्द्रित हो जाता। ऐकान्तिक निष्ठा और आत्म-समर्पण के ही सहारे उनका आध्यात्मिक रूपान्तर सहज, स्वाभाविक रूप से सम्पादित होने लगता।

साई बाबा की करुण-लीला की यह धारा कभी तो लौकिक स्नेह और सद्भाव के पथ से होकर प्रवाहित होती और कभी अलौकिक घटना या अतीन्द्रिय साक्षात्कार के रूप में अवतीर्ण होती।

उत्तर भारत के एक जज साहब के जीवन में उनकी करुणा एक दिन अलौकिक साक्षात्कार का ही रूप लेकर प्रकट हुई। जज

महाशय बड़े ही धर्म परायण थे। उनके पास नारायण की एक सुन्दर मूर्त्ति थी। लगातार बारह वर्ष तक उन्होंने उस मूर्त्ति की पूजा इष्टदेव के रूप में की थी। वे प्रतिदिन उसी मूर्त्ति का ध्यान करते।

एक दिन, सर्वथा अचानक, उनके जीवन में एक अद्भुत अतीन्द्रिय अनुभव घटित हुआ। उस विलक्षण साक्षात्कार के रूप में उनके हृदय में साईबाबा उसी दिन से प्रविष्ट हो गये।

जज साहब कहते हैं—'उस दिन मैं अपने बिछावन पर सो रहा था। सहसा मुझे अलौकिक रीति से साक्षात्कार होने लगा! मुझे ऐसा लगा कि मेरी देह मुझसे छूटकर अलग हो गई है और मेरे समक्ष भगवान नारायण खड़े हैं! कोई घण्टे भर मैं साक्षात्कार की इसी स्थित में टिका रहा। इसके पश्चात् मैंने देखा कि नारायण की मूर्त्ति के पार्श्व में एक महापुरुष आकर खड़े हो गये हैं। इस महापुरुष को इसके पहले मैंने कभी नहीं देखा था। उनकी ओर ऊँगली से संकेत करते हुए भगवान् नारायण ने कहा—'ये हैं शिरडी के साईं बाबा, तुम्हारे आध्यात्मिक जीवन को परिचालित करनेवाले। इन्हीं के निकट तुम आश्रय ग्रहण करो।'

"इसके बाद एक और अपूर्व दृश्य प्रकट हुआ। मैं शून्यमार्ग से होकर बहा जा रहा हूँ, ऐसा मुझे उस समय प्रतीत होने लगा। कोई शक्ति थी जो मुझे खींचकर ले गई शिरडी की मस्जिद में—साईं बाबा के पास। देखा, सामने में, दोनों पाँव फैलाये, साइबाबा बैठे हैं। मुझे उन्होंने कहा—'क्यों जी, मेरा दर्शन करने आये हो? ठीक ही तो है। मैं तो तुम्हारा देनदार हूँ। पिछले जीवन का पावना रह गया था, उसे इस जन्म में सधा देना है!"

इस घटना के कुछ ही दिन बाद जज साहब ने शिरडी जाकर, बाबा का दर्शन् अपने चर्म-चक्षुओं से किया। अब उन्हें कोई सन्देह ही नहीं रहा कि उस दिन की भावावस्था में दिखाई देनेवाले महापुरुष,

वस्तुत: यही साई बाबा थे। परम भक्ति भाव के साथ उन्होंने बाबा के चरणों को साष्टांग प्रणति निवेदित की।

पर उस महापुरुष ने कठोर स्वर में कहा—'यह आपने क्या किया ? मनुष्य के पाँव में इस तरह मत्था टेकना किस काम का ? मनुष्य मनुष्य का भजन करके क्या पायगा भला ?'

दर्शनार्थी भक्त का अन्तर काँप उठा। यह फकीर तो अन्तर्यामी है ! इनसे कोई बात छिपाई ही नहीं जा सकती। जज साहब को जहाँ भक्ति और सद्बुद्धि मिली थी, वहीं आधुनिक शिक्षा से उत्पन्न नई समझदारी भी थी। अत: वे ऐसा मान बैठे थे कि किसी मनुष्य का अर्चना या प्रणाम करना व्यर्थ है। क्या उनकी उसी मान्यता पर कटाक्ष करते हुए आज साई बाबा ने उपर्युक्त बातें कहीं ?

दर्शनार्थी भक्त अब सोचने लगे। ठीक ही है, उस तरह का भाव रखते हुए साई बाबा का दर्शन करने आना उचित नहीं हुआ। उस भाव को जड़-मूल से मिटाकर आना उचित होता है।

मध्याह्नकाल बीत चला। तब तक मस्जिद सूनी हो चुकी थी। जज साहब कमरे के एक कोने में माथा झुकाये बैठे हैं। बाबा के आमने-सामने होने की उन्हें हिम्मत नहीं हो रही है। साधु-सन्त के झक्की स्वभाव का क्या ठिकाना ? कौन जानता है, क्या कह बैठे ?

पर एकान्त देखकर, अब बाबा ने ही उन्हें बुला लिया। छाती से लगाते हुए, स्नेहपूर्वक उन्होंने कहा—'तुम मेरी सन्तान हो न ? हाँ, मेरे स्नेह के भाजन हो। घर के भीतर जब लोग ठसाठस भरे रहते हैं, तब बाप-बेटे में बात हो तो कैसे ? इसलिए, उस समय मैंने जान-बूझ कर अपने बच्चे को दूर हटा दिया था। आओ। अब मेरे पास बैठो।'

बाबा का यह कथन सुनकर भक्त की आँखों मे आनन्द के आँसू उमरकर बहने लगे।

ऐसे लोग सैकड़ों की तायदाद में हैं जिन्होंने साई बाबा की कृपा से आरोग्य लाभ किया था जिनकी जान साई बाबा ने बचाई। इसी वाक्य-सिद्ध महापुरुष

के आशीर्वाद से अनेक सन्तान हीन दम्पतियों के घर में पुत्रोत्सव का आनन्द छा गया।

बाँझ स्त्रियाँ दूर-दूर से आकर बाबा के चरणों को आँसुओं से धोतीं। कृपालु साईबाबा के होठों पर प्रसन्नता की मीठी मुस्कान उस समय भी, दिखाई देती रहती। लीला-प्रिय बाबा उनमें से किसी-किसी के आँचल में चुपचाप नारियल का एक फल डाल देते। यह सब खेल-कूद के विनोद-भाव में ही हो जाता। पर यह नारियल है साईं बाबा के कृपामय आशीर्वाद का प्रतीक। इसके बाद उस वन्ध्या नारी का कष्ट मिटने में देर नहीं लगती; बहु-प्रार्थित पुत्र-शिशु से अन्ततः उसकी गोद अवश्य भर जाती।

कभी-कभी बाबा की ऐसी कृपा से सन्तान का रूप लेकर किसी-न-किसी विशिष्ट साधक का आविर्भाव हो जाता। शान्ताराम बलवन्त नाचने की पत्नी ने भी बाबा की कृपा से ऐसे ही पुत्र रत्न को प्राप्त किया था।

किन्तु उस बाँझ स्त्री को आशीर्वाद देते समय, ऐसा देखा गया कि बाबा की आँखों से आँसू बह रहे हैं। उस दिन, यद्यपि इसका कारण ज्ञात नहीं हो सका, पर तात्पर्य समझना कठिन नहीं था। नवजात पुत्र के जन्म के कुछ ही घड़ी के बाद, प्रसूती दिवंगत हो गई!

बच्चे का नाम पड़ा कालूराम। पाँच वर्ष बीतते-बीतते इस बालक में जैसी विशेषता—आध्यात्मिक प्रवणता प्रकट होने लगी, उससे चकित नहीं होना, किसी के लिए संभव नहीं था।

पौ फटते-फटते बालक कालूराम घर के एक कोने में आसन मारकर एकान्त भाव से बैठ जाता। अधमुँही आँखों में गहरा ध्यान भरे वह जैसे आत्मभाव में मग्न हो जाता। ध्यान के बाद उठने पर वह कमरे में टँगी, साईं बाबा की तस्वीर की आरती उतारता और चित्र के सामने साष्टांग नमस्कार की मुद्रा में लेट जाता। सारा दिन वह 'राम हरि राम', गाता रहता।

पूर्व जन्म का पुनीत सात्त्विक संस्कार बालक में प्रकट था, तभी तो उसका समय केवल साधन-भजन में ही बीतता था। बीच-बीच में भगवान् कृष्ण का अलौकिक दर्शन पाकर, उसका वर्णन अपने स्वजनों को सुनाते-सुनाते, वह आत्म-विभोर हो जाया करता।

कालूराम का आश्चर्यजनक वृत्तान्त उस समय चारो ओर फैला जा रहा था। यही सुनकर, एक दिन उस बच्चे को देखने आये थे आचार्य-प्रवर गाड्गी बाबा भी।

पर सब कुछ देख सुनकर वे बड़े ही क्रुद्ध हो गये। शान्ताराम नाच्ने को बुलाकर उन्होंने खूब डाँटा। बोले—"यह तुम्हारी कैसी मनोवृत्ति है? बताओ तो। इस छोटी उम्र से ही अपने बच्चे से मुसलमान फकीर की उपासना करना सिखला रहे हो?"

तभी बालक कालूराम आगे आकर खड़ा हो गया। गाड्गी बाबा के प्रश्न का उत्तर उसीने दिया। उसके हाथ में उस समय किसी ग्रामोफोन कम्पनी का विज्ञापन-पत्र था। विज्ञापन-पत्र में एक ऐसे कुत्ते का चित्र था जो ग्रामोफोन की आवाज बड़े चाव से सुन रहा था। उस चित्र के कुत्ते की ओर उंगली दिखाकर कालूराम ने कहा—"पंडितजी, मैं साई बाबा की ओर इसी कुत्ते की तरह कान लगाये बैठा रहता हूँ और उनकी बातें सुन जाया करता हूँ।"

गाड्गी बाबा के विस्मय का क्या कहना! वे बोले—"अच्छा कैसे सुन लेते हो साई बाबा की बातें? हम लोग तो कुछ भी नहीं सुन पाते हैं। हमलोगों को भी बता दो, तो समझें।"

कालूराम ने उत्तर दिया—"यह तो बातों के सहारे समझाया नहीं जा सकता। हृदय के सहारे ही इसे पाया जा सकता है।"

इस बार गाड्गी बाबा को चुप हो जाना पड़ा।

यह बालक—कालूराम नश्वर शरीर में अधिक दिनों तक विद्यमान नहीं रह सका। कुछ ही वर्ष बाद, उसके जीवन का प्रदीप बुझ गया।

अन्तिम काल में पिता को निकट बुलाकर, कालूराम ने अपने गले से लॉकेट उतार लिया और उनके हाथों में रख दिया। यही उसकी सबसे बड़ी सम्पत्ति थी क्योंकि उसमें साईं बाबा का एक छोटा-सा चित्र जड़ित था! लॉकेट देते हुए, उसने कहा—"बाबूजी, अब इसे गले में पहने रहना आवश्यक नहीं है क्योंकि मेरे जाने का समय आ चुका है। आप मेरे सिरहाने में बैठे-बैठे, कृपया गीता के ज्ञानेश्वरी भाष्य का पाठ कर दें। तेरहवाँ अध्याय पढ़ दें, जिसे सुनते-सुनते मैं देह का त्याग कर सकूँ।"

सुनकर सभी सन्नाटे में आ गये। भला यह छोटा-सा बच्चा ज्ञानेश्वरी का पाठ किस प्रकार समझ पायेगा? आँसू-भरी आँखों से पिता पाठ करने लगे।

कालूराम बड़े मनोयोग से पाठ सुनता जा रहा है।। इसके बाद साईं बाबा की आरती उतारी जाती है और कालूराम नश्वर शरीर का त्याग कर, सदा के लिए विदा हो जाता है!

आर्तजनों की भीड़ इकट्ठी देखकर साईंबाबा कभी-कभी उग्र रूप धारण कर लेते; रूक्ष व्यवहार और ऊँची आवाजों में डाँट-फटकार शुरू कर, तहलका मचा देते। इसके बाद जो होता, उसका पता सभी किसी को पहले से ही रहा करता था। शरणागत जन की दीन वाणी अन्ततः उस कृपालु महापुरुष को अवश्य पिघला देती। असाध्य व्याधि की यन्त्रणा क्षण भर में समाप्त हो जाती और धुनी से निकाल कर दी गई एक मुट्ठी राख रामबाण महौषधि बन जाती।

ये घटनायें शिरडी के बाबा के दरबार के लिए अदना सी चीज थी। ऐसी घटनाओं में एक दो का उल्लेख कर देना अप्रासंगिक नहीं होगा।

पूना जिले के जुन्नेर नामक गाँव में भीमाजी पटेल का घर था। भयंकर क्षयरोग और अपच से ग्रस्त होकर वे मरणासन्न हो गये थे। एक डेग चलना तक उनके लिए कठिन हो गया था। नामी चिकित्सकों की चिकित्सा, अमोघ

औषधियों का सेवन, देवी-देवताओं की मनौतियां, सब कुछ किया गया, पर कोई फल नहीं निकला।

फिर तो साईबाबा की मस्जिद में एक दिन एक टांगा आकर खड़ा हो गया और मृतप्राय पटेलजी को उस पर से किसी तरह सहारा देकर, नीचे उतारा गया।

बाबा तो उन्हें देखते ही आग-बबूला हो गये। वे जोर से चिल्लाकर बोले—"क्यों रे, इस चोर को पकड़कर यहाँ कौन ले आया है? देख तो, मुझपर अचानक कैसी जिम्मेदारी डाल दी है!"

भीमाजी पटेल डगमग करते, बाबा की शय्या के पास आकर, बैठ गये। उनके चरणों पर मस्तक रखकर कहने लगे, "बाबा, मैंने सुना है कि आप निराश्रय के आश्रय हैं। मुझसे बढ़कर अभागा और आश्रय-हीन और कौन होगा? मुझपर कृपा की जाय।"

साईबाबा के कण्ठस्वर और चेहरे की भावभङ्गी घड़ी भर में ही बदल गई। बोले, ठीक है, ठीक है, चिन्ता छोड़ो और चुप होकर बैठे रहो। अब तुम्हारे प्रारब्ध का भोग कट गया है—सिरडी की जमीन पर पाँव रखते ही ऐसा हो गया। भगवान अब तुम्हारी दुर्गति से तुम्हें छुटकारा दे देंगे।

धुनी से राख निकालकर बाबा ने उनके माथे पर लगा दिया। सबने साश्चर्य देखा मरणासन्न, ठठरी के शरीरवाले, उस व्यक्ति को सीधा तनकर खड़े होते। बीमारी के सारे कष्ट भी जैसे उसी समय से समाप्त हो गये!

भीमा जी पटेल ने उसी रात में एक रोमांचकारी स्वप्न देखा। क्रोध से लाल आँखें किये कोई भीमकाय पुरुष सहसा उनकी छाती पर चढ़ बैठा है। मुद्गर के आकार की कोई चीज उसके हाथ में है। उसी से वह उनके व्याधि-जर्जर शरीर को पूरी तरह से मसलकर चला गया।

दूसरे ही दिन से भीमा जी पटेल के रोग के लक्षण घटने लगे। कुछ ही दिन बाद, पूरी तरह से चंगे होकर, वे घर लौट गये।

इस बार शिरडी के इलाके में प्लेग का भयंकर प्रकोप था। ऐसे समय में भी साईं बाबा के भक्त जी० एस० खापर्डे साईंबाबा के दर्शनार्थ, वहाँ सपरिवार आये हुए हैं।

प्लेग की बीमारी ही ऐसी है कि उसकी लपेट में एकबार पड़ जाने पर, बचने का उपाय नहीं रह जाता। चारो ओर महामारी का करुण भय फैला हुआ था। उस दिन खापर्डे के पुत्र बलवन्त को रात होते ही बुखार चढ़ आया। देह की एक-एक गाँठ फूलने लगी। असह्य पीड़ा के मारे, लड़का बेहोश हो चुका था। रोग के सारे सांघातिक लक्षण प्रकट हो आये—बुबोनिक प्लेग।

सुबह होते ही, खापर्डे की पत्नी बाबा के निकट पहुँची। बेटे को इलाज के लिए बड़े शहर में ले जाना होगा, बचाने का दूसरा अन्तिम उपाय यही रह गया है। खापर्डे की पत्नी ने कातर-कण्ठ से कहा—"बाबा हमलोग अब तुरत शिरडी के बाहर चले जायँगे, दयाकर इसकी अनुमति दी जाय।"

बाबा गंभीर मौन धारण किये बैठे रहे। बाद में, रहस्यमय संकेत के साथ धीर कण्ठ से कहने लगे—"अभी काले बादल आकाश में घहरा रहे हैं, थोड़ी देर बाद वर्षा भी होगी। फिर खेत में बीज उग आयेंगे, फसल लगेगी। तब तो आकाश से मेघ भी निश्चिह्न हो जायेंगे। इतना डर क्यों रही हो?"

माँ का मन मानता नहीं, पर साईं बाबा की बात न मानने का साहस भी तो नहीं होता। पर अन्त में बाबा की बातों पर निर्भर रहकर खापर्डे की पत्नी ने यात्रा स्थगित की।

आतुरता का समय, बड़ी कठिनाई से, घण्टा-पर-घण्टा, बीत चला। दोपहर के समय बाबा ने खापर्डे की पत्नी को अपने पास बुला पठाया। शिशु की तरह नग्न, कौपीनल-हीन होकर बाबा बैठे थे; जाँघ की दोनों तरफ गिल्टियाँ निकल आई थीं और शरीर बुखार से तपकर लाल हो गया था।

खापर्डे की पत्नी को देखते ही बाबा ने मुस्कराते हुए कहा—"देखो, तुम्हारे लिए इस देह को क्या-क्या झेलना पड़ता है।"

हाँ, बलवन्त की बीमारी उसी दिन से कम होने लगी और दो-तीन दिनों में ही वह पूरी तरह से चंगा हो गया।

भक्तों और शिष्यों को यह समझते देर नहीं लगी कि साईं बाबा ने ही अपने ऊपर रोग को खींच-बुला कर, खापर्डे महाशय के पुत्र को जीवन-दान दिया है।

१९१६ ई० की बात है। बाबा के भक्त बिट्ठल राव देशपांडे एक दिन शिरडी की मस्जिद में आ पहुँचे। साथ में हैं उन्हीं के वृद्ध पितामह—निपट अन्ध। नामी-गामी डाक्टरों ने न जाने कब से कितनी चिकित्सा की लेकिन आँखें गईं सो जाती ही रहीं।

पोते की बात से उत्साहित होकर अन्धे वृद्ध ने शिरडी के शक्ति-धर फकीर की शरण ले ली है। पौत्र और पितामह ने अपना रोना-धोना शुरू किया।

महापुरुष का अन्तर द्रवित हो गया। बोले—"ठीक है, निगाह तो लौट ही आयगी पर ऐसा होने के पहले, मुझे दक्षिणा में चार रुपये दे दो।"

साई बाबा का इस तरह दक्षिणा माँगना, आगन्तुक को गूढ़ रहस्य से ओत-प्रोत जान पड़ा। साथ के लोगों को लगा कि बाबाशरणागत से त्याग-व्रत की दीक्षा को दक्षिणा चाहते हैं। कुछ लोगों ने समझा कि बाबा के दरबार में नजराना चढ़ाना ही होता है? चार रुपये उसी के माँगे जा रहे हैं।

देशपाण्डे ने साई बाबा की हथेली पर कुछ रुपये रख दिये। अत्यन्त साधारण सहज ढंग से बाबा ने कहा—"जाओ, बैठे-बैठे रिरियाते रहने की आवश्यकता अब तुम्हें न होगी। अबसे तुम दोनों ही आँखों से अच्छी तरह देखने लगोगे। अब ले लो यह भभूत और चट पट चल दो।"

दोनों आँखों से भभूत क स्पर्श होते-होते बूढ़े ने चकित होकर कहा—"बाबा, आपका प्रताप है कि सचमुच मेरी आँखों में देखने की शक्ति लौट आई है। आपकी करुणा अपरंपार है !"

प्रांगण में इकट्ठी जन मण्डली ने इसी समय कृपालु साईबाबा का जय-जयकार किया।

बाबा की अलौकिक शक्ति और असीम करुणा से घटित उस चामत्कारिक घटना को जिन भक्तों और दर्शनार्थियों ने देखा, उनके आश्चर्य की सीमा न थी। इस अपरिमेय शक्ति को धारण करनेवाले महापुरुष उनके रक्षक और प्रेरक हैं, उनके लिए इससे बड़ा सौभाग्य और क्या हो सकता है ?

योग-विभूति और अलौकिक शक्ति के प्रदर्शन की कथा के प्रसंग में बाबा एक दिन कहने लगे—मैं जो अध्यात्म-सम्पद् प्राणों में डाल सकता हूँ, उसको पाने के लिए मेरे पास कोई नहीं आता। मुझसे इन्हें वही चाहिए जिसमें मेरी दिलचस्पी कतई नहीं है। देखते हो न, कैसी अनोखी बात है ?"

भक्त-प्रवर नाना साहब बाबा से मिलने प्राय: आया करते। उनकी पत्नी भी उनके साथ होती, उनके परिवार पर उन दिनों शोक की दारुण छाया पड़ी हुई थी।

उस दफा, नाना साहब की कन्या गर्भवती थी। प्रसव-काल में उसका जीवन संकटापन्न हो गया। उन दिनों नाना साहब ऐसे गंवई इलाके में रहते थे जहाँ डाक्टरी उपचार सुलभ नहीं था।

ऐसी विपत्ति-वेला में बाबा को उस प्रसव-पीड़िता कन्या का स्मरण अकस्मात् हो आया। अपने आदमी मार्फत उन्होंने अपनी धूनी में से एक मुट्ठी राख निकालकर, उसके पास भेजी। बड़े ही आश्चर्यजनक ढंग से, भभूत के पहुँचते ही, प्रसूति के प्राण बच गये। पर शिशु अधिक दिनों तक जीवित न रह सका—दुःख की बात थी तो

यही। इसके बाद एक और विपत्ति आ पड़ी। कन्या के पतिदेव एक दिन अचानक परलोकवासी हो गये !

बेटी की मनोव्यथा नाना साहब और उनकी पत्नी को भुलाये न भुलाती। उस दिन दोनों विषाद गलित चित्त लिए बाबा के पास आये और उनके चरणों की वन्दना की। बहुत देर तक किसी को कुछ कहते न बना। गंभीर निःशब्दता की उदासी छा गई।

साई बाबा थोड़ी देर बाद बोले—"क्यों जी, तुम सभी इस तरह चुप क्यों बैठे हो ?"

नाना साहब उत्तर दिया—" बाबा बोलना भी क्या है ? दुःख की पूरी कथा तो आप जानते ही हैं। फिर भी, बाबा रह-रहकर कचोट उठती है कि आपका आश्रय प्राप्त हो जाने पर भी, आपके संरक्षण में रहकर भी दुर्भाग्य ने इस ढलती उम्र में मुझे ऐसा दुःख देखने के लिए जीवित रक्खा। मुझे तो बेटी के मुख की ओर देखने का साहस ही नहीं होता।"

"देखो नाना ! यदि मेरे पास यह समझकर आते हो कि बेटे, बेटी, दमाद बच्चे रहेंगे, सुखी रहेंगे, तुम गलती कर रहे हो।"

किसी के सन्तान—जन्म या दमाद की मृत्यु के पीछे मेरा हाथ नहीं है। यह मेरे वश की बात नहीं। यह सब होता है पूर्वजन्म के कर्मों के फल से। यहाँ तक कि इस सृष्टि के नियन्ता परमेश्वर भी इसमें दखल देने के लिए नहीं आते। तुम क्या ऐसा मान बैठे हो कि वे सूर्य और चांद को बुलाकर कह देंगे कि अजी, तुम लोग अपनी जगह से थोड़ा और हटकर चक्कर लगाया करो ?' नहीं, ऐसा वे कह नहीं सकते, तब तो सृष्टि की शृंखला ही टूट जायगी और गोलमाल मच जायगा।"

"बाबा यदि यही बात सच है, तब आप ऐसा किस तरह कहते हैं कि जाओ, इस बार तुम्हें सन्तान प्राप्ति होगी, भय की बात नहीं, इस बार तुम्हें नौकरी मिल जायगी ?" और देखता हूँ कि सचमुच आपकी

दी हुई बात पूरी होती ही है। क्या यह आपकी अपनी अलौकिक शक्ति का परिणाम नहीं है ?"

"नहीं नाना, सच तो यह है कि मैं कभी कोई अलौकिक घटना घटित नहीं करता। तुमलोगों के तो ज्योतिषी होते हैं ? आनेवाली घटना की वे, गणना करके, पहले ही बता दिया करते हैं। मैं भी वस्तुतः, वैसे ही भविष्यवाणी भर कर देता हूँ, गणना की रीति भले ही अलग है। मैं उनकी अपेक्षा, और अधिक पहले, आने वाली घटना का हाल बता देता हूँ। काश तुमलोग मेरी इस हैसियत को समझ कर सन्तुष्ट हो जाते। पर मेरी बातें तो तुम्हारे प्राणों को अलौकिक दिव्यता से ओत-प्रोत जान पड़ती है। यही कारण है कि तुमलोग मेरी भविष्यवाणी को मेरी योगविभूति मानकर, मेरी पूजा करना आरंभ कर देते हो। और मैं कर भी क्या सकता हूँ ? तुम्हारी उस पूजा को भगवान् के प्रति अग्रसारित कर देता हूँ, ताकि तुम्हारा वास्तविक कल्याण हो।"

बाबा के उस दिन के इस बचन में उनके जीवन-दर्शन का सन्धान पाया जा सकता है। अलौकिक शक्ति विभूति से दीप्त इस अधिकारी महापुरुष के अन्तर्जीवन का दिग्दर्शन भी इससे हो जाता है।

शारीरिक तथा सांसारिक लाभ-हानि का अतिक्रमण कर साईं बाबा के आशीर्वाद से लोगों को अपने प्रकृत कल्याण की ओर बढ़ने की शक्ति मिला करती। तभी प्रायः ऐसा भी देखा जाता है कि साईं बाबा के प्रत्याख्यान के सहारे किसी-किसी का कल्याण हो जाता।

साईं बाबा के विशिष्ट भक्त प्रो० जी० जी० नार्के ने इस तरह की एक घटना का उल्लेख किया है।

१९१४ ई० के आसपास के किसी साल की बात है। एक धनी सेठ परिवार के एक सज्जन क्षय रोग से पीड़ित थे। सभी तरह की चिकित्साओं के विफल हो जाने के बाद, अब ये आये हैं साईं बाबा का आश्रय लेने।

रोगी की अवस्था एक दिन संकटापन्न हो उठी। लगा, जैसे

जिन्दगी की आशा नहीं रह गई है। अचरज यह कि सब कुछ के बावजूद बाबा उसकी ओर कभी मुखातिब नहीं होते।

रोगी के परिवार की स्त्रियों ने रोना-धोना शुरू कर दिया। आर्त्त-नाद सुनकर नार्के साहब का मन भी द्रवित हो उठा। उन्होंने साई बाबा की बड़ी मिन्नत की और कहा—बाबा ये बेचारे बड़े हताश हो गए हैं, रोगी की अवस्था तो इतनी मर्मान्त हो गई है कि उसकी ओर देखते नहीं बनता। आप इन लोगों के प्रति कोई कृपा कर देते। अपनी धुनी से थोड़ा भस्म दे दें न।"

'भस्म ! भस्म देने से इस रोगी का कौन काम चलेगा ? पर जब यही चाहते हो तो लेते ही जाओ।'

बाबा की धुनी की सर्वरोगहर औषधि—राख, रोगी के अंगों पर लगा दी गई। पर लाभ नहीं हुआ। अवस्था, धीरे-धीरे और खराब होती गई।

एक रात को रोगी जीवन की अन्तिम घड़ी में पहुँच गया। उल्टी हिचकी चलने लगी। इसकी सूचना एक व्यक्ति ने. जाकर बाबा को दे दी।

बाबा इतना ही बोले—'डरते क्यों हो ? अरे वह मरेगा नहीं ! देखना सुबह होते-होते उसे नई जिन्दगी मिल जायगी।

बाबा की बात है, तो अविश्वास कैसे किया जाय ? संबादवाहक चुप-चाप लौट गया।

बाद में दारुण समाचार मिला कि भोर होते-होते रोगी का प्राणान्त हो चुका है।

सेठजी और उनके परिवार के अन्य शोकार्त्त लोग बड़े क्षुब्ध थे। बाबा ने उनकी प्रार्थना अनसुनी कर दी; इतना ही नहीं, मिथ्या भाषण भी कर बैठे !

बाबा से दर्शन करने का उत्साह अब उनमें नहीं रह गया था। लग-भग तीन वर्षों तक वे शिरडी में लौटकर नहीं आये।

इसके बाद की घटना है। एक दिन मृत व्यक्ति के एक घनिष्ठ

मित्रने स्वप्न में बाबा को देखा। चेहरे का भाव गंभीर था और वे लेटे थे। सामने पड़ी थी, यक्ष्मा रोग से मृत व्यक्ति की निष्प्राण देह। बाबा ने उसकी छाती के एक विशिष्ट स्थान की ओर उंगली से इशारा किया। दिखाई पड़ा—रोगी का फेफड़ा गल चुका है। कैसा घिनौना था वह दृश्य! फिर साईबाबा कह रहे हैं-'अब तो देख रहे हो न? कितनी कठोर यन्त्रणा से इसको मैंने छुटकारा दिला दिया।'

सपना देखने वाले को स्मरण हो आया—साईबाबा ने आश्वासन दिया था कि रोगी को नई जिन्दगी मिल जायगी। अब उसे यह समझते देर नहीं लगी कि बाबा ने जिस जिन्दगी की बात कही थी, वह इस देह की जिन्दगी नहीं, उसके परे की शाश्वत जिन्दगी है।

नश्वर जीवन की समस्याओं और शाश्वत जीवन का आवेदन लेकर साईबाबा के आसपास आर्त्तजनों की भीड़ लगी ही रहती। बाबा इन सभी को, आध्यात्मिक जीवन की दिशा में लगा देने की चेष्टा करते रहते। जो जैसी साधना के योग्य रहता, बाबा उसे वैसी ही दिशा में उन्मुख कर देते।

यों मोक्ष की कामना और पारलौकिक कल्याण की आकांक्षा लेकर आनेवाले होते ही कितने हैं? जो आते भी हैं, उनमें अधिक संख्या उनकी ही रहती है जो रोग, शोक वा दारिद्रय से पीड़ित हैं और ऐहिक सुख प्राप्त करने की दुर्वलता से ग्रस्त हैं।

बाबा को प्राय: ऐसा कहते सुना जाता—'मेरे पास लोग उस कौए की तरह दौड़े आते है जिसे सड़े-गले मांस-खण्ड चाहिए। वे राजहंस कितने हैं जिन्हें ज्ञान मुक्ता की खोज है? अध्यात्मिक शान्ति, ज्ञान और आनन्द को चाहनेवाले हैं ही कितने?'

भीड़ लगाये रहते हैं चमत्कार-प्रदर्शन के प्रति कुतूहल रखनेवाले और त्याग-तितिक्षा से रहित लोग। बाबा भी बार-बार दक्षिणा की बात चलाकर उन्हें चकमकाहट में डालते रहते हैं। दक्षिणा या प्रणामी लेने के रहस्य पर प्रकाश डालते हुए एकबार बाबा ने स्वयं

कहा था—एक बात तुमलोग जानलो। किसी के पास से यदि मैं एक रुपया ले लेता हूँ तो उसे दस रुपये लौटाने के लिए बाध्य हो जाता हूँ। वापस लौटाने की संभावना नहीं रहने पर किसी का दिया हुआ मैं कभी नहीं लेता। फिर भी, बिना विचारे, जिस-तिस से लेते फिरना या दक्षिणा माँगना मुझसे नहीं हो सकता। भगवान् जिससे लेने के लिए कहते हैं, उसी से लेता हूँ। दक्षिणा के ये रुपये, इस तरह, भगवान् से ही आते हैं। जान रक्खो, तुम जब जो दान करते हो वह वैसा ही हो जाता है जैसे खेत में बीज का बोया जाना। उसमें भगवान् को फसल उगानी ही है।

"धन-दौलत और रुपये पैसे होते भी हैं तो धर्म ही के लिए ही यदि कोई महज अपने हो पर सब कुछ खर्च कर देता है, तब तो धन-प्राप्ति का वास्तविक उद्देश्य ही व्यर्थ हो जाता है। एक अन्य जन्म में तुमने किसी को यदि अपनी पूरी धन दौलत दे दी भी हो तो उसे इस जन्म में तुम पर कम-से-कम दक्षिणा का दावा तो जरूर हो गया है। पिछले जन्म में बहुत दान किया था, महज इतने से दक्षिणा न देने का अधिकार इस जन्म में तुम्हारा क्यों कर हो गया? इसे छोड़ भी दें, तो क्या इस दान-दक्षिणा के बल पर वैराग्य से छुट्टी पा गये? अरे, वैराग्य होने पर ही तो वास्तविक भक्ति और ज्ञान का आस्वादन मिलता है।"

ढोंगी-जिज्ञासुओं का चेहरा दक्षिणा की चर्चा के साथ ही उतर जाता। बाबा ऐसा करते थे दर्शनार्थियों भक्तों की दृष्टि को स्वच्छ-तर करने के लिए।

उस बार बम्बई से एक धनाढ् व्यक्ति साई बाबा के दर्शनों के लिए आये।

निकट बैठकर बार-बार, बुलन्द आवाज में वे गुहराते जा रहे हैं—बाबा, बड़ी, आशा लगाकर, कितने काम काज की नुकसानी उठा—कर, दूर से आपके पास आया हूँ। सुनता हूँ कि आपकी योगशक्ति का कोई हद्दो-हिसाब नहीं। आपकी कृपा से क्या ऐसा संभव नहीं है

तड़ातड़ी भगवान् की प्राप्ति भी लगे ही हाथों हो जाय ? कृपा करके आज मुझे भगवान् का दर्शन करा दें।'

महाशय वड़ी जल्दी में हैं, जिस ताँगे से आये हैं, उसे दरवाजे के पास ही रोक रक्खा है। मन में यह चिन्ता लगी है कि यहाँ जितनी देर लगेगी, उतना ही अधिक भाड़ा वढ़ता जायगा। इसी-लिए थोड़ी-थोड़ी देर के वाद ही वावा पर लगातार तकाजा गाँठते जा रहे हैं—"वावा, हाँ-हाँ इसवार भगवान् के दर्शन का काम भी पूरा करा ही दीजिये।"

साईं वावा ने प्रशान्त कण्ठ से कहा—"हाँ वेटा, इसमें चिन्ता की क्या वात है ? मैं अभी तुरत तुम्हें ब्रह्म-साक्षत्कार करा देता हूँ। खूव अच्छी तरह तुम सव कुछ देख लोगे। सच ही तो, यहाँ कितने तो लोग आते रहते हैं, किन्तु सव-के-सव आते हैं महज रुपये-पैसे, क्षमता, सम्मान, स्वास्थ्य,—इन्हीं सवके लिए। वेटे, तुम्हारी तरह, मूल वस्तु के लिए कोई व्याकुल नहीं होता।"

अव साईं वावा ने ब्रह्मतत्व के सम्वन्ध में कुछ कथा-कहानी शुरू की।—सृष्टि के मूल में केवल वे ही हैं। जगत् का यह प्रपञ्च उन्हीं की माया का खेल है।' फिर इस माया के वन्धन से छुटकारे पुनर्जन्म से पिण्ड छुड़ाने, गुरु को प्राप्त करने, के प्रसंग में वे कितनी ही वातें कह गये और वातों के सिलसिले में समय वीतता चला गया।

नवागत धनी दर्शनार्थी के लिए अव और धैर्य रखना कठिन हो गया। वह यही देखता रहा कि कव वावा की वातों का सिलसिला खत्म हो।

अचानक वावा ने एक वालक को वुलाकर कहा, "अजी, अभी मुझे पाँच रुपयों की वड़ी आवश्यकता है। जाओ तो, नन्दलाल माखाड़ी के पास से कुछ रुपये ले आओ।"

वालक लौटकर चला आया तो उसने वताया, नंदलाल से भेंट ही नहीं हुई। वे किसी काम से कहीं चले गये हैं।' तव वावा ने उसे

गाँव के किसी दूसरे संपन्न व्यक्ति के पास भेजा। इसमें और भी समय लगा। नवागत धनी दर्शनार्थी को देर हो रही थी। वे भीतर ही भीतर छटपट कर रहे थे। अब और इन्तजार करना उनके लिए संभव नहीं था। ताँगा वाला बार-बार आकर चलने का तकाजा कर रहा है। कहना न होगा देर करने का अर्थ है भाड़े का लगातार बढ़ता जाना।

कैसी विचित्र बात है। पाँच रुपयों के लिए बाबा रे-टे मचा रहे हैं और रुपये कहीं नहीं मिले ! नवागत सज्जन की जेब में रुपये तो है, पर बाबा के रंग-ढंग से पता चलता है कि एक बार रुपये लेकर उसे लौटा पाना उनके वश की बात नहीं है। फिर नवागत सज्जन को डर भी हो रहा है। पास में रुपये रखकर वे बाबा को रुपयों के लिए परेशान होते कैसे देखते रहें। सब कुछ के बावजूद वे चुपचाप बैठे हैं।

थोड़ी देर के बाद और चुप रह सकना संभव नहीं हुआ। बोले—'बाबा, अब जरा जल्दी कीजिए। मुझे भगवान् का तड़ातड़ी में दर्शन करा दीजिए। फिर मुझे यह काम पूरा करके आज ही बम्बई लौटना है।'

'अजी, इतनी देर से मैं वही तो कर रहा हूँ। तुम्हें अभी, यहीं बैठे-बैठे ब्रह्म-ज्ञान हो जाय, उसी का प्रबन्ध करा रहा हूँ न ? पर क्या तुम्हें अब तक इसका कोई अहसास नहीं हुआ ?'

'नहीं, बाबा, अभी तो ऐसा कुछ नहीं लगता।'

'देखो, ऐसा समझ रखो। मैं पाँच रुपये ही माँग रहा हूँ। ये रुपये तुम्हारे पास वाले, चाँदी के रुपये नहीं, ये हैं मेरे पास, सब दिनों के लिए पाँच वस्तुओं का पूर्ण समर्पण। मैं माँगता हूँ पाँचों प्राण, पाँचों इन्द्रियाँ और मन, अहंकार, बुद्धि इत्यादि। बेटे, ब्रह्म-लाभ का मार्ग बड़ा ही दुर्गम है। सब के लिए उस मार्ग पर चलना संभव नहीं है। धन, मन, उन्नति आदि में से किसी के लिए आकर्षण रहते, ऐसा नहीं हो सकेगा। काय-मन-प्राण को देकर ही इस लक्ष्य पर पहुँचने की चेष्टा हो सकती है। तभी परमतम ज्योति का अविर्भाव संभव होता है !'

नवागत बेचारा चुपचाप उठकर चला गया। बाबा ने मुसकाते हुए भक्तों

से कहा—'उसकी जेब में ढाई सौ रुपये थे ! देखो, कितनी अनोखी बात है ! जिससे मुक्ति-मार्ग का सन्धान चाहता है, उसके लिए भी पाँच रुपये तक निकाल पाना इसके लिए संभव नहीं था। कुछ पाने के पहले अपने को टटोल कर देख लेना चाहिए, तब आगे हाथ बढ़ाना चाहिए।'

भक्त, शिष्य या दर्शनार्थी के मन की कोई बात, साई बाबा से छिपी नहीं रहती। अन्तर्यामी महापुरुष की दिव्य दृष्टि दूसरे के अन्तरतम में अनायास प्रविष्ट होकर सभी गूढ़ और गोपन रहस्यों को हस्तामलक की तरह प्रत्यक्ष कर लेती।

उस दिन, बाबा का दर्शन करने के लिए एक कुष्ठ रोगी पहुँचा। मैला-फटा कपड़ा पहने हुए, हाथ में एक गठरी लटकाये, उसे देखकर, किसी को भी दया आ जाती। बीमारी अपनी भयंकर अवस्था में पहुँच चुकी थी। सारे अंग गलित हो चुके थे; दुर्गन्ध के मारे, किसी के लिए भी, उसके पास फटकना कठिन हो रहा था।

श्रीमती म्यानेजर्स नामक एक भक्त महिला थीं, जो उस समय बाबा की धुनी के पास ही बैठी थीं। रोगी की घिनौनी हालत पर उनका मन भिन-भिना उठा। दुर्गन्धि से बचने के लिए उन्होंने नाक पर कपड़ा रख लिया। मन-ही-मन वह कह रही थीं—'ना, यह बदबू बर्दाश्त के बाहर की चीज है। यह जल्द चला जाओ तो मेरी जान में जान आ जाती।' उसके चले जाने पर ही उन्होंने चैन की लम्बी साँस ली।

अपनी इस पूरी हरकत के समय में, जब कभी उक्त भद्र महिला ने मुँह फिराकर बाबा की ओर देखा, उन्होंने पाया कि बाबा उन्हें तीव्र दृष्टि से घूरकर देख रहे हैं। महिला को मन-ही-मन डर लगा। कहीं बाबा उनके मन की तमाम बातों को जान गये हों तो बँटाढ़ार ही हो गया।

श्रीमती म्यानेजर्स ने आगे चलकर इस घटना के प्रसंग में इस प्रकार लिखा है—'कुष्ठ-रोगी थोड़ी ही दूर गया होगा कि बाबा अचानक धड़फड़ा कर उठे और उसे वापस बुला लिया। फिर बाबा ने मेरे लिए

एक सेवक को बुला भेजा। रोगी वापस आकर रोग की ज्वाला से छटपटा रहा था। उसके गलित अंगों से नाक तोड़नेवाली दुर्गन्ध निकल रही थी। उसके हाथ की पोटली अपने हाथ में लेकर बाबा ने पूछा—"इसमें क्या है?" पोटली तब तक खुद ही खुल गई। उसमें रक्खे थे पेड़े जो रोगी ने खाने के लिए रक्खे थे! उनमें से तोड़कर एक पेड़े का टुकड़ा बाबा ने मेरी हथेली पर रख दिया बोले—'अच्छा इसे जल्दी से चटकर डालो।

"मैंने मन ही मन कहा—बाबा आज मेरी कैसी परीक्षा ले रहे हैं। इस गलित कुष्ट रोगी की गन्दी पोटली का पेड़ा क्या मुझे खाना ही होगा? किन्तु बाबा की आज्ञा को न मानते भी तो नहीं बनता। आखिर मुझे वह पेड़ा निगलना ही पड़ा। एक टुकड़ा पेड़ा खुद बाबा ने भी खा लिया। बाकी पेड़े उसी गन्दी पोटली में रखकर, रोगी को विदा कर दिया गया।

"बाबा ने रोगी को क्यों लौटाया और उतने लोगों के बीच मुझे ही क्यों उसकी गन्दी पोटली का पेड़ा खाना पड़ा, यह रहस्य उस समय किसी की समझ में नहीं आया। पर मुझे समझते देर न लगी कि मेरे अन्तर की प्रतिक्रिया बाबा को ज्ञात हो गई थी, अतः उसे मिटाने के लिए ही उन्होंने सारा खेल किया है। उनके इस आचरण से एक महान् सत्य स्पष्ट हो गया। हमलोग अपने सीमित ज्ञान के आधार पर अपने को बचाने की जो चेष्टा करते हैं, वह दुर्बल की चेष्टा है, साईबाबा जैसे महापुरुष का आश्रय उस चेष्टा से अधिक निर्भर करने योग्य है यही शिक्षा वे मुझे देना चाहते थे।"

भक्त नाना साहब उस दिन शिरडी आये हुए थे। उस समय दिन के १२ बजे थे, ग्रीष्म की जलती धूप अचानक दहकने लग गई थी।

पसीने से तर-बतर, थके-मांदे नाना साहब ने सोचा था, बाबा

→

के चरणों के दर्शन कर, एक मित्र के घर जाकर स्नान-भोजन और विश्राम करेंगे। पर बाबा उन्हें वैसा क्यों करने देने लगे ?

कुछ देर तक बातचीत करने के बाद कौतुक—प्रिय बाबा बोले, "नाना, मेरे लिए तुम पूरन-पोली तैयार कराओ। मुझे यह खाने की बड़ी इच्छा है। लेकिन हाँ, अभी तुरत तैयार कराकर लाते आओ।"

बाबा का यह प्रिय भोजन बनेगा उड़द की दाल, नारियल, गेहूँ और चीनी के पेठे से ! कौन जाने बाबा इस पूरन-पोली के रसास्वादन के लिए अचानक क्यों उत्सुक हो उठे हैं ?

नाना साहब ने कुछ हिचकिचाते हुए कहा—"बाबा, इसबार, साथ में रसोइया या नौकर लेकर नहीं आया हूँ। पूरन-पोली कौन बनायगा ?"

पर बाबा छोड़नेवाले नहीं है। बोले—"नहीं, नाना मुझे नई वस्तु खाने की बड़ी तीव्र उत्कण्ठा हो आई है। जैसे हो वैसे, तुम इसे तैयार कराकर ले आओ।" अन्ततः एक ब्राह्मण रसोइये को बुलाकर, बाबा के लिए नाना साहब से पूरन-पोली बनवाई। भोजन की वह सामग्री हांडी में भरकर, बाबा के सामने रख दी गई।

लेकिन यह क्या हुआ ? भोजन करना तो दूर रहे, बाबा ने उसे छुआ तक नहीं ! उन्होंने एकबार हांडी की तरफ देखभर लिया और बोले—"वाह-वाह ! कितना अच्छा बना ! खैर, अब इसे उठाकर ले जाओ और तुम सभी मिलकर आनन्द पूर्वक इसे चट कर डालो।"

नाना साहब तो झल्ला उठे। अब बेचारे स्नान-भोजन भी नहीं कर पाये फिर भी कितनी जिल्लत उठाकर उन्होने बाबा के लिए यह वस्तु तैयार करवाई थी। पर बाबा ने इसे छुआ भी नहीं।

क्षुब्ध होकर उन्होंने कहा—"बाबा, अभी-अभी पूरन-पोली के लिए आपने कितना शोर गुल मचाया था और जब वह तैयार करा दी गई तो आप उसका एक टुकड़ा मुँह में रखने को तैयार नहीं है ! खैर,

आपको जैसा भाये वैसा ही करें। लेकिन हमलोग कोई भी इसे अब नहीं खा सकेंगे।'

"सो क्यों ? मैंने तो खा लिया। अब तुमलोग मिल बाँट कर खा लो।"

"ऐं, आपने खा लिया ! कब ? सब तो ज्यों-की-त्यों पड़ी है। आपने तो इसे छुआ तक नहीं है। ना हमलोग भी अब यह नहीं खायेंगे।"

नाना साहब वहां से उठकर चले गये। आज वे अब कुछ भी नहीं खायेंगे —ऐसा उनकी तमतमाहट से भाँपा जा सकता था।

पर साई बाबा ने उन्हें बुला मंगाया। शान्त,धीर स्वर में उन्होंने कहा—"नाना मुझे लगता है कि तुम्हें मेरे निकट रहते कोई अठारह वर्ष हो गये होंगे। किन्तु इतने दिनों में क्या तुम मुझे इतना भी नहीं समझ पाये ?"

मेरी इस स्थूल देह और इसकी सीमाओं को ही तुम महान् बनाकर देखते रह गये ? क्या तुम इस साढ़े-तीन हाथ की मानव आकृति को ही 'बाबा' के नाम से जानते हो ? इसे छोड़कर और कोई बड़ी सच्चाई तुम्हें दिखाई नहीं पड़ी ? मैं तो कोई भी आकार ले सकता हूँ। क्या यह सच है कि इसकी पकड़ अभी भी तुम में नहीं आई ? मैं अपना भोजन भी अनेक रूप में ग्रहण करता हूँ। मैंने बहुत देर पहले ही पूरन-पोली का स्वाद ग्रहण कर लिया था। अब यह उठाकर ले जाओ और बैठकर तुम लोग खाओ।"

नाना साहब को समझ में आ गया कि उनकी आँखें खोलने के लिए ही बाबा को आज इन पेठों के लिए भूख लग आई थी। लज्जित होकर वे वहीं भोजन करने के लिए बैठ गये।

९९ बी०व्ही० देव नामक एक सज्जन को बाबा के प्रति एकनिष्ठ भक्ति थी। उन दिनों वे शीरडी से दूर दहानु नामक स्थान पर रहते थे। एक बार उन्होंने साड़म्बर में महोत्सव मनाना तय किया।

उनकी आन्तरिक इच्छा थी कि उत्सव में बाबा भी सम्मिलित हों। विधिपूर्वक अनुरोध निवेदित करने के बाद उन्होंने एक-पर एक अनेक चिट्ठियाँ लिखीं, बाबा को अपने अनुरोध का स्मरण दिलाने के लिए।

बाबा ने उत्तर में लिखवा भेजा कि वे उस उत्सव में अवश्य भाग लेंगे और उनके साथ-साथ दो अन्य भक्त भी उस अवसर पर पहुँचेंगे।

समाचार पाकर, भक्त के आनन्द की सीमा नहीं रही। समारोह के आयोजन में उन्होंने अपनी ओर से कोई त्रुटि नहीं होने दी।

उत्सव के दिन देखा गया कि बाबा नहीं आ सके। किन्तु एक दिव्य संन्यासी अपने दो सेवकों के साथ वहां यथा समय उपस्थित होते देखे गये। देव महोदय से उन्होंने कहा—हमलोग यहां पर केवल भोजन करेंगे रुपये-पैसे या और कुछ देना आवश्यक नहीं है।

भोजन करने के बाद वे लोग चले गये। महोत्सव अच्छी तरह सम्पन्न हो गया।

पर साई बाबा के महोत्सव में नहीं उपस्थित होने का खेद भक्त के हृदय को कचोटता रहा। बड़े दुख के साथ उन्होंने बाबा के पास भेजे गये पत्र में लिखा—'बाबा, अपना दिया गया वचन पूरा करने नहीं आये 'महोत्सव' में रहूँगा ऐसा उन्होंने स्वमुख से कहा था किन्तु अपने भक्त को उन्होंने ठग दिया।"

बाबा को वह चिट्ठी पढ़कर सुनाई गई। उन्होंने सेवक से कहा—"देव को इसका उत्तर लिख दो। मैं दो व्यक्तियों को साथ लेकर उसके महोत्व में ठीक ही गया था। भोजन भी कर आया किन्तु वह मुझे पहचान नहीं सका। उसे इस बात की याद दिला दो कि मैंने उसे कहा था 'हमलोग केवल भोजन करेंगे। रुपये-पैसे हमें नहीं चाहिए।"))

((चिदम्बर गाडगिल नामक एक भक्त रेलवे में नौकरी करते थे। एक दिन ऊपर के दफ्तर से उनके स्थानान्तरण का परवाना आया।

काम जरूरी है, नई जगह पर उन्हें अविलम्ब उपस्थित होने को कहा गया है।

गाडगिल के मन में इस बात का बहुत दुःख है कि नई जगह पर जाने के पहले बाबा का दर्शन करना संभव नहीं हुआ।

उस दिन वे अपने डेरे पर उदास चेहरा लिए बैठे हैं। अचानक उन्होंने देखा—शून्य से, एक छोटी-सी कागज की पुड़िया, उनकी देह को छूकर, चादर पर गिर पड़ी। आखिर बात क्या है? इस तरह कौन तिलंग उड़ा रहा है? पुड़िया खोलकर देखा तो उनके आनन्द की सीमा नहीं रही। अरे, यह तो साईं बाबा की धुनी का भस्म—उनका चिरपरिचित स्नेह-चिन्ह है! दूर शिरडी में बैठे अलौकिक योग-शक्ति के सहारे उन्होंने अपना प्रसाद भेजा है। गाड्गिल की दोनों आखों से झर-झर कर आनन्द के आँसू बरस पड़े।

कुछ दिनों के बाद, मौका पाकर वे शिरडी पहुँचे। साईं बाबा ने स्नेह-गद्-गद् कण्ठ से कहा—"बेटे, उस दिन मेरे दर्शन न कर सकने के कारण तुम्हारे मन में बड़ी पीड़ा हो रही थी। इसीलिए पुड़िया में भर कर तुम्हारे पास भस्म भेजना पड़ा था।" >>

इसके साथ ही, उन्होंने पार्श्व में बैठे हुए सेवक कुशभाव की तरफ देखकर कहा—"कुशभाव, पूर्ण विश्वास के साथ, जब कभी तुमलोग मुझे स्मरण करते हो, मैं भले ही कितनी दूरी पर होऊँ, पर तब तुमलोगों के अत्यन्त निकट पहुँच जाया करता हूँ।"

भक्त-प्रवर कुशभाव के जीवन में, इसके बाद, साईं बाबा की कृपा से, दिव्य अभिज्ञता का आविर्भाव हुआ। नाना प्रकार के कष्टों में पड़कर, जबकभी वे आन्तरिक भाव के साथ बाबा की याद करते हैं, उनके अंजलिबद्ध हथेली पर बाबा प्रकट हो आते हैं, एक पुड़िया भस्म के रूप में। कुशभाव प्रसन्नता के मारे उतने ही, पुलकित हो जाते हैं।

बाबा अपने भक्तों के विचार-आचार पर, सदैव अपनी दृष्टि दिए रहते हैं। कभी डाँट-फटकार के सहारे और कभी सान्त्वना और दुलार के

सहारे अपने भक्तों के जीवन में वे ऐसा परिवर्तन ला देते हैं, जिससे उनमें अध्यात्म का आविर्भाव हो जाता है।

उस दिन बाबा लेटे थे। एक सेवक भक्त ने आकर संवाद दिया, दो संभ्रान्त मुसलमान महिला बाबा का दर्शन करना चाहती हैं।

बाबा के पास ही बैठे हैं, उनके अन्तरंग भक्त—नाना साहब। वे उसी समय उठकर खड़े हो गये, पर्दानशीन मुस्लिम महिला के आने के समय, वहाँ बैठे रहना उन्हें शिष्टता के विरुद्ध जान पड़ा।

साईं बाबा बोल उठे—"नहीं जी, नाना, तुम यहीं बैठे रहो। मेरे दर्शन करने को जो आते हैं, वे मुझे अपने भक्तों के बीच में बैठे ही देखेंगे। ऐसा न करना चाहें तो जायँ।"

नाना साहब फिर उसी जगह बैठ गये। दोनों भद्र-महिलाओं ने आकर, बाबा को श्रद्धापूर्वक प्रणाम किया। इसमें एक हैं तरुणी और परम रूपवती। उन्होंने अचानक अपने मुखड़े को घूँघट में छिपा लिया। नाना साहब को ऐसा लगा जैसे बिजली एक बारगी कौंधकर छिप गई हो। घड़ी भर में ही उन्होंने आपा खो दिया, उनकी प्रबल इच्छा हुई कि एकबार घूँघट उठे और उस मुखड़े को जी भर कर देख लें। क्या घूंघट का एकबार और उठना संभव नहीं है?

बाबा ने अपने लम्बे हाथ को पूरी लम्बाई में फैलाकर, उसी समय, नाना साहब के घुटने पर हल्की-सी चपत लगाई। इसके साथ ही भक्त का होश-हवाश दुरुस्त हो गया। वे एकबारगी सँभल कर बैठे। कैसा सर्वनाश! अन्तर्यामी महापुरुष के सामने बैठकर वे यह क्या-क्या सोच रहे थे? छिः।

दर्शन कर, दोनों महिलाओं के जा चुकने के बाद, बाबा ने पूछा—"नाना, तुमने क्या समझा? उस समय मैंने तुम्हें क्यों चपत लगाई थी?"

"बाबा, आप सर्वज्ञ हैं। आपसे कुछ छिपाने की चेष्टा व्यर्थ है। किन्तु बाबा मुझे इस बात से सचमुच खेद है कि आपके निकट बैठे रहने पर भी मेरे मन में ऐसे-वैसे भाव उठते रहते हैं।"

"बेटे, बीच-बीच में ऐसा हो जाना चाहिए। तुम आदमी ही हो न ? लहू-मांस से बने महज आदमी हो ! देह और मन में कितनी कामनायें-वासनायें छिपी रहती हैं—लोभ की वस्तु सामने आ जाने पर ही वे बाहर निकल आती हैं।"

थोड़ी देर तक चुप रहने के बाद बाबा फिर कहने लगे—"अच्छा बेटे, यह तो बताओ। धरती पर तो एक-से बढ़कर कारीगरी चित्रकारी की अनुपम कृतियाँ हैं, कितने सुन्दर मन्दिर हैं; पर क्या हम बाहर की नक्काशी देखने ही जाते हैं, भीतर जो स्थापित देव विग्रह है, उनसे हमारा प्रयोजन नहीं है ? फिर, भगवान् तो केवल इन मन्दिरों में ही नहीं रहते, वे तो विश्व की हर हस्ती में ओत-प्रोत हैं। हमें यह चाहिए कि बाहर की सुन्दरता में उलझकर दृष्टि को हैरान न होने दें, अन्दर के देवता को ढूढ़ने में उसे लगाये रक्खें।

"हाँ, भगवान् की रचनाओं को देखकर, उनकी कला-चातुरी को सराहने का अधिकार तुम्हारा अवश्य है। पर इसके लिए आवश्यक है कि रूप और सुन्दरता पर दृष्टि पड़ने के साथ-साथ तुम्हारे मन में यह भाव उठना चाहिए कि इसके स्रष्टा की—परमेश्वर की कितनी महिमा है जिन्होंने इसे रचा है। सुन्दरता के प्रति ऐसा भावाधार जिन्होंने स्थापित कर लिया है, वे सुन्दरता को देखने के अधिकारी हैं। जगत् की संपूर्ण सुन्दरताओं के जो आधार हैं, उनकी याद आनी चाहिए, सुन्दरता की प्रत्येक भंगी को देखकर।

"सुनो नाना तुम रूप दर्शन की अपनी लालसा को इस रीति से संचालित करना यदि सीख लेते, तो उस दर्शनार्थिनी रूपसी को एकबार और देखने के लिए उस तरह आकुल नहीं होते। मेरी इन बातों को हमेशा के लिए, अच्छी तरह याद कर लो।"

९९ साई बाबा बड़ी सतर्कता के साथ देखते रहते कि उनके भक्त शिष्यों में से किसी को धन का अभिमान न जगे। नाना साहब और उनकी पत्नी को एक एकबार उपदेश देते हुए उन्होंने कहा—"देखो, कोई दुःखी व्यक्ति यदि

तुमसे कभी भीख माँगता है, तो अपनी शक्ति के अनुरूप उसकी सहायता कर देने की कोशिश अवश्य करना। यदि बात तुम्हारी सामर्थ्य के बाहर की हो, तो साफ-साफ समझाकर मधुरता के साथ कह देना। किसी को गरीब समझकर, उसे अपने व्यंग्य, परिहास या विद्रूप का विषय मत बनाना, न ही डाँट-डपट करना।"

पति और पत्नी ने वचन दिया कि वे बाबा के इस आदेश का पालन करते रहेंगे।

किन्तु नाना साहब के द्वारा दिये गये वचन का पालन, एकबार नहीं हो पाया। शिरडी के पास ही है कोपाड़ गाँव और उसमें है दण्डाजी का मंदिर। एक साधु महोदय के हाथ में मन्दिर का प्रबन्ध है। उन्हें नाना साहब ने वचन दिया था, मन्दिर की सीढ़ी के निर्माण के लिए रुपये देने का। अन्य कार्यों में रुपये खर्च हो जाने के कारण, आजतक नाना साहब अपना वह वचन पूरा नहीं कर पाये।

उस दिन नाना साहब बाबा का दर्शन करने के लिए शिरडी आये। रास्ते में ही दण्डाजी का मन्दिर मिला। आरम्भ से ही वैसा अभ्यास रहने के कारण, वे मन्दिर में प्रतिष्ठित विग्रह की पूजा कर लेने के बाद ही आगे बढ़ते। पर मन में संकोच का भाव आ गया, साधु को दिया गया वचन वे पूरा नहीं कर सके हैं। इस संकोच के कारण वे मन्दिर वाली राह छोड़कर, दूसरे रास्ते शिरडी पहुँचे।

साईबाबा को श्रद्धापूर्वक प्रणाम करने के बाद उनके चरण प्रान्त में नाना साहब बैठ गये। लेकिन महापुरुष का आज यह कैसा अद्‌भुत व्यवहार हुआ? उनके होठों पर चिरपरिचित मुसकान की रेखा नहीं खिली। देखते ही जैसा सोल्लास स्वागत-संभाषण करते थे, वैसा भी नहीं हुआ। बाबा के चेहरे पर संजीदगी और खेद का भाव स्पष्ट प्रकट है।

नाना साहब ने विषण्ण होकर कहा—"बाबा आज मेरा कैसा दुर्भाग्य है? आप बात तक नहीं करते!"

उत्तर दिया गया—"जो दिये गये अपने वचन का पालन नहीं करता, उससे बात करने को जी नहीं चाहता।"

"सो कैसे बाबा ? मैं तो अपने दिये गये वचन का यथाशक्ति पालन करने की चेष्टा अवश्य करता हूँ।"

"तब तुम आज दण्डाजी के मन्दिर से कतरा कर, दूसरी राह से घूमते हुए यहाँ क्यों आये ? कोपाड़गाँव के साधु को जो वचन दिया था कि मन्दिर की सीढियां तैयार कराने के लिए तीन सौ रुपये दोगे, उस वचन को पूरा करने की चेष्टा तुमने की ? ये ही कुछ रुपये बचाने के लिए तुमने देव-विग्रह का दर्शन तक नहीं किया ? जिसका मन इतना नीच है, उसके साथ बात करने को सचमुच इच्छा नहीं होती।"

बहुत अनुनय-विनय के बाद उस यात्रा में, नाना साहब ने बाबा से, क्षमा की भीख पाई। "

दीन-दरिद्र भिखमंगों के प्रति अपने भक्तों की ओर से सद्व्यवहार बरते जाने की दिशा में साई बाबा की सतर्कता की जैसे सीमा न थी। एक दिन उन्होंने नाना साहब से कहा—"देखो नाना, कोई भिखारी यदि तुमसे भोजन या पैसे माँगने आता है, तो अपनी शक्ति की अनुरूपता में उसे दे दिया करो; उस पर कभी भी झुँझलाना या गुस्सा दिखाना बहुत बुरा है। ऐसा कभी मत करना।"

बाबा के इस उपदेश को भूल कर, नाना साहब, एक दिन और, वैसी ही विपत्ति में पड़ गये। उस दिन उनके दरवाजे पर एक भिखमंगा आया। उसकी झोली में, नाना साहब की पत्नी ने, खाने की बहुत-सी सामग्री डाल दी। लेकिन वह था ही बड़ा पेटू और सनकी; एक ही सरपेट में वह सब कुछ चटकर गया और, बार-बार, चिल्ला-चिल्लाकर और भिक्षा की माँग करने लगा। और लिए बिना वह वहाँ से उठेगा ही नहीं, यह धमकी भी, साथ-साथ, वह देता जा रहा था।

अब नाना साहब से रहा नहीं गया, अपने चपरासी को भेजकर उन्होंने भिखारी को वहाँ से हटवा दिया।

अन्तर्यामी साई बाबा से, उनके भक्त के दरवाजे पर घटित होनेवाली यह घटना, छिपी नहीं रह सकी। नाना साहब के आते ही उन्होंने तिरस्कार-पूर्वक कहा—"देखो, जब तुम मेरी बात ही नहीं सुनते, तो फिर मेरे पास आते ही किसलिए हो ? बेचारा भिखमंगा भूख के मारे, उस दिन तुम्हारे दरवाजे से उठ नहीं रहा था और तुमने चपरासी को भेजकर उसे अपमान पूर्वक भगा दिया ! अपनी सरकारी हाकिमों की रौब इस तरह नहीं दिखाते तो क्या तुम्हारा काम नहीं चलता ? और कुछ तुमसे नही हुआ तो भले लोगों की तरह चुपचाप बैठे तो रह सकते थे ? थोड़ी देर के बाद थककर, वह बेचारा स्वयं चला जाता।"

अपनी भूल को यादकर लज्जा से, नाना साहब ने सर झुका लिया। फिर बाबा की करुणाघन मूर्ति को देखकर उनकी आँखों में आंसू भर आये। उनके जैसे नगण्य व्यक्ति के दैनन्दिन जीवन की एक-एक घटना के प्रति बाबा की ऐसी सतर्क दृष्टि रहती है, यह सोचकर श्रद्धानत कृतज्ञता से वे विगलित हो उठे।

साईबाबा की दृष्टि में मनुष्य की सबसे बड़ी साधना है—आत्म-समर्पण-योग। अपनी योगशक्ति का वे एक-से-बढ़कर एक परिचय जीवन भर देते रहे, भक्तों की दैनन्दिनी समस्याओं और संकटों के निवारण के लिए भी कोई कम करिश्मे नहीं दिखाये। किन्तु साधना के दुर्गम क्षुरधार मार्ग में वे सामान्य भक्त या मुमुक्षु को अग्रसर करने में बहुत उत्साह नहीं दिखलाते थे। उनके सामने वे आत्म-समर्पण-योग का नुस्खा रख भर देते। बाबा बार-बार कहा करते, "सद्गुरु के वाक्य और उनकी शुद्ध सत्ता पर विश्वास रखना सीखो और पूर्ण निष्ठा के साथ अन्तर से होकर उसमें एकात्म-भाव की प्राप्ति करो।"

साधना के जीवन में अपने गुरु के प्रति असीम श्रद्धा की दृष्टि की बात साई बाबा अक्सर करते। उनके द्वारा कही जानेवाली हर कथा के बीच यह तत्व प्रकट होता।

अपने गुरु का नाम किसी के सामने, कभी उन्होंने नहीं बताया किन्तु

उनका उल्लेख वे 'भेनकुश'—इस छद्म नाम के द्वारा प्रायः किया करते।

बाबा के गुरु के पास अपरिमेय योग विभूति करतलगत होकर थी। उस महापुरुष की करुणा-लीला की चर्चा करते समय साई बाबा की दोनों आँखों से आँसू बहते रहते थे।

"--तब उनसे नया-नया परिचय हुआ ही था। गुरु ने इसी बीच, एक दिन अपने तरुण भक्त के धैर्य और गुरुनिष्ठा की परीक्षा लेना आरंभ किया। उनके आश्रम से थोड़ी ही दूर हट कर, एक पुराना कुआं था। मोटी रस्सी से गुरुजी ने उनके दोनों पाँव बाँध दिये। सिर नीचे लटक रहा था। इसी स्थिति में उन्हें कुएँ में नीचे लटका कर रक्खा गया। रस्सी का एक छोर पास के वृक्ष की डाली से बँधा था और दूसरे छोर से बँधी तरुण साई बाबा की देह कुएं में लटक रही थी। उन्हें इसी अवस्था में छोड़कर गुरुदेव अन्यत्र चले जाया करते। इसके चार-पांच घंटे बाद उन्हें देखने के लिए लौट आते। इसी हालत में लटके शिष्य से प्रश्न किया जाता—"कैसे होजी बच्चे। किस तरह समय बिता रहे हो ?

बालक साई बाबा का लीला भाव से उत्तर होता—"गुरुजी, आपकी कृपा से अत्यन्त आनन्द के साथ हूँ। आनन्द के इस समुद्र-स्नान में कष्ट और दुःख कैसा !"

अब गुरुजी उन्हें कुएँ से बाहर निकाल लेते और प्रसन्नता से दीप्त होकर उन्हें बारंबार आशीर्वाद देते।"

साई बाबा अपने गुरु की कथा प्रसंग में कहते—"एक-एक कर, मैंने गुरु के चरणों में पड़े-पड़े, बारह वर्ष बिता दिये। वे ध्यानावस्था में बैठे रहते और आँखों से, मुख से दिव्य ज्योति की आभा फूटती रहती। मैं महिमामय पुरुष की ओर निर्निमेष-भाव से एक टक देखता रहता और मेरे अन्तर का पात्र आनन्द-रस से लबालब भर जाता। दिन-पर-दिन, रात-पर-रात मैं अपने ईश्वर-प्रतिम गुरुदेव के मुख की ओर देखता, बैठे-बैठे गुजार देता।

भूख-प्यास का पता नहीं चलता, भक्ति और प्रेम का ऐसा उत्साह, उन दिनों था ; गुरु ही थे मेरे ध्यान, ज्ञान और जीवन के ध्रुव नक्षत्र। एक दिन भी उन्हें नहीं देखकर रह सकना, मेरे लिए उन दिनों, अकल्पनीय था। देह, मन, प्राण—सभी, एकाग्र भाव से गुरुदेव के प्रति केन्द्रित हो गये थे।

इसी तरह, मेरे प्रति गुरुदेव के प्रेम की भी कोई सीमा न थी। मैं अपने जीवन को जिस प्रकार उनकी ओर उन्मुख किये रहता, वे भी उसी तरह मेरे अंतर में होकर अपने स्नेह और कृपा के अपार बल से, मुझ में श्रद्धा, भक्ति और भागवत प्रेम की स्रोत-धारा को प्रवाहित करते रहते। गुरुजी प्रायः मौन और निष्क्रिय दिखाई देते लेकिन उनकी दृष्टि मात्र से हमारे जीवन में नये-नये रूपान्तर होते रहते। मैं उन्हें ही अपना परमार्थ और अभीष्ट समझता था और उन्हीं की कृपा से मैंने परम सत्य को प्राप्त किया। तुम सभी यह जान लो कि अध्यात्म-साधना के दुर्गम पथ में गुरु-शक्ति ही एक मात्र सहारा है। इसकी तुलना में कोई शास्त्र, कोई साधना नहीं ठहर सकती। सद्‌गुरु के प्रति विश्वास, उनके चरणों की शरणागति, और आत्म-समर्पण—ये ही होते हैं सिद्धि-लाभ के प्रधान साधन-पथ।

भक्तों के भावावेग तथा अतिशयता के प्रदर्शन से साईंबाबा पहले बहुत रंज होते। बाद में उनका यह ढंग बदलता गया। भक्तों का एक दल ऐसा था जो बाबा के ललाट पर श्वेतचन्दन लगा दिया करता; दूसरा दल ऐसा था जो प्रतिदिन उनकी पूजा कर लेने के बाद ही टलता। ये सारे कृत्य बाबा चुपचाप सह लेते।

दादा केल्कर नामक एक भक्त उसबार साईं बाबा से प्रश्न किया—"बाबा, पहले तो आप ललाट में चन्दन लगाने पर बिगड़ उठते थे। पर अब देखता हूँ, आपको उसके लिए कोई आपत्ति नहीं है। इसका क्या रहस्य है —मैं नहीं जानता।"

"तो क्या करूँ?—तुम्हीं बोलो न। डॉ० पंडित की धारणा है कि उनके नैष्ठिक ब्राह्मण-गुरु टोपेश्वर काका महाराज और मैं एक ही

व्यक्ति हूँ। तभी इतनी श्रद्धा के साथ, नित्य मुझे चन्दन लगाने आते हैं। प्रतिवाद करके मैं उन्हें कष्ट पहुँचाना नहीं चाहता।"

अब्दुल रंगरी नामक एक मुसलमान भक्त ने बाबा से कहा—'बाबा भला क्यों आप अपने ललाट में लोगों को इस तरह चन्दन लगाने देते हैं ? हम मुसलमानों के समाज में तो इस तरह की प्रथा नहीं है।"

बाबा ने उत्तर दिया—"अजी, जैसा देश, वैसा ही वेश करना चाहिए। हिन्दू भक्त अपनी भक्ति और श्रद्धा इसी तरह निवेदित करते हैं तो किया करें, मैं उनको निरुत्साहित और दुखी नहीं कर सकता। भक्तगण अपने प्राणों के आवेग में प्रेम में, श्रद्धा में क्या-क्या न करना चाहते हैं। तो उनके इस उत्साह का अनादर करके उनका मन छोटा करना क्या उचित होगा ? फिर मैं, तो स्वयं ही एक भक्त हूँ, तो, दूसरे भक्त का अनादर नहीं कर सकता।"

हिन्दू-मुसलमान, ब्राह्मण-चाण्डाल, सभी को, साई बाबा के प्रति सम्मान रूप से श्रद्धा थी। कुछ लोग उन्हें देवकल्प महासाधक के रूप में जानते; उन्हें लेकर अलौकिक चमत्कार की कथा कहनेवालों की आपसी आपा-धापी मची ही रहती।

परम श्रद्धाभाजन, सर्वजन पूज्य साई बाबा को सर्वजन प्रिय प्रेमधन रूप महापुरुष मानकर सभी आदर करते। साई बाबा की चरित-कथा के संकलयिता श्री वी० व्ही० नरसिंह स्वामी ने इस प्रसंग में एक मनोहर कहानी लिखी है।

१९१४ ई० का साल। राम नवमी के जन्मोत्सव के नाम पर शिरडी में लोगों की विशाल भीड़ उस दिन, इकट्ठी होती ही जा रही थी। दूर के गाँव से, साई बाबा का दर्शन करने के लिए एक गरीबिनी वृद्धा आ रही थी। निकट आते-आते वह चिल्ला उठी—"अजी, मैं निर्बल वृद्धा स्त्री हूँ। तुम मेरी सहायता कर दो। हाय, बाबा, बाबा, कहां हो ? मुझे एकबार दर्शन दे दो बाबा !"

साईबाबा का इशारा पाकर, एक सेवक उस वृद्ध को भीड़ से बचाकर बाबा के पास ले गया। महापुरुष को देखते ही बुढ़िया की प्रसन्नता की सीमा नहीं रही। आवेग-कम्पित शरीर से उन्हें अँगोर कर वह फूट-फूट कर रोने लगी।

साईबाबा की दोनों आंखों से भी आँसू बह चले थे। उन्होंने कहा—"क्यों माँ, अब तो तुम आ गई न? कब से मैं तुम्हारी राह देख रहा था और व्याकुल होकर रो रहा था। अब दे दो न मेरे खाने के लिए क्या-क्या लेकर आई हो, सो जल्दी निकालो।"

बुढ़िया ने मैले फटे कपड़े की अपनी गठरी खोली। बोली—'यह लो देखो, यह है एक टुकड़ी बासी रोटी। बड़ी दूर से तुम्हारे दर्शन करने आई तो आधी टुकड़ी, तो मैं भूख लगने पर एक नदी के किनारे बैठकर खुद खा गई। हां, आधी टुकड़ी बच रही है सो तुम लो खा जाओ।

परम आत्मीय जन का दिया हुआ यह सन्देश-उपहार, बाबा वहीं बैठे-बैठे. सचमुच तुरत खा गये। चबाते-चबाते उन्होंने कहा—"सच ही तो, माँ तुम कितनी अच्छी रोटी लेती आई हो। खाकर आज सचमुच मैं तृप्त हो गया।"

मुक्त महापुरुष साईबाबा को लेकर, व्यावहारिक जीवन के क्षेत्र में कितने ही कौतुक घटित होते रहते। यह सब लेकर कभी-कभी बाबा के भक्तों को झंझटों का मुकाबला भी करना पड़ता।

उस बार धुलिया के मैजिस्ट्रेट ने अपनी अदालत में हाजिर होने के लिए, साईबाबा के पास सम्मन भेजा। सोने के गहने चुरा लेने के अभियोग में; उनके इजलास में एक व्यक्ति अभियुक्त था। उसी ने अपने बचाव के लिए साईबाबा को अपना साक्षी ठहराया था।

सम्मन मिलते ही, बाबा ने उसे अपनी धधकती धूनी के हवाले कर दिया। प्यादा लौटकर गया तो उसने इस हरकत की रपट दी। तो, दुबारा वारंट जारी किया गया!

वारंट का कागज देखकर बाबा को वैसा ही लगा जैसे खिलौने को देख- कोई नादान बच्चा प्रसन्न हो। फिर वे बिगड़ कर बोले; "ले जाओ इस कागज को कहीं बाहर फेंक दो।"

बाबा के पास हजार, सौ की भीड़ हर घड़ी लगी ही रहती है। उनके प्रभाव और प्रतिपत्ति की कोई सीमा ही नहीं है। यह देखकर पुलिस वालों ने बखेड़े में पड़ना ठीक नहीं समझा। वे चुपचाप वारंट का कागज लेकर लौट गये।

इलाके के लोगों ने मिलकर एक आवेदन-पत्र भेजा। उसमें उन्होंने लिखा था—"साई बाबा संसार-विरागी मुक्त पुरुष हैं और इस इलाके के हम सभी लोग उन्हें देवता मानकर पूजते हैं। यदि उनका साक्ष्य लेना आवश्यक हो, तो भी उन्हें अदालत में नहीं बुलाकर, उनकी गवाही लेने के लिए, एक कमीशन को, उन्हीं के पास भेजा जाय।"

अदालत ने आवेदन स्वीकृत कर लिया। कमिश्नर ने आकर साई बाबा से पूछताछ शुरू की। बाबा ने प्रश्नों के उत्तर में जो बातें बताईं उनसे कौतुक होना स्वाभाविक था, पर उनसे साई बाबा के जीवन-दर्शन पर भी प्रकाश पड़ता है।

प्रश्न किया गया, 'आपका नाम क्या है?'

साई बाबा ने उत्तर दिया, "लोग यहाँ मुझे साईबाबा कहकर पुकारते हैं।"

"आपके पिताजी का नाम?"

"वह भी, साईबाबा!"

"आपके गुरु का नाम?"

"भेनकुश"

'आप किस धर्म के अनुयायी हैं?'

"कबीर-पन्थी"

"आप किस जाति के हैं?"

"कह सकते हैं—ईश्वरीय।"

"कृपया अपनी उम्र बतावें।"

"ओह, लाखों वर्ष !"

"उत्तर सावधान होकर दें। आखिर अदालत की बात है ! क्या आप शपथ लेकर कहेंगे कि उम्र के संबन्ध में आप ने जो कहा वह सत्य है ?"

"हाँ, सत्य है।"

'अच्छा, आप क्या अभियुक्त को जानते हैं ?'

'हाँ, उसे जानता हूँ। उसे ही क्यों—सभी को जानता हूं।'

'उसने कहा है कि वह आपका भक्त है और आपके हाँ पास रहता है।'

'मैं विश्व के सब किसी के साथ रहता हूँ, सभी मेरे अपने हैं।'

'अभियुक्त ने ऐसा भी बताया है कि उसे सोने के वे गहने आपने ही दिये हैं। क्या यह सत्य है ?"

'हाँ मैंने ही दिये हैं, ऐसा मानने में बाधा नहीं होनी चाहिए।'

पर कौन किसको क्या दे सकता है ? जाने दीजिये।

'अच्छा, यदि वे गहने आपने ही दिये तो वे आपके पास आये कहाँ से ?'

'कह तो दिया—सब कुछ मेरा ही है न ?'

'साईबाबा, याद रखिये, मामला संगीन है। अभियुक्त ने बताया है कि आपने चुराये हुए गहने उसे स्वयं दिये हैं।'

बाबा इसबार क्रोध के मारे आग-बबूला हो गये। वे चीखकर बोले—'तुमलोगों को यह क्या हो गया है, बोलो तो इस कारोबार में मुझे क्यों डालते हो ?" कमिश्नर को समझने में अब देर नहीं लगी। लौकिक मामलों में अलौकिक महापुरुष से कोई सहायता नहीं मिल सकती। उन्होंने गाँव के प्रधान को बुलाया और गाँव की दैनिक बही तलब की। बही से पता चला कि जिस दिन चोरी की घटना घटित हुई, उस दिन अभियुक्त शिरडी गाँव में

था ही नहीं ! इसी से स्पष्ट हो गया कि साई बाबा ने उसे वे गहने नहीं दिये। साईंबाबा खुद तो शिरडी को छोड़कर कहीं जाते नहीं हैं।>>

साईंबाबा को यह बात कही गई तो उन्होंने इसे प्रमाणित कर दिया। इस तरह, उसदिन, अदालत का मामला टल गया।

उस दिन सभी लोगों को पता चल गया कि व्यवहारिक जीवन के क्षेत्र में महामुक्त स्वतन्त्र पुरुष को डालना सर्वथा निरर्थक है।

एकत्र दर्शनार्थियों को साईंबाबा प्रायः ईश्वर की सर्वमयता और उनकी सृष्टिलीला की रहस्यमयता की बातें बताते। वे कहते—'वे समग्र सृष्टि के मूल हैं विभु हैं, अल्लाह, मालिक ! जो सृष्टि उन्होंने की, उसकी रक्षा और निर्वाह के पीछे उन्हीं की कृपा है। वे ही इसका ध्वंस भी करेंगे। उनकी लीला बड़ी अद्भुत है, उसे समझने की शक्ति किसी में कहाँ से आई। वे हमें जिस तरह रखना चाहते हैं. हमें वैसे ही रहना चाहिए, उनकी इच्छा के सामने सर झुकाकर सन्तुष्ट रहना उचित है। जो आ गया है; उसे स्वीकार कर आनन्द में मग्न रहो। जो हो रहा है, सब उसी की इच्छा से,। इसे निरन्तर याद रखने की चेष्टा करो कि उसकी मर्जी के विना पत्ता भी नहीं हिलता।

हमारी ओर से इतना ही होना चाहिए कि सत्पथ पर, पुण्यपथ पर रह कर अपने कर्त्तव्यों का पालन करते रहें। हमेशा यह स्मरण रखना आवश्यक है कि निजस्व सत्ता या स्वाधीन सत्ता जैसा कुछ भी हमारे हिस्से में नहीं है। सभी कुछ नियामक वे ही हैं। रंगमंच के सूत्रधार भी और अभिनेता भी। इसी विश्वास के साथ सब कुछ में उनकी लीला का अनुभव करते रहना होगा। शनैः शनैः निस्पृहता आयगी, कर्म के बन्धन से मुक्ति मिलेगी और भगवान् का दर्शन प्राप्त होगा।"

केवल त्रिताप-तप्त साधारण संसारी जन ही नहीं, उच्च श्रेणी के सन्त और फकीर भी साई बाबा से मिलने के लिए आया करते। शक्तिधर महा-पुरुष के निकट आने के साथ-ही-साथ, उनमें उच्चतर अनुभूति जम जाती। कुछ लोग डाँट-फटकार खाकर निराश होकर भी लौटते।

सोमदेव स्वामी नामक एक साधु, उस दिन साईं बाबा के पास आये। उनका बड़ा नाम सुना था, पर देखा तो यही कि बाबा मस्जिद में बैठे हैं और सर में एक वस्त्र लपेटे हुए हैं, जो हवा के वेग में झंडे की तरह फर्फरा रहा है। भक्तों ने बाबा का जयजयकार करके, एक पताका मस्जिद की मीनार से लगा दी है वह भी फहरा रही है। इस पर भी बाबा ने कोई आपत्ति नहीं की। इस पताका को देखते ही, दूर से आनेवाले भक्त और दर्शनार्थी, बाबा के दर्शन का आनन्द अनुभव करने लगते हैं। वे दूर से ही पताका को साष्टांग दण्डवत करते आते हैं। सोमदेव स्वामी ने यह सब देखा तो फक्क रह गये। यह मामला क्या है? अपना झंडा फहरवा रहे हैं बाबा, सो तो साधुजनोचित नहीं है। इससे तो घमण्ड टपकता है जब कि साधु को होना चाहिए नम्र, विनयी।

यह सब देख-सुन लेने के बाद सोमदेव स्वामी में उत्साह नहीं रहा कि बाबा का निकट जाकर दर्शन करें। पर साथ के लोगों के दबाव और आग्रह में पड़कर वे बाबा के दरबार में बढ़ते चले आये।

कक्ष में प्रवेश कर, बाबा की आँखों पर दृष्टि पड़ते ही, सोमदेव स्वामी अकल्पनीय भाव से आत्म-विह्वल हो उठे। देह केले के पत्ते की तरह थर्-थर् काँप रही है और कण्ठ से आवाज नहीं निकलती। दोनों कपोलों पर होकर आँसू की धारा बहती जा रही है।

पर बाबा को देखा गया आज बड़े ही उग्र, कठोर रूप में। स्वामी जी के निकट जाकर खड़े होते ही वे उत्तेजित होकर तिरस्कार पूर्वक कहने लगे : "खबरदार, फिर कभी इधर चौखट लाँघने की गल्ती नहीं करना। है न? जो पताका फहरवाता है। अहंकार की ध्वजा का उत्तोलन करता है, वैसे व्यक्ति का दर्शन करने के लिए आना-जाना क्यों? ठीक ही तो, वास्तविक साधु का लक्षण यह झंडा-झंडी नहीं है। अभी तुरत बाहर चले जाओ।"

सोमदेव स्वामी को उस दिन विषण्ण होकर वहाँ से लौटना ही पड़ा।

नासिक के रहनेवाले मूले शास्त्री, शास्त्रवेत्ता ब्राह्मण के रूप में प्रसिद्ध थे। उनका जात्यभिमान बड़ा ही प्रबल था। साई बाबा का इतना नाम इतनी प्रतिष्ठा थी, किन्तु स्वामीजी कभी उन्हें देखने नहीं आये। इस बार वे ही शिरड़ी आये हुए हैं।

उस दिन शय्या-त्याग करते-करते, तड़के सुबह ही, बाबा अपने सेवकों को बुलाकर कहने लगे—"अजी, मेरा लँगोटा और गेरुआ झूल शीघ्र तैयार कर देना।"

सभी अकचकाने लगे। बाबा गेरुआ झूल तो कभी पहनते नहीं थे। फिर आज यह अचानक क्या कह रहे हैं?

निर्देश के अनुसार गेरुआ रंग में रंग कर वस्त्र तैयार किया गया।

बाबा ने नये वस्त्र को धारण कर लिया, फिर बोले—"अच्छा, अब जाओ, नासिक से जो ब्राह्मण पण्डित आये हैं, उनसे मेरी दक्षिणा माँग लाओ।"

साई बाबा की बुलाहट पाकर मूले शास्त्री तत्क्षण वहाँ उपस्थित हुए। बहुत सँभल-सँभल कर चल रहे हैं शास्त्री जी, ताकि नैष्ठिक ब्राह्मण के शरीर या वस्त्र में मस्जिद की कोई चीज छू न जाय। हिसाब लगाकर, कुछ अलग से ही, उन्होंने बाबा को साष्टांग दण्डवत् किया।

किन्तु मुहूर्त भर में ही यह क्या हो गया। "जय गुरू! जय धोपाल महाराज जी!" कहकर वे बाबा के चरणों तले गिर पड़े!

साई बाबा पृथ्वी पर पड़े ब्राह्मण पण्डित को इतना ही कहते है—"दो, अब मेरी दक्षिणा दे ही दो।"

बाद में मूले शास्त्री ने लोगों को बताया कि आज साई बाबा के बदले उन्हें वहाँ पर अपने गुरुजी—धोपाल महाराज के दर्शन हुए थे। उन्हें ऐसा लगा कि गेरुआ वस्त्रधारी साई बाबा और धोपाल जी महाराज में कोई अन्तर नहीं है। दोनों एक ही हैं।

अत्यन्त श्रद्धा और आग्रह के साथ साईं बाबा के चरणों में प्रणामी दक्षिणा चढ़ाकर मूले शास्त्री वहाँ बारंबार दण्डवत् करते रहे।

वामण मठ के प्रवीण संन्यासी श्री नारायण के आश्रम जीवन में बाबा की कृपा अवतीर्ण होकर, उन्हें धीरे-धीरे उच्चतर अनुभूति और उपलब्धि के स्तर पर उठा ले गई। श्री नारायण स्वामी जी कहते कि साईं बाबा की योगशक्ति प्रायः अज्ञात रूप से चुपचाप अपना प्रभाव दिखालाती है। भक्तों और साधकों को भी पता नहीं चलता कि उन्हें बाबा की योगशक्ति ने कब किस तरह रूपान्तरित कर दिया।

बाबा के हाथ का स्पर्श था परम कल्याणमय। निकट आये भक्त के मस्तक पर हाथ फेर देने और उस स्पर्श से ही प्रवाहित हो जाता एक निःशब्द प्रबल कृपामय आध्यात्मिक अवतरण। इतने से ही अनेक साधकों के जीवन में नवीन ज्योतिर्मय वातायन का उद्घाटन हो जाता।

केवल स्पर्श के सहारे ही नहीं, कभी-कभी तो महापुरुष के दृष्टिपात मात्र से शरणागत दर्शनार्थी के जीवन में आध्यात्मिक ज्योति का रहस्य-मय अवतरण घटित हो जाता। चैतन्यमय जीवन के उद्बोधन के लिए जागतिक जीवन में घनिष्ठ सान्निध्य, साईं बाबा के कृपापात्रों के लिए, आवश्यक न था। कभी-कभी तो ऐसे लोगों पर भी इनकी कृपा बरस जाती जो इनसे कभी मिले तक न थे।

उपासनी महाराज पश्चिम भारत के एक विख्यात साधक थे। एक बार हठयोग की किसी पद्धति को आयत्त करने के सिलसिले में उनसे गड़बड़ी हो गई। परिणाम हुआ कि उनके श्वास-यन्त्र में गड़-बड़ी हो गई। इस रोग से छुटकारा पाने की बड़ी कोशिश उन्होंने की, पर नतीजा कुछ नहीं निकला।

जिन्दगी से वे निराश हो चुके थे। एक दिन सहसा उन्हें शिरडी के साईं बाबा की याद हो आई। श्रद्धा के साथ उन्होंने महापुरुष को, मन-ही-मन नमस्कार किया।

शिरडी से तीस मील की दूरी पर राहुर नामक गाँव में उपासनी महाराज रोग-शय्या पर पड़े हैं। अचानक साईं बाबा के अलौकिक मूर्त्ति उनके सामने आविर्भूत हो गई। दो एक बातकर, रोग-मुक्ति के उपाय बताकर, बाबा की मूर्त्ति पुनः अन्तर्धान हो गई।

आरोग्य-लाभ करने के बाद उपासनी महाराज भक्तिभाव से ओत-प्रोत होकर साईं बाबा का दर्शन करने शिरडी आये। यही उनका प्रथम चाक्षुष साक्षात्कार था। बाबा ने उन्हें कुछ दिनों तक अपने पास रोक रक्खा। इसी बीच उन्हें उच्चतर साधना के अनेक रहस्य बता दिये।

इसके बाद उपासनी महाराज के साधन-जीवन में नूतन गति आ गई। साधक-समाज में उन्हें प्रतिष्ठा मिली।

साधकों के अन्तरंग जीवन में साईं बाबा जिस प्रकार आध्यात्मिक कल्याण की प्रतिष्ठा करते, उसी प्रकार सांसारिक कामनाओं की पूर्त्ति में भी, अनेक शरणागतों के प्रति कृपा देते। हिन्दू, मुसलमान, ईसाई—सभी मत के भक्तों के वे थे पिता और अभिभावक। उनके जीवन में वे अमृत का संचार करते, समान भाव के साथ। भेद और विषमता से ऊपर उठकर जो एक महत्तर जीवन है, उसके आस्वाद के प्रति इन कृपा पात्रों में आप-ही-आप एक दिव्य रुचि का जन्म, बाबा की कृपा से हो जाता था।

जन साधारण के लिए साईं बाबा थे प्रेम, शान्ति और ऐक्य के अजस्र उत्स। इसीलिए, चारो ओर फैले हुए सांप्रदायिक कलह और अविश्वास के विष-वाष्प के बीच में भी, उनके साथ शिरडी में रहने वाले हिन्दू-मुसलमान भक्त शान्ति और सौहार्द के साथ समय बिताते।

साईं बाबा की अलौकिक करतूतें, अक्सर बहुत अद्भुत होतीं। शास्त्रीय और सामाजिक जीवन के संग इनका मेल अक्सर नहीं बैठ पाता। किन्तु उनके व्यावहारिक कर्म और उपदेश के द्वारा जनकल्याण के कार्यों को सदैव प्रेरणा मिलती रहती।

साईबाबा रहते हैं मस्जिद में. जो शिरडी के मुसलमानों की है। पर साई बाबा इस मस्जिद का नाम रक्खे हुए हैं—'द्वारका माई !' दीवार पर काबा मस्जिद का एक प्रतीक खुदा है, उसी के समीप जल रही है, नीचें में, बाबा की धुनी जिसकी लपटें दिन-रात लपलपाती हुई जलती रहती हैं, कभी उसमें कमी नहीं होती।

कक्ष के एक कोने में वेदी बना दी गई है जिस पर तुलसी का झाड़ लह-लहा रहा है। जो भक्त आते हैं वे इस भक्ति पूर्वक इस पवित्र वनस्पति की प्रदक्षिणा किये बिना नहीं जाते। बाबा के सम्मुख कभी सनातन धर्मग्रन्थों का पाठ होता है तो कभी कुरान की आयतें पढ़ी जाती हैं।

मस्जिद पुरानी और जीर्ण है। एक दिन हिन्दू भक्त की बड़ी इच्छा है कि इस इमारत का जीर्णोद्धार करा दिया जाय। कीमती पत्थरों की राशि, इसी उद्देश्य से उन्होंने वहाँ एकत्र करवा दी हैं।

किन्तु बाबा ने अन्यान्य कार्यों में उन्हें लगा दिया। शिरडी में एक भग्न-प्राय पुराना मन्दिर था। बाबा ने कीमती पत्थरों की वह राशि, उसी के पुनर्निर्माण के लिए दान-स्वरूप दे दी।

फिर भी बाबा के भक्तों का उत्साह कम नहीं हुआ। विभिन्न मताव-लम्बी। भक्तों की मंडली ने मस्जिद का पुनर्निर्माण करा कर ही दम लिया बाबा के प्रभाव से समाज के हर स्तर में, इस तरह सौमनस्य और उत्साह की लहरें उठती ही रहतीं।

चाहे जिस मत को मानने वाले जिज्ञासु आते, बाबा उन्हें उदार और सार्वभौम धर्मादर्श का ही उपदेश देते। उच्च और नीच, संसारी और संन्यासी, किसी में भेद-भाव करते उन्हें देखा नहीं गया।

सामान्य गृहस्थ, संसार में रहकर, धीरे-धीरे जिस तरह माया के बंधन से अपने को मुक्त कर पाये, वही रीति बाबा को पसन्द है।

बाबा अक्सर कहते— आध्यात्मिक जीवन का मूल उद्देश्य ही

है, अज्ञान के आवरण को हटाने की साधना में प्रवृत्त होना। मूलतः जीव है ज्ञान-स्वरूप। अज्ञान का पर्दा, उसकी ज्ञान सत्ता को ढँके रहता है। जैसे पानी को, पानी में उपजनेवाला सेमार ढँक दे, वैसे ही ज्ञान-सत्ता को अज्ञान ढँक लेता है। केवल सेमार को हटा दो, तले से स्वच्छ जल तो हुई है, दिखाई देने लगेगा। पानी की सृष्टि नहीं करनी होगी, अजी, वह तो पहले से ही विद्यमान है, केवल, सेमार के कारण दिखाई नहीं दे रहा है। इसी तरह आकाश में सूर्य और चन्द्रमा निरंतर विराजते रहते हैं। राहु से ग्रस्त हो जाने के कारण कभी-कभी हम उन्हें नहीं देख पाते, पर जब ग्रहण काल वीत जाता है, तब वे अपने स्वरूप को चमकते दिखाई देने लगते हैं। जीव का चिरन्तन स्वरूप भी, इसी तरह, थोड़ी देर के लिए ढँक जाया करता है।

"एक दूसरा उदाहरण ले लीजिये। जिन आँखों के द्वारा लोग सभी कुछ को देखते हैं, उनपर यदि पर्दा पड़ जाय तो कुछ दिखाई नहीं पड़ता। फिर जब पर्दा हट जाता है, तो संपूर्ण जगत् पूर्ववत् दिखाई देने लग जाता है। संसार में रहकर ही, अज्ञान के पर्दे को हटा दो; तुम्हारा आत्म स्वरूप, ज्ञान स्वरूप, तब अपनी स्वाभाविक गति से दिखाई देने लग जायगा।"

उस दिन एन्० सी० चन्दोरकर मरणासन्न अवस्था में बाबा के पास उपस्थित हुए। भक्तिपूर्वक प्रणाम निवेदित कर, वे कहने लगे—"बाबा, इस संसार में अब एक मुहूर्त्त के लिए भी टिकने की इच्छा नहीं रह गई है। संसार तो निःसार हुई है, इसमें सार की कोई सत्ता आज तक नहीं ढूँढ सका। इसके स्पर्श से दूर हो जाने का निश्चय अब पक्का कर लिया है।"

चन्दोरकर को लक्ष्यकर बाबा ने अपने भक्तों की समवेत मण्डली से कहा—"सुनो बेटे, जब तक जीव देह में रहता है, तब तक संसार भी रहता ही है—स्थूल-भाव से अथवा सूक्ष्म-भाव से, पर, रहता

ही है ! संसार के जाल से यों ही बचकर निकल जाना तो मेरे लिए भी संभव नहीं है।

"संसार में नाना रूप से नाना वैचित्र्य हैं। काम, क्रोध प्रभृति के मेल से हमारा यह संसार प्राय: ओत-प्रोत रहता है। सभी स्थूल, सूक्ष्म, दैहिक और मानसिक क्रियाएँ इसी संसार के अन्तर्गत हैं। वन जाकर भी, तुम इस संसार से पिण्ड किस तरह छुड़ा लोगे ?

"देखो, एक बात बराबर याद रक्खो। तुम्हारी आज जो भी हालत है, वह तुम्हारे अपने ही किये हुए का संचित परिणाम है। अपने भीतर-ही-भीतर तिक्तता और विरक्त भर लेने मात्र से, ऐसी स्थिति में क्या लाभ होगा ? तुम्हारी यह देह तुम्हारे ही प्रारब्ध कर्म की उपज है। जीव को देह मिलती है कर्म के द्वारा उद्धार की परिणति के लिए। प्रारब्ध का फल दुःख-सुख, पाप-पुण्य का भोग किये बिना तुम्हें छुटकारा कैसे मिलेगा ? विचार कर देखो, बाहर से देखने पर दूसरे से अलग क्यों प्रतीत होता है ? पूर्व जीवन के कर्म फल की ही उपज है प्रत्येक की यह पृथकता। देखते नहीं हो कोई कुत्ता रईश की तरह शोफे पर निश्चिन्त सोता हैं और कोई मनुष्य कुत्ते की तरह, एक टुकड़ी रोटी के लिए, गली गली, मारा-मारा फिरता है ? बेटे यह सब है प्रारब्ध। संसार को जोर-जबर्दस्ती से छोड़ दोगे, इतने भर से काम नहीं चलेगा "

बाबा की ऐसी बातों में नूतनता, मौलिकता या अलौकिकता नहीं रहा करती। किन्तु सीधी सादी बातों मे ही जादू का असर हो जाता है। महापुरुष के होंठों से निकलने वाली बातें सुननेवालों के मर्म में पैठ जाती हैं और हृदय में जाकर जीवित हो जाती हैं। उन्हें नवीन ज्योतिके दर्शन सहज भाव से होने लगते है और खोए हुए समाधान का अचानक संधान मिल जाता है।

१९१९ ई० का अक्तूबर महीना। साईं बाबा पिछले, कोई चौदह

दिन से रोग शय्या पर पड़े हैं। उनके ही आदेश से एक नैष्ठिक ब्राह्मण पंडित, उनके बिछौने के पास बैठकर 'राम विजयचंपू' का सस्वर पाठ करते हैं। बाबा बारंबार सर हिला-हिलाकर कहते—'इस पाठ से बहुत कल्याण होगा; मृत्युञ्जय शिव इससे प्रसन्न होंगे।"

मुख से ऐसा कहकर भी कार्य्यतः बाबा की दशा विपरीत दिखाई पड़ती है। शिरडी के पास ही एक शक्तिमान फकीर रहते हैं। एकदिन, अचानक, बाबा ने फकीर के पास अपना अन्तिम सन्देश प्रेषित करवा दिया। सेवक ने जाकर कहा—"इस देह के आधार स्वरूप, अल्लाह ने जो प्रकाश प्रज्वलित कर रक्खा था, अब वह बुझ जायगा।'

संदेश सुनकर फकीर की दोनों आँखों से झरझर आँसू बहने लगे।

संवाद की बात भक्तों के बीच फैल गई और चारों ओर विषाद का गहन अन्धकार छा गया।

अक्तूबर की १८ वीं तारीख। शारदीया दशमी की पुण्य तिथि बीत रही है। दोपहरी के बाद बाबा ने भैया जी नामक एक भक्त को पुकारा और बोले—"अजी, मेरी बुलाहट आ गई। मैं विदा लेता हूँ, तुमलोग सुन रक्खो। भक्तों ने उत्साह पूर्वक जो मंदिर तैयार करवाया है, उसी में मेरी देह को समाधि देना।

दिन के कोई तीन बजे हैं। पुण्यचरित साईबाबा ने अपने नश्वर शरीर का उल्लास-पूर्वक त्याग कर दिया। पश्चिम भारत के अध्यात्म आकाश का एक उज्ज्वल तारा टूट कर गिर पड़ा।

—*—